हिन्दी काव्य संग्रह

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

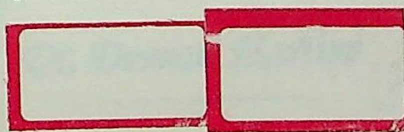
[illegible] [illegible]

हिन्दी काव्य संग्रह

प्रथम एवं द्वितीय संस्करण
संपादक
हेमराज मीणा
मीरा सरीन
तृतीय संशोधित संस्करण
संपादक
रामवीर सिंह
हेमा उप्रेती
मीरा सरीन



केन्द्रीय हिन्दी संस्थान • आगरा



प्रथम संस्करण : 1983
द्वितीय संशोधित संस्करण : 1986
मूल पाठ संस्करण : 1993
" " संशोधित संस्करण : 1995
तृतीय संशोधित संस्करण : 1996
चतुर्थ संस्करण (पुनर्मुद्रण) : 2000
पुनर्मुद्रण : 2001

मूल्य : रू० 80•00

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, हिन्दी संस्थान मार्ग, आगरा 282 005 द्वारा प्रकाशित
और मैसर्स परीक्षा समिति प्रेस, निराला नगर, नगला पदी, आगरा–5 में मुद्रित

प्रथम संस्करण का आमुख

केंद्रीय हिंदी संस्थान अब दो दशक से भी अधिक समय से हिंदी भाषा और साहित्य के शिक्षण-प्रशिक्षण, हिंदी से संबद्ध भाषावैज्ञानिक विश्लेषण, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, सामग्री निर्माण, एवं भारतीय समाजभाषावैज्ञानिक समस्याओं के उच्च अध्ययन एवं शोध केंद्र के रूप में विकसित हो गया है। हिंदी भाषा एवं साहित्य, विशेष रूप से द्वितीय तथा विदेशी भाषा और उसके साहित्य, अध्ययन-अध्यापन में संरचनात्मक, अनुप्रयोगात्मक एवं तुलनात्मक सभी पद्धतियों से प्राप्त परिणामों का उपयोग करना आवश्यक और उपयोगी है। इसके अतिरिक्त संस्थान भाषा एवं साहित्य के अधिगम के परीक्षण और मूल्यांकन के क्षेत्रों में भी अनेक शोधपरक परियोजनाओं पर कार्य करता है।

प्राय: यह माना जाता है कि भाषा अध्ययन-अध्यापन तो बहुत बड़ी सीमा तक वस्तुनिष्ठ रूप में हो सकता है परन्तु साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में उस प्रकार की वस्तुनिष्ठता, निश्चितता एवं अनुभवाश्रितता का न होना स्वाभाविक और तर्क-संगत है, और यही कारण है कि साहित्य की समीक्षा, विश्लेषण एवं मूल्यांकन में और उनकी निरूपक भाषा में अमूर्तता की प्रधानता रहती है। वस्तुत: न तो यह आवश्यक है और न अनिवार्य। यदि हम भाषा के अन्तर्गत साहित्य के अध्ययन-अध्यापन के संदर्भ में इस प्रश्न पर विचार करें तो हमें यह स्पष्ट हो जाएगा कि साहित्य का अध्ययन-अध्यापन, साहित्य की प्रकृति से अनुशासित होते हुए भी अपेक्षाकृत सुनिश्चित एवं वस्तुनिष्ठ दृष्टि से संभव है। यह बात प्रथम भाषा के साहित्य विषयक अध्ययन पर उसी सीमा तक लागू होती है जितनी द्वितीय और विदेशी भाषा के साहित्य के अध्ययन पर।

विविध ज्ञानात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कराये जाने वाले भाषायी शिक्षण में साहित्य शिक्षण का एक अपना स्थान है। भाषावैज्ञानिक अध्ययन में पाई जाने वाली नियमबद्धता, अनुस्तरीयता, लक्ष्यपरकता आदि की धारणाओं को साहित्य शिक्षण के क्षेत्र में लागू किया जाना उचित है और सामग्री चयन एवं प्रस्तुतीकरण आदि के क्षेत्र में भाषाविज्ञान की इन अद्यतन संकल्पनाओं से लाभ उठाया जाना चाहिए।

भाषा-शैली-मूलक साहित्य-शिक्षण की महत्ता को स्वीकार करते हुए संस्थान साहित्य की विविध विधाओं के शिक्षण के लिए आवश्यक सामग्री तैयार करता है।

यह सामग्री प्रारम्भिक स्तर के शिक्षार्थियों से लेकर उच्च स्तर के शिक्षार्थियों (विश्वविद्यालय स्तर तक के छात्रों) के लिए तैयार की जाती है। संस्थान ने उच्च स्तर (स्नातक तथा परास्नातक वर्गों) के विद्यार्थियों के लिए एक संकलन श्रृंखला प्रारम्भ की है जिसके अन्तर्गत आधुनिक एकांकी संग्रह, आधुनिक कहानी संग्रह, आधुनिक निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अब इसी क्रम में हिंदी काव्य संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है। इस संग्रह में हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों और प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि कृतिकारों की रचनाओं का संकलन किया गया है। संकलन करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि विभिन्न कालों और प्रवृत्तियों के ऐसे प्रतिनिधि कवियों का ही समावेश किया जाए जो विषय-वस्तु, अभिव्यक्ति एवं भाषा-शैली आदि सभी दृष्टिकोणों से अपने-अपने युगों का ऐसा प्रतिनिधित्व करें जिससे सभी कालों एवं प्रवृत्तियों का एक सांगोपांग चित्र प्रस्तुत हो जाय। रचनाओं के चयन में भाषा-शैली तथा प्रोक्ति प्रारूपों की विविधता के साथ-साथ गुणवत्ता और रोचकता का भी ध्यान रखा गया है। अध्ययन-अध्यापन में सुविधा की दृष्टि से सहायक सूचनाएँ और टिप्पणियाँ आदि परिशिष्ट में दी गई हैं। भूमिका में हिंदी काव्य-परम्परा का संक्षिप्त इतिहास भी दिया गया है। मुझे विश्वास है कि अपने इस रूप में यह संग्रह, हिंदी काव्य रचनाओं के विश्वविद्यालयस्तरीय अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इस हिंदी काव्य संग्रह में रचनाओं के संकलन, भूमिका तथा टिप्पणी आदि को अत्यन्त लगन एवं श्रम से तैयार करने के लिए संकलन-कर्ता हमारे साधुवाद के पात्र हैं।

बाल गोविन्द मिश्र
निदेशक

आमुख

संस्थान ने स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों के हिन्दी छात्रों के लिए कविता, कहानी, निबन्ध एवं एकांकी विधाओं के संग्रहों का प्रकाशन किया है। प्रस्तुत कृति कबीर से लेकर धूमिल तक हिन्दी काव्य के विभिन्न कालों एवं प्रवृत्तियों के प्रमुख कवियों की रचनाओं का संकलन है।

सामान्य छात्रों के लिये भाषिक-दृष्टि से कठिन होने के कारण आदिकाल के कवियों की कविताएँ इस संग्रह में स्थान नहीं पा सकी हैं। भक्तिकालीन हिन्दी कवियों में कबीर, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास तथा गोस्वामी तुलसीदास भक्ति की प्रमुख शाखाओं एवं धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके अतिरिक्त प्रेम-पीड़ा की भाव विह्वलता तथा भाषा में राजस्थानी के प्रयोगों से छात्रों को परिचित कराने की दृष्टि से मीरा का तथा श्रीकृष्ण के प्रति अभिव्यक्त सहजभक्ति उद्‌गारों की दृष्टि से रसखान का अपना स्थान है। इसी प्रकार अकबर दरबार के राज्याश्रित कवि होने तथा नीति विषयक दोहों का प्रणयन करने की दृष्टि से रहीम का भी अपना स्थान है।

रीतिकालीन कवियों में कवि देव एवं बिहारी रीतिबद्ध काव्यधारा के तथा कवि घनानन्द रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं।

आधुनिक काल में ब्रज भाषा के स्थान पर कविता में खडी बोली की प्रतिष्ठा तथा विषयगत बदलाव की दृष्टियों से अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा मैथिलीशरण गुप्त का अन्यतम स्थान है। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन से उत्पन्न स्वाधीनता आन्दोलन के मानस स्पंदनों से प्रभावित 'शुद्ध गांधीवादी' कवियों में से इस संग्रह में रामनरेश त्रिपाठी को स्थान प्राप्त हुआ है।

छायावादी धारा के प्रतिनिधि कवि जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा हैं।

अवसाद, विषाद एवं वेदना व्यंजक तथा मादक, मृदुल एवं आत्मविह्वल गीतों के गायक बच्चन तथा अप्रतिहत आशा और पौरुष का जीवनदर्शन लेकर एक ओर

देश प्रेम तथा दूसरी ओर व्यक्तिगत राग के धरातल पर मानव की सहज मांसलता को ऊष्मा प्रदान करने वाले दिनकर की रचनाएँ प्रस्तुत कृति में संग्रहीत हैं।

हिन्दी में प्रयोगवाद, प्रगतिवाद तथा नई कविता के सार्थक हस्ताक्षरों में से इस संग्रह में 'तारसप्तक' के कवियों में अज्ञेय, मुक्तिबोध एवं गिरिजाकुमार माथुर तथा 'दूसरा सप्तक' के कवियों में भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती तथा रघुवीर सहाय की रचनाएँ संग्रहीत हैं।

जिन कवियों को 'दूसरा सप्तक' में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया गया था किंतु जिन्होंने कविता को प्रयोग का विषय मानने वाले राहों के अन्वेषियों की पंक्ति में सम्मिलित होने से इंकार कर दिया था उनमें सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि के नागार्जुन एवं केदारनाथ अग्रवाल की रचनाएँ समाहित हैं।

सातवें दशक के अन्त तथा आठवें दशक के पूर्वार्द्ध के रचनाकारों के प्रति-निधि के रूप में धूमिल को स्थान प्राप्त हुआ है जिन्होने सामाजिक-राजनैतिक चेतना को तीखे रूप में वैचारिक भूमि पर प्रस्थापित करने का प्रयास किया।

इस काव्य संग्रह की भूमिका भारतीय साहित्य के संदर्भ में हिन्दी काव्यधारा की अंतश्चेतना को समझने में सहायक सिद्ध होगी। मूल पाठ संस्करणों को जोड़कर पुस्तक का यह छठवाँ संस्करण है तथा पुस्तक के सम्पूर्ण भाग की दृष्टि से यह तृतीय संशोधित संस्करण का पुनर्मुद्रित चतुर्थ संस्करण है। भूमिका तथा परिशिष्ट भाग की टिप्पणियों को परिवर्तित एवं संशोधित करने के लिए संग्रह के संपादक साधुवाद के पात्र हैं।

(महावीर सरन जैन)
निदेशक

विषय-सूची

क्र. सं. अध्याय — पृष्ठ सं.

☐ भूमिका — 1-50

1. कबीर — 51
[पद 51, साखी 54]

2. मलिक मुहम्मद जायसी — 57
[नागमती वियोग-वर्णन 57]

3. सूरदास — 62
[(क) विनय 62, (ख) भ्रमर-गीत 63]

4. गोस्वामी तुलसीदास — 66
[(क) भरत-महिमा 66, (ख) कवितावली 70, (ग) विनय-पत्रिका 71, (घ) गीतावली 72]

5. मीरा — 73
[पद 73]

6. रसखान — 76

7. रहीम — 78
[वन्दना 78, अनन्यता 78, प्रेम 78, राम-नाम 78, मित्र 79, चेतावनी 79, लोक-नीति 79]

8. देव — 81
[मंगलाचरण 81, श्रृंगार (राधा-कृष्ण) 81, पूर्व-राग 81, विरह-वर्णन 82, ऋतु वर्णन : शरद 83]

9. बिहारी — 84
[भक्ति 84, ऋतु-वर्णन 84, नीति 84, सौन्दर्य और प्रेम 86]

10. घनानन्द — 87
[प्रेम-साधना 87, प्रेम की अनन्यता 87, उपालम्भ 87, विरह 88, विविध 88]

11. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — 90
[पवन-दूतिका 90]

क्र. सं. अध्याय पृष्ठ सं.

12. मैथिलीशरण गुप्त 94
[1. यशोधरा के विरह गीत 94, 2. सीता का उटज गीत 97, 3. नहुष का पतन 100, 4. आशा 102, 5. अन्ध कुणाल 103]

13. रामनरेश त्रिपाठी 105
[विधवा का दर्पण 105]

14. जयशंकर प्रसाद 108
[1. चिन्ता 108, 2. आँसू 118, 3. ले चल वहाँ 121, 4. मधुमय देश 122, 5. श्रद्धा का गीत 122, 6. सुवासिनी का गीत 123, 7. पेशोला की प्रतिध्वनि 124]

15. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' 126
[1. जुही की कली 126, 2. भिक्षुक 127, 3. तोड़ती पत्थर 128, 4. बादल राग 129, 5. सन्ध्या सुन्दरी 130, 6. तुम और मैं 131, 7. मैं अकेला 133, 8. बाँधो न नाव 133, 9. वर दे, वीणा वादिनि 134]

16. सुमित्रानन्दन पंत 135
[1. प्रथम रश्मि 135, 2. ताज 136, 3. गीत विहग 137, 4. तप रे ! 138, 5. धेनुएँ 139]

17. महादेवी वर्मा 141
[1. मैं नीर भरी दुःख की बदली 141, 2. पंथ होने दो अपरिचित 142, 3. मधुर-मधुर मेरे दीपक जल ! 143, 4. हे चिर महान् ! 144 5. कन-कन में जब छाई थी 145]

18. रामधारीसिंह 'दिनकर' 146
[1. जनतंत्र का जन्म 146, 2. अभिनव मनुष्य 147, 3. पुरुरवा 149, 4. उर्वशी 150, 5. परिचय 152]

19. हरिवंश राय 'बच्चन' 154
[1. जुगनू 154, 2. पथ की पहचान 155]

20. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' 158
[1. हिरोशिमा 158, 2. कलगी बाजरे की 159, 3. यह दीप अकेला 160, 4. नन्दादेवी 161]

21. भवानी प्रसाद मिश्र 163
[1. होना तो उनका है 163, 2. गीत फ़रोश 164, 3. अज्ञात पंछी 166, 4. अभिव्यक्ति 167]

क्र. सं. अध्याय पृष्ठ सं.

22. नागार्जुन 169
[1. प्रेत का बयान 169, 2. बहुत दिनों के बाद 171, 3. गीत 172]

23. शमशेर बहादुर सिंह 173
[1. अम्न का राग 173, 2. एक पीली शाम 177, 3. धूप कोठरी के आइने में खड़ी 177]

24. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' 178
[1. ब्रह्म राक्षस 178, 2. पूंजीवादी समाज के प्रति 184]

25. केदारनाथ अग्रवाल 185
[1. बसन्ती हवा 185, 2. जीवन से 186]

26. गिरिजाकुमार माथुर 187
[1. बसन्त की रात 187, 2. कौन थकान हरे जीवन की 188, 3. बुद्ध 188, 4. गीत 190]

27. धर्मवीर भारती 191
[1. टूटा पहिया 191, 2. कस्बे की शाम 192, 3. पराजित पीढ़ी का गीत 193, 4. बोआई का गीत 194]

28. रघुवीर सहाय 195
[1. धूप 195, 2. रामदास 196]

39. धूमिल 198
[मोचीराम 198]

☐ परिशिष्ट 203-366

[**1. कबीर** 205 (पद 210, साखी 212); **2. मलिक मुहम्मद जायसी** 213 (नागमती वियोग वर्णन 215, अन्तःकथा 217); **3. सूरदास** 219 (विनय 222, भ्रमर-गीत 225); **4. गोस्वामी तुलसीदास** 228 (भरत महिमा 231, कवितावली 231, विनय पत्रिका 233), **5. मीराबाई** 236 (मीरा के पद 237); **6. रसखान** 239 (रसखान 241); **7. रहीम** 243 (भावार्थ और संदर्भ 245); **8. देव** 248; **9. बिहारी** 254; **10. घनानन्द** 261; **11. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'** 265 (पवन दूतिका 267); **12. मैथिलीशरण गुप्त** 270 (1. यशोधरा 271, 2. सीता का उटज गीत 273, 3. नहुष का पतन 276, 4. आशा 278, 5. अन्ध कुणाल 278); **13. रामनरेश त्रिपाठी** 279 (विधवा का दर्पण 280); **14. जयशंकर प्रसाद** 282 (1. कामायनी 285, 2. आँसू 292,

3. ले चल वहाँ 297, 4. मधुमय देश 298, 5. श्रद्धा का गीत 299 6. सुवासिनी का गीत 299, 7. पेशोला की प्रतिध्वनि 300); **15. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'** 301 (1. जुही की कली 303, 2. भिक्षुक 305, 3 तोड़ती पत्थर 305, 4. बादल राग 306, 5. संध्या सुन्दरी 308, 6. तुम और मैं 309, 7. मैं अकेला 309, 8. बाँधो न नाव 311, 9. वर दे वीणा वादिनि 311); **16. सुमित्रानन्दन पंत** 312 (1. प्रथम रश्मि 315, 2. ताज 316, 3. गीत विहग 318, 4. तप रे 319, 5. धेनुएँ 319); **17. महादेवी वर्मा** 321 (1. मैं नीर भरी दुःख की बदली 323, 2. पंथ होने दो अपरिचित 324, 3. हे चिर महान् 326, 4. कन-कन में जब छाई थी 327, 5. मधुर-मधुर मेरे दीपक जल 328); **18 रामधारीसिंह दिनकर** 329 (1. जनतंत्र का जन्म 331, 2. अभिनव मनुष्य 331, 3. पुरुरवा 332, 4. उर्वशी 333); **19. डॉ० हरिवंशराय बच्चन** 333 (1. जुगनू 335, 2. पथ की पहचान 336); **20. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'** 337 (1. हिरोशिमा 339, 2. कलगी बाजरे की 339, 3. यह दीप अकेला 340, 4. नन्दा देवी 340), **21. भवानी प्रसाद मिश्र** 341 (1. होना तो उनका है 342, 2 गीत फ़रोश 343, 3. अज्ञात पंछी 343, 4. अभिव्यक्ति 343); **22. नागार्जुन** 344 (1. प्रेत का बयान 346, 2. बहुत दिनों के बाद 347, 3. गीत 347); **23. शमशेर बहादुर सिंह** 347 (1. अम्न का राग 249, 2. एक पीली शाम 350, 3. धूप कोठरी के आइने में खड़ी 350); **24. गजानन माधव 'मुक्तिबोध'** 350 (1. ब्रह्म राक्षस 352, 2 पूंजीवादी समाज के प्रति 353); **25. केदारनाथ अग्रवाल** 353 (1. बसन्ती हवा 354, 2. जीवन से 355); **26. गिरिजाकुमार माथुर** 355 (1. वसन्त की रात 357, 2. कौन थकान हरे जीवन की 357, 3. बुद्ध 358, 4. छाया मत छूना (गीत) 358); **27. धर्मवीर भारती** 359 (1. टूटा पहिया 360, 2. कस्बे की शाम 360, 3. पराजित पीढ़ी का गीत 361, 4. बोआई का गीत 361); **28. रघुवीर सहाय** 361 (1. धूप 363, 2. रामदास 363); **29. धूमिल** 364 (मोचीराम 366) ।]

भूमिका

गति जीवन और स्थिरता विनाश का प्रतीक है। गतिमय जीवन परिवर्तित और विकसित होता है। यही प्रकृति का नियम है। साहित्य का इतिहास इसका जीता-जागता उदाहरण है। परिवर्तन के इसी अनवरत चक्र में हिंदी साहित्य की जाह्नवी सहस्त्रधारा होकर अनेक दिशाएँ बदलती रही हैं। विगत युगों की पल-पल परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के फलस्वरूप निरन्तर ही नवीन-नवीन विचारधाराओं को अपने में आत्मसात् करना उसका लक्ष्य रहा है। युगानुसार प्रवृत्तियाँ उसमें उभरी हैं। कहीं भक्ति और शृंगार की, कहीं सिद्धों की हठयोग साधना, कहीं आश्रयदाताओं की प्रशंसा तो कहीं आदर्शवाद और यथार्थवाद, कहीं जीवन की विकृतियों और विसंगतियों के कारण कुंठा, संत्रास से त्रस्त मानव की चीख-पुकार है। अपने व्यापक परिप्रेक्ष्य में हिंदी कविता इन सभी रूपों को अपने में आत्मसात् कर प्रवाहित हो रही है।

इतिहास के संदर्भ में इस प्रकार के प्रश्न शनैः शनैः उठते रहे हैं कि हिंदी का प्रारंभ कब से हुआ ? हिंदी कविता का प्रादुर्भाव किस काल में हुआ ? हिंदी का आदि कवि कौन है ? इसी प्रकार कविता क्या है ? कवि कौन है ? इत्यादि प्रश्न सदा से सहृदयों को उद्वेलित करते रहे हैं। विद्वानों ने इन प्रश्नों का समाधान करने का प्रयत्न किया, उसके फलस्वरूप काव्य में अनेक वादों का जन्म हुआ। कविता को परिभाषा की सीमा में बाँधने का जब-जब प्रयास हुआ है, जीवन के बदलते पहलुओं ने उसे झकझोर डाला। यह बात आज साहित्य के इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। साहित्य मानव-जीवन की भावात्मक स्थिति एवं गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। हिंदी कविता के इतिहास को समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन अपेक्षित हो जाता है।

हिंदी साहित्य का प्रारंभिक चरण : सिद्ध साहित्य और जैन साहित्य

यह सर्वविदित है कि हिंदी साहित्य का प्रादुर्भाव युद्ध, संघर्ष और अशांति के वातावरण में हुआ था। यह युग मुसलमानों के आक्रमण का युग था। वैदिक काल से चली आने वाली भारतीय संस्कृति की धारा निष्प्राण और निस्तेज होती जा रही

थी। शास्त्रीय आचार संहिता[1] समाज के लिए दुर्वह बोझ बन गयी थी। इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप नैतिक एवं धार्मिक उत्पीड़न का विरोध जैन एवं बौद्ध धर्म के माध्यम से प्रारंभ हुआ। उन्होंने शास्त्रों के विधान को स्वीकार नहीं किया। इन लोगों ने वेदों को नहीं माना और न ही जातिवाद को स्वीकार किया। सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य 'जनभाषा' में लिखा वह हिंदी के सिद्ध-साहित्य[2] की सीमा में आता है। इस प्रकार हिंदी के पूर्वी क्षेत्र में सिद्धों ने और पश्चिम में जैन साधुओं ने अपने मत का प्रचार हिंदी कविता के माध्यम से किया। आगे चलकर सिद्धों की वाममार्गी भोग-प्रधान योग साधना की प्रतिक्रिया के रूप में नाथ संप्रदाय[3] उठ खड़ा हुआ। इस संप्रदाय के प्रारंभकर्त्ता गोरखनाथ माने जाते हैं। प्राय: सभी भाषाओं के प्रारम्भिक साहित्य के विकास में नाथ पन्थी तथा शैव साधुओं का महत्वपूर्ण योग रहा है। सिद्ध एवं नाथ साहित्य का सृजन यद्यपि दक्षिण में उत्तरी और पूर्वी भारत की अपेक्षा बहुत कम हुआ है फिर भी नाथ-प्रभाव दक्षिण तक पहुँच गया था। 'नवनाथ चरित्रम्' (तेलुगु) आदि कृतियाँ इसका प्रमाण हैं। मराठी और बंगला में भी नाथ साहित्य की विशिष्ट धारा प्रवाहित हुई है। मराठी में तो स्वयं गोरखनाथ की ही वाणी मिलती है जिसका नाम है 'अमरनाथ सनवड'। बंगला तो नाथ-संप्रदाय का गढ़ था। गुण परिमाण दोनों की दृष्टि से बंगला का नाथ-साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है। उसमें बौद्धों के सहजिया संप्रदाय तथा

---

1. वेद विहितो धर्म:। वेद विहित धर्म को 'आचार' कहा गया है। वह ग्रंथ जिनमें व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन के आधारभूत नियम लिखे गए हों उसे 'आचार संहिता' कहा गया है। यह वेदों पर आधारित है।

2. सिद्ध साहित्य अपभ्रंश-दोहों तथा चर्यापदों के रूप में उपलब्ध है और जिसमें बौद्ध तांत्रिक सिद्धान्तों को मान्यता दी गई है। बौद्ध सिद्धाचार्यों की रचनाएँ दो काव्य रूपों में उपलब्ध हैं—दोहा कोष तथा चर्यापद।

   भारतीय साहित्य कोश—पृ०। 349

3. नाथ-संप्रदाय के सिद्धान्तों में ईश्वर की उपासना तथा बाह्य विधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गयी है। वेद, शास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है। तीर्थाटन आदि निष्फल कहे गये हैं। इस संप्रदाय का साहित्य पन्द्रहवीं शती तक लिखा जाता रहा। कविता का विषय माया-मोह त्याग एवं आध्यात्मिक चिंतन है। इसमें योगसाधना की प्रधानता है। नाथ-संप्रदाय के साहित्य की भाषा पंजाबी और हिंदी मिश्रित है।—

   भारतीय साहित्य कोश—पृ० 621-622

चर्यागीत[1] आदि उपलब्ध हैं। असमिया तथा उड़िया के प्राचीन काव्य पर नाथ आन्दोलन का प्रभाव तो है लेकिन नाथ-साहित्य की कोई स्वतन्त्र धारा वहाँ नहीं दिखाई देती। बंगाल के बाद इस संप्रदाय का दूसरा विकास केंद्र पंजाब था। पंजाबी के इतिहासकार गोरखनाथ और चरपटनाथ को अपने साहित्य के आरंभिक लेखक मानते हैं। इस साहित्य के सृष्टा गुरू, नाथ, सिद्ध, पीर और बाबा आदि नाम से प्रसिद्ध थे। वस्तुतः वही काव्य-प्रवाह हिंदी में भी आया। आगे चलकर भक्तिकाल के संतमत का विकास भी वास्तव में नाथ-साहित्य से ही हुआ है जिसके प्रथम कवि कबीरदास जी थे।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सिद्धों की रचनाओं से ही हिन्दी साहित्य का प्रारंभ मानना युक्तिसंगत है। अधिक विस्तार में न जाकर उत्तर अपभ्रंश[2] से ही हिंदी का पूर्वापर संबंध नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। अपभ्रंश काव्य का सबसे प्राचीन रूप सिद्ध-साहित्य और जैन-साहित्य में मिलता है, साथ ही धार्मिक चेतना के मूल-रूप को ध्यान में रखकर सिद्ध साहित्य से ही हिंदी साहित्य का प्रारंभ मानना युक्तिसंगत है।

आदिकाल

जिस समय भारतीय भाषाओं का साहित्य अपने विकासक्रम में था उस समय भारत में राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में काफी उथल-पुथल हो रही थी जिसका सबसे अधिक प्रभाव उत्तर भारत पर था, दक्षिण भारत इससे अछूता रहा। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद उत्तरी भारत कई छोटे-छोटे राजपूत राज्यों में विभक्त हो गया था। ये सभी राज्य आपस में एक दूसरे से लड़ा करते थे। गजनवी की मृत्यु (सं. 1087), मोहम्मद गोरी की पहली चढ़ाई (सं. 1047), जिसमें पृथ्वीराज बंदी बना लिया गया था, के बाद से ही भारत में मुस्लिम शासन की नींव पड़ी जिसने राजपूती वीरता को शिथिल कर दिया था। ये शासक परस्पर वैर शोधन के लिए युद्धरत

---

1. 1926 ई. में डा. सुनीतिकुमार चटर्जी ने भाषा तात्विक विचार के आधार पर इसे बंगला भाषा का प्राचीनतम रूप सिद्ध किया। इन पदों के लेखक लुइपाद, कानुपा, भुसुक सरहपाद आदि बौद्ध सहजिया मतावलंबी साधक हैं। इसकी भाषा सांध्यभाषा है। दसवीं से बारहवीं शती के बीच रचित योगियों के ये गीत बंगला भाषा के प्राचीनतम उदाहरण हैं।

2. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के शब्दों में 'उत्तर अपभ्रंश ही पुरानी हिंदी है। साहित्यिक अपभ्रंश से इतर बोलचाल की उस भाषा का बोधक है, जो साहित्यिक अपभ्रंश के रूप में स्वीकृति के पश्चात उसके बाद के रूप में स्थापित होती जा रही थी।

होकर अपनी शक्ति क्षीण कर रहे थे। देश के गौरव का उनको ध्यान न था। जिसका परिणाम यह हुआ कि शनैः शनैः इस्लामी संस्कृति के प्रसार ने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पर अपना प्रभाव डाला और यहाँ के साहित्य, धर्म-साधना और दार्शनिक विचारधारा तक इससे अछूती नहीं रही। इस प्रकार आठवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी ईसवी तक के भारतीय इतिहास का रूप हिन्दू-सत्ता के धीरे-धीरे क्षय होने तथा इस्लाम सत्ता के धीरे-धीरे उदय होने की कहानी है जिसके फलस्वरूप कोई भी एक प्रवृत्ति साहित्य में स्थान न पा सकी। अतः इस काल का समस्त हिंदी साहित्य आक्रमण और युद्ध से प्रभावित होकर सामने आया।

आदिकाल के इस युद्ध प्रभावित जीवन में कहीं संतुलन न था। प्रमुख वीरगाथाकाल पृथ्वीराज चौहान, जयचंद, परमर्दिदेव आदि राजाओं तथा उनके अनुयायियों के प्रतिद्वंदितापूर्ण चरित्रों पर आश्रित है। धीरे-धीरे मुस्लिम राजाओं एवं सामंतों की विलासिता हिंदू वर्ग में समाविष्ट हो गयी। राजपूतों के लहू में मुगल दरवार की विलासिता प्रवेश कर गयी जिसका स्पष्ट प्रभाव इस युग के साहित्य पर दिखाई देता है। उस काल के साहित्य-निर्माता चारण लोग थे जो अपने आश्रयदाताओं का यशोगान कर उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करते थे। चारण काव्य लिखने की यह प्रवृत्ति अधिकांश भाषाओं में प्रायः समान है। तमिल भाषा में चारण काव्य संगम काल[1] के प्रारम्भ से ही मिलते हैं। 'पोरुनराट्रुप्पदई अर्थात् 'सेनापति की बात' करइकल के राजा की स्तुति में लिखी गई है। संगम-युग का प्रसिद्ध महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम्' भी चारणकाव्य है। तेलुगु में श्रीनाथ का

1. तमिलनाडु में प्राचीन काल में संघ (संगम) स्थापित करके साहित्य सर्जन हुआ करता था। तमिल का प्राचीनतम साहित्य जो उपलब्ध है वह तीसरे संगम काल (संघ काल) या अंतिम संघ का है। प्रथम और दूसरे संघ (संगम) का कोई साहित्य नहीं मिलता। उस काल के कवियों और साहित्य का उल्लेख परवर्ती साहित्य में मिलता है। यों तो संघ काल के काल-निर्णय पर भारी मतभेद है फिर भी यह निश्चित है कि ईसवी पूर्व कई शताब्दियों पहले ही तमिल की साहित्य संपदा समृद्ध थी जिसमें से वहुत थोड़ा-सा अंश हमें प्राप्य है।

संगम कालीन साहित्य में लक्षण ग्रंथ भी हैं, लक्ष्य ग्रंथ भी। संगम कालीन लक्षण ग्रंथ तोलकाप्पियम है। संस्कृत में जो स्थान पाणिनि का है, वही तमिल में तोलकाप्पियम का है। इसमें काव्य-रीतियों का अच्छा विवेचन है।

संगम कालीन लक्ष्य ग्रंथों को दो भागों में बाँटा गया है। अह्म (आंतरिक प्रेम संबंधी काव्य), पुरम (बाहय, वीरता और धर्म के काव्य)।

लोकप्रिय काव्य 'पलनाटिवीरचरित्रम्' इस वर्ग के श्रेष्ठ काव्य हैं । मलयालम के आदि काव्य-संग्रह 'पझय पाट्टकुल', मराठी के वीराख्यान रूप पवाड़े चारण काव्य हैं जिसमें चारण कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं और वीरों के शौर्य का यशोगान किया है । गुजराती साहित्य में श्रीधर रचित 'रणमल्लछंदे' आदि चारणकाव्य की अमूल्य विभूतियाँ हैं । इस प्रकार उस समय के काव्य पर वीरता की छाप सर्वत्र स्पष्ट है जिसके परिणामस्वरूप इतिहासकारों ने आदिकालीन साहित्य को 'वीरगाथाकाल' की संज्ञा से सुशोभित किया है । इन वीरगाथाओं के साथ-साथ काव्य में शृंगार का पुट (छाप) पर्याप्त मात्रा में था ।

इस युग का प्रमुख प्रबंध काव्य चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' आदिकाल के ग्रंथों में सबसे प्रसिद्ध और प्रतिनिधि ग्रंथ माना जाता है । रासो काव्य लेखन की परंपरा इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक है । इसमें वीरतापूर्ण भावों की बड़ी सुंदर अभिव्यंजना की गई है । वीरगाथा प्रबंधकाव्यों के साथ मुक्तक वीरगीत के रूप में नरपति नाल्ह कवि का 'बीसलदेव रासो' ही एकमात्र ऐसा रासो काव्य है जिसमें वीरत्व व्यंजना की अपेक्षा प्रेम के संयोग और विप्रलम्भ दोनों रूपों की प्रधानता है । इसके अतिरिक्त दलपतिविजय का 'खुमाण रासो', जगनिक का 'आल्हखंड' एवं 'ढोला-मारूरा-दूहा', 'परमाल रासो' आदि रचनाएँ इसके उदाहरण हैं ।

समग्ररूपेण आदिकालीन साहित्यिक पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध रही है । संस्कृत साहित्य तो समृद्ध बन चुका था । दूसरी ओर अपभ्रंश साहित्य जैनधर्म का आश्रय लेकर सुंदर कथा काव्यों और मुक्तकों का सृजन कर रहा था । सिद्ध और नाथ साहित्य यद्यपि उच्चकोटि के काव्यरूप न दे सके परंतु भाषा के क्षेत्र में पुरानी हिंदी के विकास में इनका योगदान विशेष रूप से रहा है । जैसे-जैसे हिंदी का विकास होता गया वह प्राकृत और अपभ्रंश के बंधन को छोड़ती गयी, जिसका बहुत कुछ श्रेय आदिकालीन साहित्य को है ।

मैथिली साहित्य और विद्यापति

आदिकालीन परिचय के समक्ष एक मात्र समस्या विद्यापति को लेकर उठ खड़ी हुई है । उन्हें हिंदी का आदि गीतकार कहा जाता है। ये 'मैथिल कोकिल' नाम से भी प्रसिद्ध हैं । मधुर गीतों के रचयिता होने के कारण इन्हें 'अभिनव जयदेव' के नाम से भी पुकारा जाता है । इनकी प्रारंभिक कृति 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' नामक दो अवहट्ट रचनाएँ हैं जिसमें कवि ने अपने आश्रयदाता मिथिला नरेश कीर्तिसिंह के शौर्य प्रशस्ति का गान किया है । विद्यापति की कीर्ति का मुख्य आधार मैथिली लोकभाषा में रचित पदावली है । इसमें राधा-कृष्ण की लीलाओं का मधुर चित्रण है । विद्यापति के पदों का रूपांतर बंगला में भी पाया जाता है । विषय की

दृष्टि से विद्यापति भक्त कवियों की परंपरा में आते हैं लेकिन शृंगार की अतिशयता के कारण उसे भक्तिकाल की कृति कहने में भी संकोच होता है। विद्यापति अपने युग में एक विशिष्ट कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं जो प्राचीन का अनुयायी होकर भी हिंदी में नए काव्य रूपों (पद परंपरा) को जन्म दे रहा है। वास्तव में विद्यापति एक ऐसे संधि स्थल पर खड़े हैं जहाँ हिंदी साहित्य का एक युग समाप्त होकर दूसरे युग की शुरूआत हो रही है।

इस प्रकार हिंदी का आदिकाल राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से संघर्ष और गृहकलह का रूप था और धार्मिक दृष्टि से दो भिन्न स्वभाव वाली साधनाओं का विराट जन-आन्दोलन था। मुसलमानों के आक्रमण से भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का ह्रास हो चुका था। ऐसी स्थिति में हम अपने को ऐसे धार्मिक आंदोलन के मध्य पाते हैं जो उन सब राजनीतिक, सामाजिक आंदोलनों से कहीं अधिक विशाल और भारतव्यापी था।

मध्ययुगीन जागरण तथा भक्तिकाल

यह कहना उपहासास्पद होगा कि मुसलमानों के आक्रमण से आक्रांत जनता भक्ति की शरण में गई और यहीं से 'भक्तिकाल' का प्रारंभ हुआ। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन कि 'भारतीय चिंता स्वभावतः ही इस ओर अग्रसर होती गई है।' हाँ इतना अवश्य कह सकते हैं कि प्रारंभ से चली आ रही वर्णाश्रम व्यवस्था एवं सिद्धों और नाथों की जो योगधारा आगे चलकर विदेशी आक्रमणों के प्रभाव से कुछ समय के लिए मंद पड़ गई थी, वह समय पाकर पुनः प्रज्ज्वलित हो उठी जिसे भारत के सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आंदोलन कहा गया है। यह आंदोलन हिंदी में नाथ, सिद्धों, कबीर जैसे निर्गुण संतों, जायसी जैसे सूफी प्रेममार्गियों, सूर जैसे कृष्णभक्त कवियों तथा तुलसी जैसे रामभक्त कवियों में परिलक्षित होता है। भक्ति आंदोलन का यह रूप भारत की अधिकांश भाषाओं में प्रायः समान है। दक्षिण की भाषाओं में भक्ति भावना का प्राबल्य अपेक्षाकृत अधिक है। आलवार[1] भक्तों की शृंखला इसका उदाहरण है। आलवार भक्तों में भक्तिपूर्ण उपासना पद्धति विद्यमान थी। आलवारों का भक्तिवाद जनसाधारण का भक्तिमत

---

1. आलवारों की विशेष चर्चा यहाँ आवश्यक है क्योंकि आलवार ही वास्तव में उत्तर-भारत में भक्ति परंपरा के प्रेरक रहे हैं और श्रीरामानंद उन्हीं आलवारों की परंपरा में आते हैं। ये आलवार मुख्यतः बारह बताये जाते हैं जिनमें आण्डाल नामक भक्त महिला भी थीं जिनकी तुलना भक्तिकालीन मीराबाई से की जाती है। आण्डाल के अन्य नाम हैं—कोदै या गोदा, शूडिक्कोडुत्त नाच्चियार आदि। आण्डाल की दो रचनाएँ हैं। तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोलि। इन दोनों रचनाओं का धार्मिक एवं साहित्यिक महत्व अक्षुण्ण है।

था जिसमें किसी विशिष्ट जाति-पाँति अथवा बाह्याचारों का प्राधान्य न था। ये आलवार मुख्यतः निम्न जाति के थे और अशिक्षित भी किंतु इनमें ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ भक्ति थी। इन्हीं आलवारों की परम्परा में वैष्णव आचार्य श्री रामानुज का प्रादुर्भाव हुआ। तमिल में वैष्णव काव्य संग्रह 'नालायिरप्रबंधम्' नाम से प्रसिद्ध है। इसके रचयिता बारह आलवार भक्त हैं। तेलुगु की प्राचीनतम रामायण 'रंगनाथ रामायण' तथा कवयित्री मुद्दुपलजि की काव्यकृति 'राधिकासांत्वनम' कृष्ण काव्य की सरस रचनाएँ हैं। इसी प्रकार कन्नड़ में भी वैष्णव भक्तों का पद-साहित्य उपलब्ध है जो वहाँ 'दास साहित्य' के नाम से प्रसिद्ध है। मलयालम का 'कथकलि साहित्य' भी मूलतः भक्तिपरक है। 'कृष्णगाथा' मलयालम में वैष्णव काव्य का आदि ग्रन्थ माना जाता है। वैष्णव काव्यधारा का सबसे अधिक वेग गुजराती काव्य में मिलता है। गुजराती में कृष्णभक्ति का प्राधान्य है। नरसी मेहता, भालण, विष्णुदास, प्रेमचन्द और मीराबाई की कृष्णभक्तिपरक रचनाएँ और मराठी में सन्त ज्ञानेश्वर, तुकाराम और गुरुरामदास की कृतियाँ इसी भक्तिधारा की विविध लहरें हैं। बंगला, असमिया और उड़िया में वैष्णव भक्ति का आंदोलन चंडीदास, सरलदास और महाप्रभु शंकरदेव की रचनाओं में प्रतिबिंबित होता है। इन्होंने रामभक्ति एवं कृष्णभक्तिपरक रचनाएँ की हैं। 'बड़गीत' (बरगीत)[1] असमिया का विशिष्ट काव्यरूप है जिसका प्रमुख विषय कृष्ण का बाल वर्णन है। असमिया रामायण तथा उड़िया रामायण रामकाव्य के अन्य उदाहरण हैं।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि हिंदी का भक्ति साहित्य मात्र उत्तर भारत तक ही सीमित न था वरन् बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, आसाम से होता हुआ दक्षिण की सभी भाषाओं में अपना अप्रतिम स्थान रखे हुए है। इतना ही नहीं समस्त उत्तर-भारत में वैष्णव भक्ति लाने का श्रेय श्रीरामानुज को है जो दक्षिण के ही थे। इन्हीं की शिष्य परंपरा में राघवानन्द के शिष्य स्वामी रामानन्द हुए। भक्तिकाल की समस्त चिन्तनधारा के स्वामी रामानन्द ही थे। इस नवीन भक्ति आंदोलन ने मानव-मात्र के लिए भक्ति का द्वार उन्मुक्त कर दिया था। एक साथ शूद्रों और विप्रों को वैष्णव धर्म में दीक्षित होने का अधिकार दिया। इसका स्पष्ट प्रमाण एक ओर वैष्णव

---

1. 'बर' का अर्थ या तो बड़ा है अथवा श्रेष्ठ। गीतों के उच्च आध्यात्मिक गुणों के के कारण शायद यह नाम पड़ा होगा। शंकरदेव जो असमिया साहित्य जगत के सूर्य कहलाते हैं, उन्हीं के अनुसरण पर माधवदेव ने बरगीत लिखे थे जिनका मुख्य विषय बालकृष्ण की लीलाओं का वर्णन था। शंकरदेव ने भी बरगीत लिखे लेकिन उनका मुख्य विषय जीवन की नश्वरता तथा हरिभजन आदि था।

भारतीय साहित्य कोश पृ. 787

संत गोस्वामी तुलसीदास हैं तो दूसरी ओर वर्ण विरोधी कबीरदास और रैदास। विशिष्ट बात यह है कि इन वैष्णव भक्तों ने अपने चतुर्दिक फैले मत-मतांतरों के मध्य समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया जिसके मध्य हिंदू, मुस्लिम, उच्च-निम्न जाति आदि सभी को एक साथ समाविष्ट कर लिया जिसकी कि उस युग में अत्यधिक आवश्यकता थी। वास्तव में रामानन्दी भक्ति में विभिन्न धर्म, संप्रदाय समाहित हो गए हैं—यदि यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। रामानन्द के वैष्णव संप्रदाय से प्रभावित होकर कुछ अन्य वैष्णव संप्रदाय भी उत्पन्न हुए थे। ये मुख्यत: कृष्ण भक्ति समर्थक थे, एकमात्र रामानन्द का रामवत्' सम्प्रदाय रामभक्ति पोषक था—अन्य सभी वल्लभ संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय कृष्णभक्ति पोषक थे।

इस प्रकार इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं।

1. **निर्गुण भक्ति काव्य**—ज्ञानाश्रयी शाखा/संत काव्य धारा
प्रेममार्गी शाखा/सूफी काव्य धारा

2. **सगुण भक्ति काव्य**—रामभक्ति शाखा
कृष्ण भक्ति शाखा।

निर्गुण भक्ति काव्य का स्वरूप—निर्गुण का अर्थ है गुण-रहित, गुणातीत। निर्गुण-संप्रदाय को संत-संप्रदाय, निर्गुण-मार्ग अथवा निर्गुनिया कहते हैं। अर्थात् निराकार की उपासना करने वाले को निर्गुण भक्तिमार्गी कहते हैं। निर्गुण संत काव्य भक्तिकालीन साहित्य का आरंभिक अंश है जिसके प्रवर्तक कबीरदास जी माने जाते हैं। दूसरे शब्दों में आदिकालीन नाथ-साहित्य से ही भक्तिकाल के निर्गुण-पंथ (संत-मत) का विकास हुआ है, जिसके प्रथम कवि कबीरदास हैं। संत-काव्य की यह परंपरा प्राय: सर्वत्र व्याप्त है। तमिल के अठारह सिद्ध संत कवि थे जिन्होंने सरल वाणी में रहस्यवादी रचनाएँ की हैं। तेलुगु में वेमन, वीरब्रह्म और कन्नड़ के सर्वज्ञ आदि इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं। मराठी का संत-काव्य तो अत्यन्त प्रसिद्ध है। संत ज्ञानदेव उनके अनुयायी नामदेव, और संत तुकाराम और वारकरी पंथ के अन्य संत तथा एकनाथ आदि संत-काव्य परंपरा के प्रतिनिधि हैं। गुजराती में यह प्रवृत्ति अखा की रचनाओं—वित्तविचार संवाद, अनुभव-बिन्दु तथा अखोगीता में और प्रीतमदास आदि संत कवियों की कविता में मिलती है। इन कवियों ने गुजरात में वल्लभ संप्रदाय के विरुद्ध आवाज उठाई तथा सहज भक्ति का महत्व प्रतिपादित

किया। बंगाल के बाउलगीतों[1] के रचयिता ग्रामीण संत कवि थे। उड़िया के कंघ कवि भीमाभाई का नाम भी संत काव्य परंपरा में लिया जाता है। पंजाबी में गुरुनानक तथा अन्य सिख कवियों और अनेक हिंदू-मुसलमान संतों की अमृतवाणी संत काव्य का उदाहरण है। संत कवियों ने राम और रहीम की एकता का, हिंदू-मुसलमानों के बाह्याडंबरों, जाति-पाँति तथा निरर्थक रूढ़ियों का विरोध कर दो विभिन्न जातियों के मध्य समन्वयकारी कबीरदास इस धारा के प्रवर्तक थे।

कबीरदास—कबीरदास ने गुरु रामानन्द से शिष्यत्व ग्रहण कर जनसाधारण के मध्य भक्ति के जिस व्यापक रूप का प्रचार किया उसमें उच्च-निम्न-वर्ग, हिंदू और मुसलमान सभी समाहित हो जाते हैं। वास्तव में कबीरदास को एक सहज-भक्त से ज्यादा कुछ और न कहना ही उचित होगा। वे संप्रदाय विशेष में रहकर भी संप्रदाय से विरक्त थे। उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद से निर्गुण ब्रह्म की भावना ली, वैष्णव से वैष्णवी दयाभाव और भक्ति तत्व, नाथ-पंथियों से प्राचीन शास्त्रों की अवहेलना, वर्णव्यवस्था का विरोध, सूफियों से प्रेमसाधना और मुसलमानी शरीयत से तीर्थ और मूर्तिपूजा का खंडन सीखा। इन साधना पद्धतियों से दूर जिस सहज साधना पद्धति का नया मार्ग कबीर ने निकाला था, वह संपूर्ण बाह्य विधानों से मुक्त था। यह संत कबीर की मौलिक उपलब्धि है।

अखिल-भारतीय-परिप्रेक्ष्य में धर्म और संप्रदाय की समाज और व्यक्ति की व्याख्या है—कबीरदास उसके केंद्र विन्दु थे। कबीर संसार के ऐसे अद्वितीय उदाहरण हैं जो निरक्षर होकर भी सच्चे अर्थों में ज्ञानी और शिक्षित थे। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' नामक ग्रंथ में संग्रहीत है—इसके तीन भाग हैं—रमैनी, सबद और साखी। काव्य-सौष्ठव तथा भाषा की दृष्टि से संत-काव्य की आलोचना होती रही है। संत कवि अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। अनुभूति की गहनता से उनकी भाषा में लक्षणा और व्यंजना का प्राधान्य है। इनकी भाषा में कई बोलियों का

---

1. प्राचीनकाल से ही बंगाल में एक प्रकार की आध्यात्मिक संगीत धारा का प्रचलन था जो 'बाउल गान' के नाम से प्रसिद्ध है। बाउल साधक हिंदू मुस्लिम जैसे धर्म के कठोर नियमों के बंधन से मुक्त होकर साधना पथ पर अग्रसर होते हैं। किसी भी शास्त्र को ये स्वीकार नहीं करते। इनकी भाषा रहस्यात्मक साध्य-भाषा है। बंगाल में बहुत दिनों तक भद्र शिक्षित समाज का इन गीतों की ओर ध्यान न था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शिक्षित समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के बाउल कवियों में लालन फकीर का नाम बहुत विख्यात है।

भारतीय साहित्य कोश—पृ. 807

संग्रह है क्योंकि इनका जीवन प्रचारक के रूप में अधिक रहा है। कबीरदास के अतिरिक्त रैदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, मूलकदास आदि अनेक सन्त हुए हैं जो प्रायः कबीर-पंथी (निर्गुण पन्थ) मार्ग के ही अनुगामी थे।

हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा—निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा से इतर सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक काव्यों का सृजन भी इसी दौर में हुआ। जैसा कि पूर्व विवेचना में स्पष्ट किया जा चुका है, मुसलमानी सत्ता के आगमन के साथ ही साथ देश में सूफी साधकों का आगमन होने लगा था। 'सूफी' शब्द का प्रयोग इस्लाम धर्म के रहस्यवादियों के लिए किया जाता है। इश्कमजाजी से इश्कहकीकी की ओर अर्थात् लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख होने की साधना ही प्रेममार्गी सूफियों की भक्ति-पद्धति है। इन्होंने प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा द्वारा प्रेम के जिस व्यापक रूप का निरूपण किया है, उसका ज्ञानाश्रयी शाखा में अभाव था। सूफी परमेश्वर को प्रेयसी के रूप में देखते हैं। सारा लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम की ही झलक है। लौकिक प्रेम के द्वारा सूफियों ने अलौकिक प्रेम का उद्घाटन किया है।

इस संदर्भ में यह कहना कि भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा का अभाव था—उचित न होगा। प्रेमाख्यान काव्य की यह परंपरा प्रायः समान रूप से सभी भाषाओं में देखने को मिलती है तेलुगु में राजशेखर चरित्रम्, कलापूर्णोदयम्, चंद्रमती परिणयम आदि प्रेमगाथाएँ हैं। गुजराती में प्रेमगाथाओं की परंपरा और भी अधिक समृद्ध है। प्राचीन गुजराती में असायत ने 'हंसावलि' व हीरानंद ने 'विद्या विलासिनी' की रचना की। बंगला साहित्य भी इस काव्यधारा से प्रभावित है—आराकान की राजसभा में बैठकर दौलत काजी तथा अलाओल ने भी ऐसे सरल साहित्य की रचना की है। सूफी भावधारा को हिंदू भावधारा में ढालकर इन लोगों ने अपने काव्य का सृजन किया। सैयद अलाओल ने जायसी के पद्मावत का बंगला में पद्य में अनुवाद किया। पंजाबी और हिंदी में प्रेमाख्यानों की परंपरा अत्यंत विस्तृत है। पंजाबी में 'हीर-राँझा, लैला-मजनूं', 'कामरूप कामलता' आदि अनेकानेक रचनाएँ प्रेमकथाओं पर आश्रित हैं। हिंदी का प्रेमाख्यान कदाचित और भी समृद्ध है। उदाहरणार्थ महाभारत में वर्णित 'शांतनु-सत्यवती' 'अर्जुन-सुभद्रा', कृष्ण-रुक्मिणी 'नल-दमयन्ती' आदि इसी प्रकार के प्रेमाख्यान हैं। इस धारा के कवियों में जायसी का पद्मावत विशेष उल्लेखनीय है जिसकी विस्तार से चर्चा आगामी पृष्ठों में की जायगी।

सूफी संत कवि जायसी—मलिक मुहम्मद जायसी जायस के निवासी थे और सूफी फकीर शेख मुहीउद्दीन के शिष्य थे। तुलसी के 'रामचरितमानस' के वाद

सबसे अधिक महत्व इनके पद्मावत का है। यह हिंदी का श्रेष्ठ एवं सरस प्रबन्ध-काव्य है जिसमें कवि ने राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम का वर्णन किया है। पद्मावती ईश्वर तथा रत्नसेन आत्मा के प्रतीक रूप में लिए गए हैं। नागमती के विरह और पद्मावती के रूप वर्णन में जायसी ने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। सूफियों का मूल कथ्य प्रेमभावना का चित्रण करना रहा है। सूफी सिद्धांतों के अनुसार आत्मा एकमात्र प्रेम का अवलंब लेकर ही परमात्मा से तादात्म्य स्थापित कर सकती है जिसके निरूपण करने में इन सूफी कवियों ने प्रेमी और प्रेमिका के पारस्परिक प्रेम का ही चित्रण किया है। कुतुबन शेख के 'मृगावती' उसमान की 'चित्रावली' आदि अनेकानेक महत्वपूर्ण प्रेमाख्यान काव्य हैं। जायसी के 'पद्मावत' के अतिरिक्त उनके द्वारा रचित 'अखरावट' 'आखिरीकलाम' और 'चित्रलेखा' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

सगुणभक्ति काव्य का स्वरूप—मध्य-युग की संपूर्ण काव्यधारा सगुण और निर्गुण इन दो नामों से विख्यात है। सगुण से तात्पर्य साकार रूप की उपासना से है। भारतीय भक्तिभावना में सगुण धारा का महत्व प्रसिद्ध है। राम और कृष्ण को काव्य का आलंबन बनाकर अनेकानेक कवियों ने जिस लोकोन्मुखी काव्यधारा का निर्माण किया है उसे सगुण भक्तिकाव्य नाम से अभिहित किया जाता है। ये भक्त कवि वैष्णव और विष्णु भगवान के सगुण साकार रूप जो रामकृष्णादि अवतारों में व्यक्त हुआ था—के उपासक थे। वैष्णव धर्म के प्रमुख प्रवर्तक स्वामी रामानन्द और वल्लभाचार्य ने क्रमशः रामभक्ति और कृष्णभक्ति सगुणोपासक कवियों को इस ओर प्रेरित कर रामभक्ति और कृष्णभक्ति साहित्य का विस्तार किया। वैष्णव भक्ति की यह धारा अन्य भारतीय भाषाओं में किस रूप में वर्णित है—इसका उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। (देखिए—मध्य-युगीन जागरण तथा भक्ति काव्य) गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास आदि कवियों ने इन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सगुणभक्ति काव्य को प्रशस्त किया जिसकी विवेचना आगे की पंक्तियों में की जाएगी।

रामभक्ति काव्य—गोस्वामी तुलसीदास रामभक्ति के उपासक थे। इन्होंने राम को अवतार रूप में ग्रहण कर उनके उदात्त चरित्र एवं व्यक्तित्व का ऐसा मार्मिक चित्रण किया है जिससे समस्त जनमानस प्रभावान्वित हो उठा है। तुलसी के राम लोक आदर्श हैं। उनका प्रमुख ग्रंथ—'रामचरितमानस' उनके लोकनायक रूप का प्रतिनिधित्व करता है। गोस्वामीजी कवि, युग-द्रष्टा, समाज-सुधारक, समन्वय-वादी एवं भावुक भक्त सब कुछ थे। रामचरितमानस में उन्होंने राम के जिस नायक रूप की प्रतिष्ठा की है उससे समस्त जनमानस आज भी लाभान्वित होता आ रहा है। रामचरितमानस इनका सुप्रसिद्ध महाकाव्य है। यदि यह कहा जाए कि

गोस्वामी तुलसीदास का समस्त काव्य साहित्य उनके अपने समय की जन सामान्य की आन्तरिक अनुभूतियों का यूटोपिया है—तो अत्युक्ति न होगी। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने तुलसीदास को 'लोकमंगल की साधनावस्था' का कवि कहा है। इनके प्रमुख ग्रंथों में दोहावली, कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका, पार्वती मंगल, रामलला-नहछू और बरवै रामायण आदि उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन रामभक्त कवियों में नाभादास का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। 'भक्तमाल' इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। 'रामचरितमानस' के पश्चात 'भक्तकाल' ही भक्तियुग का लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसमें भक्तों के जीवनवृत्त संकलित हैं।

रामकाव्य परंपरा में तुलसीदास के पश्चात् केशवदास की 'रामचंद्रिका' का भी उल्लेख करना आवश्यक है। इसका मूल प्रतिपाद्य रामचरित होते हुए भी इसकी प्रमुख भावना भक्तिमूलक नहीं है। अतः काल-क्रमानुसार केशवदास का सभय भक्ति-काल के अंतर्गत होते हुए भी काव्य-रचना और प्रवृत्ति के अनुसार इसका विश्लेषण शृंगारकाल (रीतिकाल) के अंतर्गत होता है।

केशवदास के उपरान्त रामचरित काव्यान्तर्गत सेनापति का अपना स्थान है। सेनापति के काव्य में भक्ति और शृंगार दोनों ही प्रवृत्तियों का मिला-जुला रूप मिलता है। अतः सेनापति को भक्ति और शृंगार कालों के संधि-युग कवि के रूप में देखें तो अधिक उचित होगा।

रामकाव्य की यह परम्परा न केवल हिंदी साहित्य में ही है वरन् अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी समान रूप से पाई जाती है। तेलुगु भाषा में राम-भक्ति का प्रचार अन्य प्रदेशों की अपेक्षा अधिक रहा है। इसी प्रकार मलयालम, असमिया, उड़िया आदि अन्य भारतीय भाषाओं में रामकाव्य पर्याप्त मात्रा में रचा गया है जिसका उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।

कृष्णभक्त कवियों द्वारा प्रणीत रामकाव्य—रामभक्ति की परम्परा में कृष्णभक्त कवियों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन कवियों ने रामकथा विषयक अनेक पदों की रचना की है। महाकवि विद्यापति और मीराबाई ने अनेक पदों में राम के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की है। 'सूरसागर' के प्रथम और नवम स्कन्धों में राम कथा से सम्बन्धित अनेक पद प्राप्त होते हैं अष्टछाप के कवियों में नंददास, परमानन्ददास, और गोविन्दस्वामी द्वारा रचित रामकथा सम्बन्धी अनेक पद मिलते हैं जिनमें राम की लीलाओं के प्रति कृष्णभक्त कवियों की प्रवृत्ति स्पष्ट व्यंजित होती है। इस प्रकार कृष्ण भक्ति पोषक कवियों का रामभक्ति के प्रति निवेदन एवं राम-कथा कवियों का कृष्ण के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करना वास्तव में 'वैष्णवभक्ति'

की उदार समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय है जिसके मध्य 'भक्ति' अपने व्यापक रूप में सर्वत्र व्याप्त है।

कृष्णभक्तिकाव्य और अष्टछाप के प्रमुख कवि सूरदास

इस धारा के महान कवि सूरदास जी हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण चरित्र पर विस्तार से लिखा है। इन्होंने श्रीकृष्ण का वात्सल्य वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। हिंदी साहित्य में यद्यपि श्रीकृष्ण का चरित्र चित्रण अन्य कवियों ने भी किया है लेकिन सूर का सानी और कोई नहीं। इससे यह तात्पर्य नहीं कि हिंदी साहित्य में ही कृष्णकाव्य संबंधी रचनाएँ मिलती हैं। अन्य भाषाओं के साहित्य में विस्तार से कृष्ण संबंधी काव्य दिखाई देते हैं। दक्षिण की बहुत सी भाषाओं में जैसे मलयालम में 'कृष्णगाथा' ग्रन्थ में कृष्ण के जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक की कथा है जिसमें श्रृंगार के अतिरिक्त वात्सल्य का चित्रण अद्भुत है। इसी प्रकार बंगला, असमिया, उड़िया, गुजराती आदि भाषाओं में भी कृष्णचरित्र वर्णित है। गुजराती में तो कृष्ण भक्ति का प्राधान्य है जिसका उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।

उपर्युक्त शीर्षक में जिन अष्टछाप[1] के कवियों का उल्लेख किया जा रहा है उनमें सूर का स्थान सर्वोपरि है। आचार्य वल्लभ के ये शिष्य थे और इन्होंने वल्लभ के सिद्धांतों का पूर्णत: पालन किया है। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग[2] पर बल दिया है। 'पुष्टि' से तात्पर्य प्रेम करने से है। भगवान से प्रेम करना ही पुष्टिमार्ग का प्रमुख सिद्धांत है। सूर ने अपनी रचनाओं में कृष्ण की प्रेम-मयी भक्ति को ही सर्वोपरि स्थान दिया है।

---

1. कृष्णकाव्य के अंतर्गत पुष्टिमार्ग के संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार और उनके पुत्र विट्ठलनाथ के चार प्रधान शिष्य भक्त-कवि क्रमशः कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, नंददास और चतुर्भुजदास अष्टछाप नाम से प्रसिद्ध हैं। इस संप्रदाय के इष्टदेव श्रीनाथजी हैं। अष्टछाप के भक्त-कवि विभिन्न जातियों और वर्गों के थे, लेकिन सभी अच्छे गायक थे।

   अष्टछाप काव्य प्रधानतः स्फुट और गीतकाव्य है। कृष्ण को काव्य का आलंबन बनाकर इन कवियों ने समाज को एक नई दिशा दी है।

2. महाप्रभु वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद के आधार भक्ति का जो संप्रदाय स्थापित किया था उसी का नाम 'पुष्टिमार्ग' है। 'श्रीमद्भागवत' के 'पोषणं तदनुग्रहः' के आधार पर भगवदानुग्रह के अर्थ में ही 'पुष्टि' शब्द का प्रयोग किया गया है। पुष्टिमार्ग में सच्ची भगवत्सेवा को ही भक्ति माना गया है।

रामभक्ति के समान संपूर्ण भारतीय इतिहास में श्रीकृष्ण का चरित्र एक ऐसा चरित्र है जो एक ओर अवतार धारण कर भक्तों की दीनता का निवारण करते हैं, दूसरी ओर बल्यावस्था में गोप बालकों के साथ गाय चराते हुए, किशोर-वय में राधा और गोपियों के साथ रास-लीला करते हैं और अंत में कंस का वध करने के लिए संपूर्ण राग से मुक्त हो मथुरा चले जाते हैं। एक साथ इतनी लीलाओं का चित्रण करने में सूर जैसे भक्त कवि की लेखनी ही सक्षम हो सकती थी। सूर 'भ्रमरगीत' वियोग शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है वरन् इसके द्वारा निर्गुण पर सगुण की विजय दिखाकर सगुण-भक्ति का प्रतिपादन भी है। दूसरी ओर यह पुष्टिमार्गीय भक्ति सिद्धांतों का सुन्दर विवेचन है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने जिस भक्ति संप्रदाय की स्थापना की थी, उसका जिन हिंदी भक्त-कवियों ने पल्लवन किया उन्हें अष्टछाप के कवि कहा जाता है।

सूर की प्रसिद्ध कृति है 'सूरसागर'। इसके अतिरिक्त ,सूरसारावली' 'साहित्य लहरी' जैसी कृतियों का भी अपना महत्व है। सूरदास ने अपनी कृतियों में वात्सल्य शृंगार और शांत रसों को अपनाया है किंतु वात्सल्य रस में वे सबसे आगे हैं। ब्रजभाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। सूर के समय ब्रजभाषा की जैसी स्थिति थी उसे देखते हुए सूर ही इतने समर्थ थे कि उन्होंने सूरसागर जैसी रचना प्रस्तुत की, अन्य कृष्णोपासक संप्रदायों (जिनका उल्लेख पूर्व किया जा चुका है) ने भी कृष्ण-काव्य की वृद्धि में अच्छा योगदान दिया है। मुक्तकार कवि के रूप में ब्रजभाषा के समृद्ध पोषक एवं हिंदी के सफल गीतकार महाकवि सूरदास की लेखनी ने कृष्ण काव्य का जैसा चित्रण किया है, वह प्रशंसनीय है।

अष्टछाप के अन्य कवि—सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के जिन कवियों का उल्लेख हुआ है, वे सभी कृष्णभक्ति उपासक थे। सूरदास का स्थान अष्टछाप के कवियों में सर्वोपरि रहा है। अष्टछाप के कवि रूप में नंददास का स्थान भी महत्वपूर्ण है। इनकी 'रासपंचाध्यायी' काव्यसौंदर्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

संप्रदाय निरपेक्ष कवि रसखान और मीराबाई

कृष्ण-भक्ति से संबंध रखने वाले कवियों में मीरा और रसखान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विद्वानों ने इन कवियों को संप्रदाय निरपेक्ष भक्ति काव्य के अंतर्गत रखा है। इन कवियों की उपासना का लक्ष्य मात्र ईश्वर की भक्ति ही रहा है। मीराबाई की उपासना माधुर्य भाव की थी अर्थात् श्रीकृष्ण के प्रति तन्मयतापूर्ण। इनकी प्रीति ही इनके काव्य की विशिष्टता है जिसमें प्रेमी अपने प्रियतम से कुछ नहीं चाहता, बस प्रियतम का तादात्म्य बना रहे। मीराबाई के पद

तन्मयता की इसी प्रेम-पीड़ा से आपूर्ण हैं। इन्होंने राजस्थानी में और कुछ शुद्ध ब्रजभाषा में पद लिखे हैं। कृष्ण-भक्त कवियों में रसखान का स्थान अक्षुण्ण है। श्रीकृष्ण के प्रति इनकी अनन्य भक्ति एवं प्रेम के इतने सहज उद्गार इनके सवैयों में होते थे कि उन सवैयों को ही लोग 'रसखान' कहने लगे।

अंततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि कवयित्री मीराबाई और कवि रसखान के सहज भक्ति-उद्गारों (जिनमें भक्ति जीवन का अंग बनकर रहती) को देखकर ही विद्वानों ने इनकी गणना 'संप्रदाय निरपेक्ष' भक्ति-काव्य के अंतर्गत की है।

भक्तिकाव्य के सूर, तुलसी, मीरा जैसे कवियों के अतिरिक्त इस युग में कुछ कवि अपवाद स्वरूप ऐसे भी हैं जिनके काव्य में भक्ति आरोपित वर्णनों को देखकर भक्तिकाल में वर्णन हुआ है अथवा कालक्रम की दृष्टि से इन कवियों की गणना भक्ति-काल में हुई है। वस्तुत: इन कवियों में भक्ति विषयक वे उद्गार नहीं हैं जो पूर्व चर्चित कवियों में हैं। ऐसे कवियों में विद्यापति, केशवदास, सेनापति, घनानन्द आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी संदर्भ में अकबरी दरबार के कुछ कवियों का उल्लेख करना भी आवश्यक है। इन राज्याश्रित कवियों में रहीम का नाम प्रमुख है। इन्होंने भक्ति के अतिरिक्त शृंगार और नीति आदि अन्य विषयों पर फुटकर रचनाएँ की हैं। रहीम के नीति-विषयक दोहे 'रहीम सतसई'[1] नाम से विख्यात हैं। इसके अतिरिक्त अवधी भाषा में रचित नायिका-भेद संबंधी 'बरवै' बड़े सरस हैं। नायिका-भेद रीतिकाल का प्रमुख विषय रहा है जिसका प्रारंभिक रूप रहीम के काव्य में पाते हैं।

इस प्रकार भक्तिकाल के उत्तरार्द्ध में ही वे संपूर्ण प्रधान प्रवृत्तियाँ पृष्ठभूमि के रूप में प्राप्त हो चुकी थीं, जो आगे चलकर परवर्ती शृंगारकालीन साहित्य का मूल विवेच्य रही हैं।

रीतिवादी कविता और दरबारी संस्कृति

भक्तिकालीन काव्य-साहित्य की पूर्व विवेचना में हम देख चुके हैं कि राम-काव्य की अपेक्षा कृष्ण-काव्य का विस्तार अधिक है। कृष्ण-काव्य अधिकांशत: माधुर्य भाव के कारण जनता तथा कवियों का कंठहार बना। अतः मधुरा-भक्ति और शृंगार का चोली-दामन का सा संबंध रहा है। विद्वानों का यह कथन है कि रीतिकालीन

---

1. यह प्रसिद्ध है कि रहीम ने सात-सौ दोहों की रचना कर उन्हें अपनी 'सतसई' में संकलित किया था। सम्पूर्ण सतसई अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। हिंदी की सतसई-परंपरा में 'बिहारी-सतसई' की विशेष प्रसिद्धि है। किंतु रहीम की सतसई हिंदी की 'पहली सतसई' मानी जाती है।

शृंगारपरक काव्य भक्तिकाल की प्रतिक्रिया है—उचित नहीं लगता। भक्तिकाल में राधा-कृष्ण के माधुर्य-प्रेम का जो चित्रण अष्टछाप के कवियों ने किया है उसे आध्यात्मिक स्तर तक ही लेना चाहिए। भक्तिकाल का शृंगार वर्णन उदात्त है।

रीतिवादी अथवा रीतिकाव्य की विवेचना करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि रीति क्या है ? रीतिकाव्य क्या है ? काव्यशास्त्र का एक मौलिक काव्य सिद्धांत है—रीतिवाद। रीति-संप्रदाय की विधिवत स्थापना नवीं शती में आचार्य वामन ने की। उनके अनुसार काव्य-सौन्दर्य का निर्माण करने वाले शब्द और अर्थ के धर्मों से युक्त विशेष प्रकार की पद-रचना का नाम रीति है। रीतिकाव्य से तात्पर्य है रीतिकाल में निर्मित काव्य क्योंकि इसी काल में ही अधिकांशत: रीतिकाव्यों का प्रणयन हुआ था। इसके रचयिता मूलतः कवि थे, जो कि अधिकतर राज्याश्रित थे। दरबारों में पहुँच जाना और वहाँ की प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेना ही कवियों की महत्व पूर्ण सिद्धि होती थी। इस युग में कविता लोकजीवन से हटकर दरबारों की सजावट का साधन बन गई। जो स्वयं कविता न लिख सकते थे उन्होंने कवियों को आश्रय दिया। प्रत्येक कवि पांडित्य प्रदर्शन तथा आपसी होड़ की टकराहट एवं राजाओं का आकर्षण प्राप्त करने की इच्छा से रस, अलंकार, नायक-नायिका भेद आदि काव्यांगों की विवेचना में लग गया। इस प्रकार कविता में लक्षण और उदाहरण देने वाली कविताएँ अधिक लिखी गईं और स्वतंत्र रचनाएँ कम।

इस काल में प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं का बाहुल्य देखा जाता है। इसका कारण कवियों की आपसी टकराहट एवं चमत्कार प्रदर्शन था। जिस समय दरबारों में कवियों की रचना कौशल एव चमत्कार प्रदर्शन की होड़ लगती थी उस समय विस्तृत प्रबन्ध की रचना करना कठिन कार्य था। कवियों की दृष्टि चमत्कार प्रवाह की ओर अधिक देखी जाती है, कविता के अनुभूति पक्ष की ओर कम। कवियों ने कृष्ण और राधा को काव्य का आलंबन बनाकर नायक-नायिका रूप में प्रतिष्ठित किया। प्रकृति का वर्णन इस काल में उद्दीपन रूप में हुआ है। इस काल के प्रमुख कृतिकारों में चिंतामणि त्रिपाठी, बिहारीलाल, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर भट्ट, कुलपति मिश्र, आलम, घनानन्द और ठाकुर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

जैसा कि पूर्व पृष्ठों में संकेत किया जा चुका है, रीतिकाल में प्रमुख वर्ग उन कवियों का है जिन्होंने लक्षण ग्रंथों को मुख्य आधार मानकर उनके उदाहरण-स्वरूप कविता की रचना की है। परन्तु इसी युग में ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने रीति के प्रभावों से मुक्त होकर कविता की है। इस प्रकार रीतिकालीन कवियों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—रीतिबद्ध कवि और रीतिमुक्त कवि।

7

र,
ख्प
ही
ने
त
क
णि
व-
ष्ठा
म,
मी

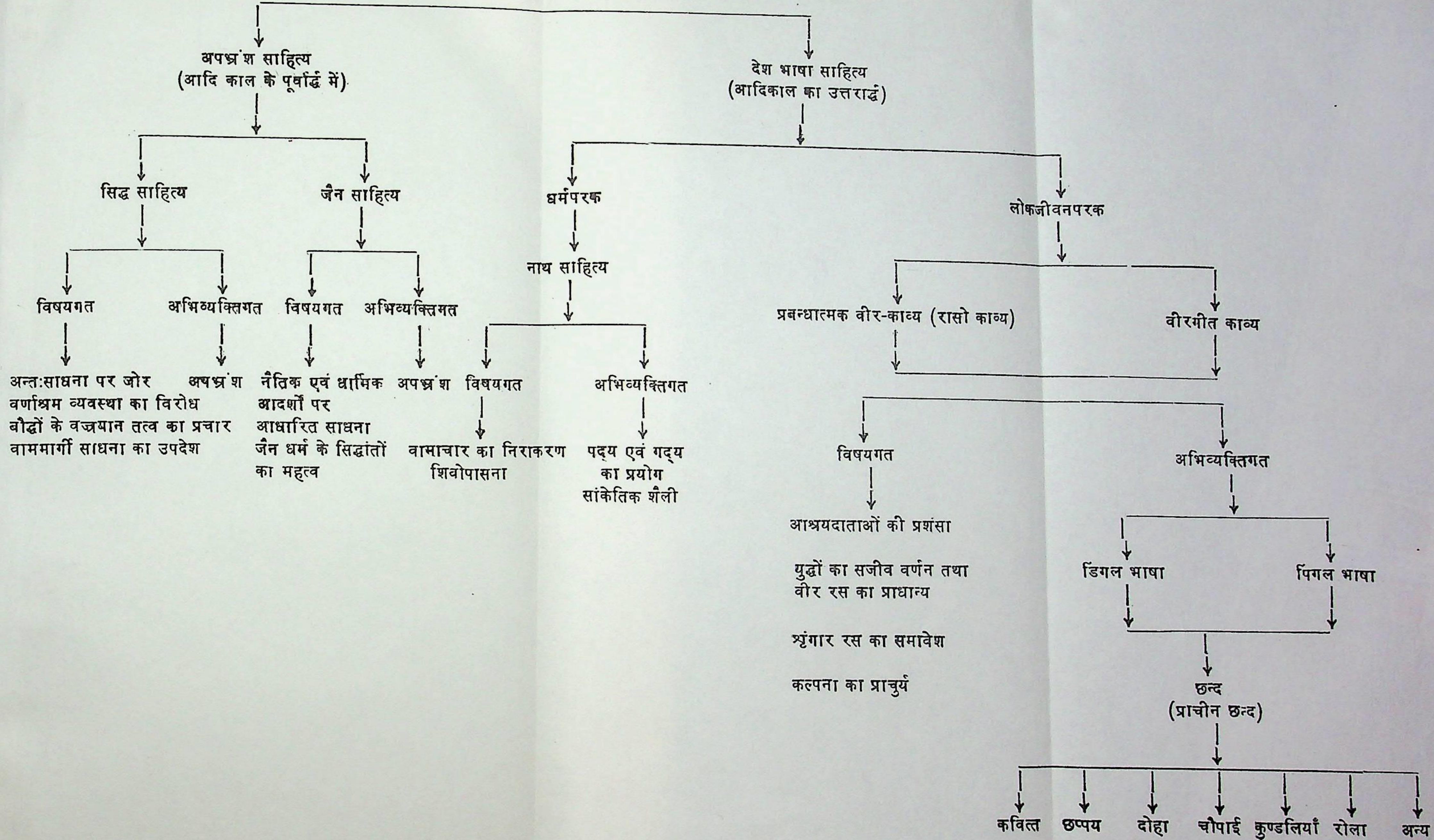
ता
वों
री
ई
र
भा

ोंने
य-
या
ए
ता
एवं
ाज

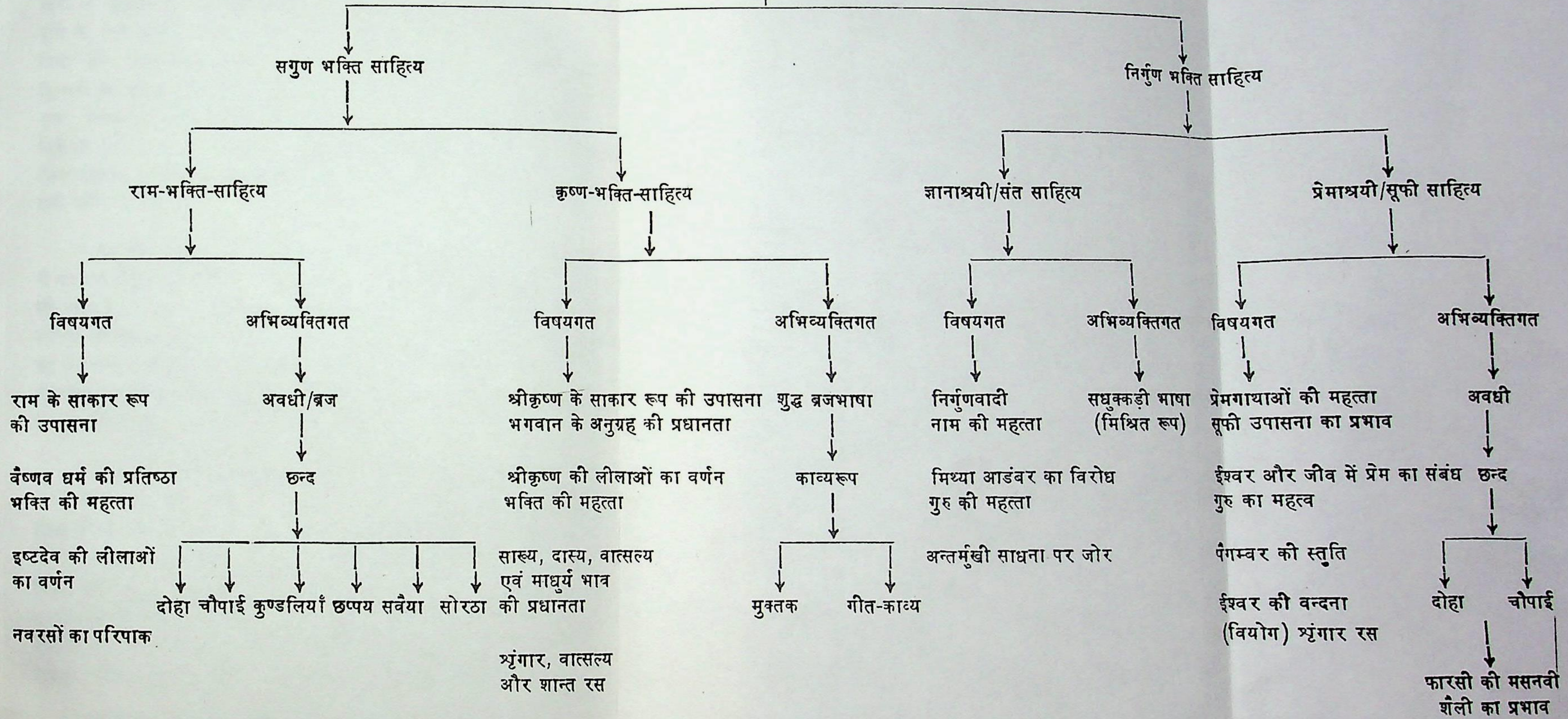
भ
देते
का
द-
ऐसे

अन
वण
बौ
वा

आदिकालीन पद्य साहित्य की विशेषताएँ—14वीं शताब्दी)



भक्तिकालीन काव्य की विशेषताएं (14वीं से 16वीं शताब्दी)



रीतिबद्ध कवि और कविता—रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने अलंकार, नायिका भेद आदि काव्य लक्षणों को मुख्य आधार बनाकर उनके उदाहरण स्वरूप कविता की रचना की है। इसमें अधिकांश कवियों का प्रतिपाद्य शृंगार रस ही था। संस्कृत काव्य शास्त्र की परंपरा को ही एक प्रकार से इन कवियों ने हिंदी में उतारा है। संस्कृत साहित्य में कवि और शास्त्रकार दो अलग व्यक्ति होते थे, पर शृंगार काल में यह भेद लुप्त हो गया। केशवदास की 'रसिक प्रिया' और 'कवि प्रिया' रीतिकाल के प्रारंम्भिक ग्रन्थ हैं। तत्पश्चात चिंतामणि त्रिपाठी से लक्षण ग्रंथों की अखंड परम्परा चली। चिंतामणि त्रिपाठी का 'कवि-कुल कल्पतरू' रीतिकाल का प्रथम शास्त्रीय ग्रंथ है। इसमें काव्यांगों का अच्छा विवेचन हुआ है। इन रीतिवादी कवियों में केशवदास, बिहारी, देव, मतिराम, भिखारीदास, पद्‌माकर आदि महत्वपूर्ण हैं। वीर रस के ओजस्वी कवि भूषण भी इसी कोटि में आते हैं।

महाकवि बिहारी काव्यशास्त्रीय परंपरा के पोषक होते हुए भी अपनी कविता में पर्याप्त मौलिक हैं। बिहारी में कवित्व और आचार्यत्व का अपूर्व मिश्रण है। भावों की गहराई एवं शृंगार वर्णन सम्बंधी जितने हाव-भाव, अनुभाव आदि हैं—'बिहारी सतसई' में सब मूर्त हो उठे हैं। सप्तशतियों की परम्परा में बिहारी सतसई का विशिष्ट स्थान है। इसका अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। सूर अगर वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आए थे तो बिहारी ने भी अपनी अपूर्व-काव्य-प्रतिभा से शृंगार का कोई भी पक्ष अनछुआ नहीं छोड़ा।

महाकवि देव भी आचार्य और कवि दोनों ही रूपों में सामने आते हैं। इन्होंने नीति संबंधी कई ग्रंथ लिखे हैं। इनकी अधिकांश रचनाएँ किसी न किसी आश्रय-दाता को समर्पित की गई हैं। इनके ग्रंथों में काव्यांगों का अच्छा निरूपण किया गया है। ब्रजभाषा साहित्य में देव और मतिराम अपनी सर्वोत्कृष्ट भाषा के लिए विशेष प्रसिद्‌ध हैं। रीतिकालीन शृंगारिक वृत्ति और नायिका भेदयुक्त कविता के परिवेश में भूषण एकमात्र ऐसे हैं जिन्होंने शिवाजी और छत्रसाल के पराक्रम एवं देशप्रेम का प्रभावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करके वीर रस की कविता लिखी। 'शिवराज-भूषण', 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल शतक' इनकी प्रसिद्‌ध कृतियाँ हैं।

रीतिमुक्त कवि और कविता—इस दौर में कुछ कवि ऐसे भी हैं जो प्रारंभ से चली आ रही परिपाटी से कुछ हटकर स्वतः प्रेरित काव्य प्रवृत्ति का परिचय देते रहे हैं। इनकी कविता में रीतिकालीन परिपाटी की अपेक्षा निजीपन और हृदय का उल्लास अधिक है। इन कवियों ने काव्य में रीति-रूढ़ियों का तिरस्कार कर स्वच्छंद-धारा का अनुसरण किया है इसीलिए उन्हें 'रीतिमुक्त' कवि कहा गया है। ऐसे

कवियों में घनानन्द, बोधा और ठाकुर के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी कवि शृंगारी हैं लेकिन इनमें नायिका-भेद वर्णन का रूढ़ विधान नहीं है। इनके शृंगार वर्णन में हृदय की सहजता है तथा काव्य-कला में अलंकारों की सायास सजावट नहीं है। समग्रतः रीतिमुक्त कवि कविता के समग्र क्षेत्र में मुक्त होकर अवगाहन करने वाले कवि हैं।

भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल का उदय कविता के क्षेत्र में अवश्य ही एक नया प्रयोग रहा है। यह नवीनता विषय, भाषा, रस अलंकार आदि सभी क्षेत्रों में रही है। इन कवियों ने हिंदी पाठकों को काव्यांग निरूपण की उस पूर्व दशा का ज्ञान कराया है जो भामह, दंडी आदि के समय में थी। ब्रजभाषा के काव्यरूप का पूर्ण विकास कर, कवित्त और सवैया की पूर्णसंयोजना द्वारा मुक्तक काव्य परंपरा का जैसा उत्कर्ष रीतिकाव्य में हुआ, वह अपने में अनूठा कार्य है, इसमें संदेह नहीं।

रीतिकालीन काव्य प्रवृत्ति को जब हम अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में देखते हैं तो पता चलता है कि अन्य भारतीय भाषाओं में 'रीतिकाल' जैसा स्पष्ट विभाजन तो नहीं किया गया है लेकिन रीतिकालीन विशेषताएँ प्रायः उसी रूप में दिखाई देती हैं। बंगला, मराठी, असमिया, तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ आदि सभी भारतीय भाषाएँ हिंदी के रीतिकालीन काव्य प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। बंगला के लोकप्रिय कवि भारतचंद्र जो राजा कृष्णचन्द्र के ही दरबार में थे इन्होंने 'आनंदामंगल' काव्य की रचना करने के साथ ही साथ 'रस मंजरी' ग्रंथ की रचना की जिसमें संस्कृत के साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों की तरह नायिका भेद, लक्षण उदाहरण निबद्ध हैं। असमिया साहित्य भी इस प्रवृत्ति से वंचित नहीं रहा। वहाँ भी अहोम राजाओं ने कवियों और पंडितों को सभाश्रय देकर असमिया साहित्य का विकास किया है। 17वीं तथा 18वीं शती में यह राजाश्रय बहुत बढ़ गया था। इन्हीं दिनों कविशेखर भट्टाचार्य ने रतिशास्त्र विषयक ग्रंथ 'हरिवंश' की रचना की। मराठी में यह परंपरा पंत कवि[1] तथा तंत्र कवि[2] के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ भी कवियों ने हिंदी

---

1. मराठी साहित्य में कवियों के दो वर्ग हैं—1. पन्त कवि जो संस्कृत के विद्वान कवि थे और दूसरे जनकवि जो तंत्र कवि कहलाते हैं। पंत कवियों ने भाषा और रीति पर अधिक जोर दिया है और कविता में अलंकरण तथा नक्काशी अधिक पसंद की है। ये कवि संस्कृत के पंडित थे और काव्य में कलापक्ष की दृष्टि से अधिक चमत्कारिक थे।

   भारतीय साहित्य की रूपरेखा—डॉ० भोलाशंकर व्यास पृ. 220

2. तंत्र कवि वे हैं जिन्होंने जनता के लिए वीरकाव्य तथा हलके-फुलके शृंगारपरक भावगीतों की रचना की है। ये जन कवि मराठी साहित्य में शाहीर कहलाते हैं।

   वही—पृ. 221

रीतिकालीन काव्य की विशेषताएँ—17वीं से 18वीं शताब्दी

विषयगत

- श्रृंगार वर्णन की प्रधानता
- नायिका भेद
- रीति निरूपण, लक्षण ग्रंथों का निर्माण
- राजप्रशस्ति (आश्रयदाताओं की दानवीरता, युद्धवीरता का वर्णन)
- श्रीकृष्ण और राधिका का नायक-नायिका रूप में वर्णन
- श्रृंगार रस की अधिकता
- रीति के साथ भक्ति, रीति और वीररस का स्फुट प्रयोग

अभिव्यक्तिगत

- ब्रजभाषा एवं उक्ति चमत्कार की प्रधानता
- दरबारों के प्रभाव से फारसी शब्दों का बाहुल्य
- कवित्त, सवैया और दोहा-प्रयोग
- मुक्तक काव्य की प्रधानता
- कला-पक्ष की प्रधानता

नोट—रीतिकालीन काव्यों में लक्षण निरूपण की प्रधानता है। भाव की दृष्टि से आध्यात्मिकता की अपेक्षा लौकिक भावना अधिक रही है।

के रीतिकालीन कवियों की तरह कविता शृंगार और वीर रस तक ही सीमित है। कवियों ने भाषा और रीति पर ही अधिक जोर दिया है। इस प्रकृति के कवियों में वामन पंडित, रघुनाथ पंडित और मोरो पंत अधिक प्रसिद्ध हैं। राजाश्रय तथा लक्षण ग्रंथों के निरूपण की यह परंपरा तेलुगु में भी उसी रूप से दृष्टिगत होती है। श्रीकृष्णदेव रायल अपने समय के प्रतापी राजा थे। इनके दरबार में अनेक कवियों और पंडितों को राजाश्रय प्राप्त था। पेछन्न, तेमन्न, चिनन्न जैसे तेलुगु कवि इन्हीं के दरबार से संबद्ध थे। कविता में पांडित्य प्रदर्शन तथा चमत्कारवादी प्रवृत्ति अधिक थी। राजाओं का जीवन विलासितापूर्ण हो गया था। विलास, परिणय और शांतवन इन तीन शैलियों में काव्य लिखे गए जिनमें तिम्मकवि, जग्गकवि, वेंकट नरसिंहाचार्य की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। लक्षण ग्रंथों में सूर कवि का 'आंध्ररसमंजरी' है। इसी प्रकार की प्रवृत्ति कन्नड़, मलयालम और उड़िया आदि भाषाओं में भी देखने को मिलती है।

सांस्कृतिक पुनर्जागरण—आधुनिक काव्यधारा

यह सत्य ही कहा गया है कि विलासिता की अतिशयता विनाश का कारण बन जाती है, क्योंकि इस अवस्था में मानव जीवन की विषमताओं और जीवन मूल्यों से बहुत दूर चला जाता है। लेकिन परिस्थितियाँ उसे सचेत करती हैं। यही सत्य साहित्य के इतिहास 'रीतिकाल' का प्रतिफल थीं जिसकी विवेचना पूर्व की जा चुकी है। यद्यपि रीतिकाल में भूषण, सूदन और लाल ऐसे कवियों का सहानुभूतिपूर्ण हृदय हिंदुत्व की पुकार से गुंजित हो चुका था, लेकिन अभी मोहनिद्रा भंग नहीं हुई थी। इस जड़ता को तोड़ने वाले अंग्रेज ही थे। उनके भारत पर आधिपत्य ने जनता को सजग कर दिया। केवल इतना ही नहीं, विचारों में क्रांति हुई जिसके फलस्वरूप राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यक और भाषायी आदि सभी क्षेत्रों में आंदोलन हो उठा। देश को आजाद कराने के लिए लोग स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से भारत में एक नए युग का निर्माण होता है। 19वीं शती का सांस्कृतिक पुनर्जागरण उसी चेतना का एक रूप है जिसने भारतीय जन-मानस में अतीत गौरव का बोध जागृत करने के साथ ही हम क्या थे ? क्या हो गए जैसे प्रश्नों को पुनः दोहराया है। मध्ययुगीन विलासिता की अंगड़ाइयों के अंधकार से मुक्त कराके नए प्रकाश की ओर प्रेरित किया। नए ढंग के साहित्य में एक नया परिवर्तन किया जिसके अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे।

गद्य का आविर्भाव और खड़ी बोली का आंदोलन

इस नयी जागृति को सुकुमार ब्रजभाषा और पद्य के द्वारा प्रस्तुत करना कठिन ही नहीं असंभव हो गया था। अतः साहित्य में गद्य की माँग प्रबलता से

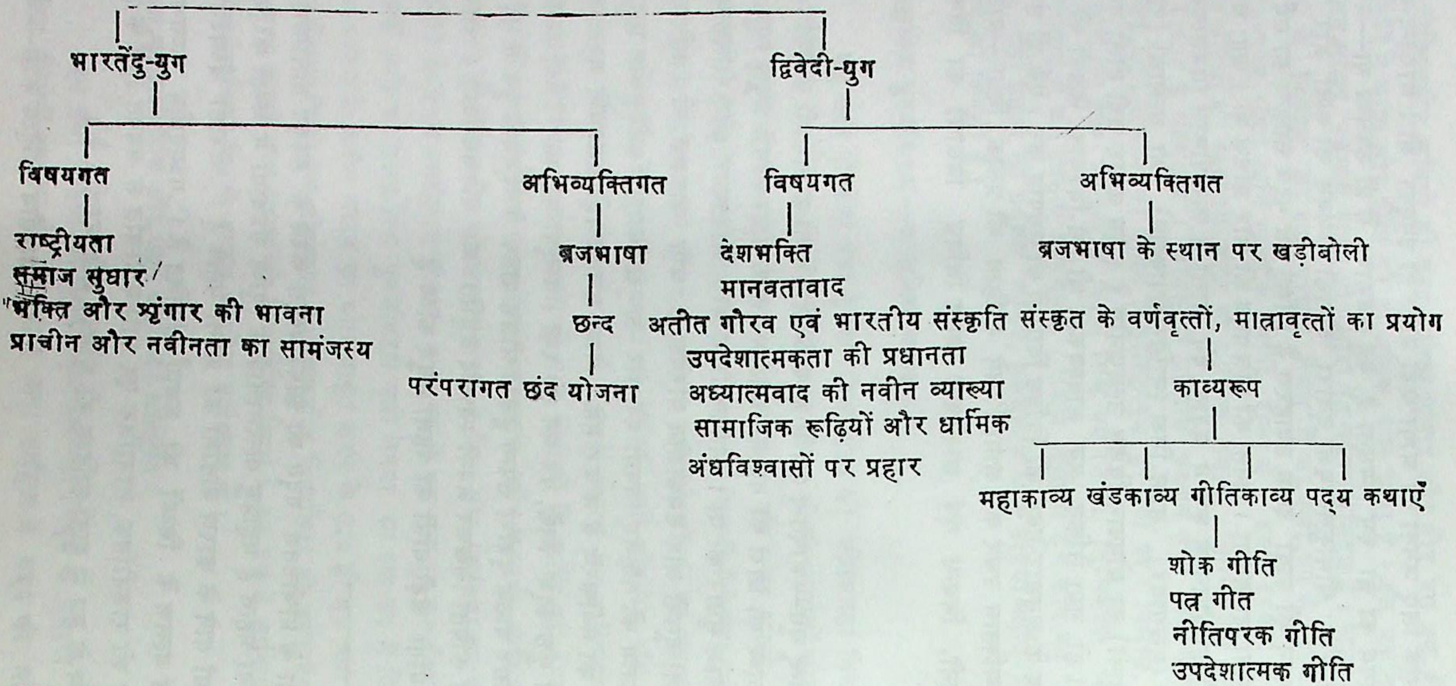
होने लगी। उसके लिए जनता की भाषा खड़ी बोली ही उपयुक्त थी। भारतेन्दु-युग से पूर्व हिंदी गद्य का जो रूप मिलता है, वह ब्रजभाषा में ही उपलब्ध था—यथा वल्लभाचार्य के पौत्र श्रीगोकुलनाथजी द्वारा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' इसके उदाहरण हैं। किंतु इसे गद्य साहित्य का यथेष्ट विकास नहीं माना जा सकता। जनता की रुचि पद्य की ओर अधिक थी। अतः खड़ी बोली गद्य को आन्दोलन के रूप में बढ़ावा देने वालों में लल्लूजीलाल (प्रेमसागर), सदा सुखलाल (सुखसागर), सदल मिश्र (नासिकेतोपाख्यान), इंशा अल्लाखां (रानी केतकी की कहानी) का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार खड़ी बोली गद्य का सूत्रपात तो हो गया लेकिन अब आवश्यकता थी ऐसे विद्वान लेखकों की जो जनता की रुचि के अनुसार गद्य की विविध विधाओं का सूत्रपात करें। ऐसे ही समय भारतेन्दु का व्यक्तित्व उभर कर आया जिसने साहित्य की प्रत्येक विधा—नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध एवं आलोचना आदि विविध विधाओं का विकास किया।

भारतेन्दु युग—भारतेन्दु युग में गद्य के क्षेत्र में तो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए उसी प्रकार काव्य की धारा को नए-नए क्षेत्रों की ओर मोड़ा जिसमें प्रमुख स्वर देश भक्ति एवं समाज सुधार का था। भारतेन्दु एक ओर भक्तिकाल और रीतिकाल से अनुबद्ध थे, तो दूसरी ओर समकालीन परिवेश के प्रति जागरूक थे। कविता में भारतेन्दु ने काव्य को नए-नए विषयों की ओर उन्मुख किया, किसी नवीन प्रणाली अथवा भाषा का नवीकरण वे न कर सके। भाषा ब्रज ही रही। यद्यपि भारतेन्दु ने खड़ी बोली में कुछ पद्य लिखे, पर मन न रमा। वस्तुतः यह कार्य 19वीं शताब्दी के अंत में श्रीधर पाठक द्वारा संपन्न हुआ। श्रीधर पाठक ने द्विवेदी युग से पूर्व ही खड़ी-बोली में कविता लिखकर अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति का परिचय दिया। आपका 'एकांतवासी-योगी' खड़ी बोली का पहला मधुर काव्य है।

---

1. ब्रजभाषा के प्राचीनतम गद्य की झाँकी प्रस्तुत करने के कारण वार्ता-साहित्य का अपना महत्व है महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि संप्रदायों में भक्तों की चरितावलियाँ गाने के कारण वार्ताओं का अपना महत्व है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में वल्लभ के शिष्यों की कथाएँ संकलित हैं। मध्ययुगीन कृष्णभक्ति साहित्य की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति से अवगत होने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में वार्ता-साहित्य की भूमिका अविस्मरणीय है।

—भारतीय साहित्य कोश—414



1. राजा रवि वर्मा द्विवेदी-युग के प्रमुख चित्रकारों में से एक हैं। आपके चित्रों पर आधारित 'पद्य कथाएँ' पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित पुस्तक 'कविता कलाप' में संग्रहीत हैं। इसमें संग्रहीत पद्य कथाएँ प्रमुखतः द्विवेदी युगीन कवियों की ही हैं, जैसे मैथिलीशरण गुप्त, नाथूरामशंकर शर्मा आदि।

द्विवेदी युग—कविता के क्षेत्र में द्विवेदी युग का प्रारंभ एक आंदोलन के रूप में सामने आया। सन् 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का कार्यभार सँभालकर पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में विषय भाषा, व्याकरण एवं काव्यरूप आदि सभी रूपों में चतुर्दिक विकास किया। राष्ट्रीयता, मानवता की भावना, सामाजिक सुधार की भावना, सांस्कृतिक जागरण एवं अध्यात्मवाद की नवीन व्याख्या की। सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अंध-विश्वासों पर प्रहार किया। भाषा के क्षेत्र में गद्य एवं पद्य की भाषा खड़ी-बोली की स्थापना की। छंदों में संस्कृत के वर्णवृत्तों, का प्रयोग किया। काव्यरूप की दृष्टि से प्रबंधकाव्यांतर्गत महाकाव्य और खंडकाव्य की रचना हुई। द्वितीय धारा गीति एवं प्रगीत-काव्य की (पत्र गीति, शोक गीति, व्यंग्य गीति, नीतिपरक एवं उप-देशात्मक गीति), इसके अतिरिक्त राजा रवि वर्मा के चित्रों पर आधारित पद्य कथाएँ द्विवेदीयुगीन काव्य की उपलब्धियाँ हैं।

द्विवेदी युगीन काव्य की विशिष्टता वास्तव में काव्य को बाह्य आवरणों से सजाने की नहीं थी, वरन् उसकी आत्मा में परिवर्तन लाकर उसे युग-सापेक्ष बनाना तथा युग को प्रेरणा देना थी। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का 'प्रियप्रवास', गुप्त जी का 'साकेत', रामनरेश त्रिपाठी के खंडकाव्य 'पथिक', 'मिलन' आदि युगीन प्रमुख काव्य-ग्रंथ हैं जिसमें उपर्युक्त सभी विशिष्टताएँ समाविष्ट हैं।

राष्ट्रीय काव्यधारा—राष्ट्रीय काव्यधारा तो युगीन काव्य की प्रमुख विशिष्टता रही है। गुप्तजी की 'भारत भारती' जिसमें अतीत के गौरव का गान करते हुए देश की वर्तमान-दशा पर क्षोभ प्रकट किया है। राष्ट्रीयता की यह ओजस्वी धारा जो भारतेंदु-युग से प्रारंभ हुई आगे चलकर 20वीं शताब्दी के परिवर्ती दशकों में मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी द्वारा विकसित होती हुई माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, तथा 'हुँकार' के साथ दिनकर के रूप में क्रमशः प्रज्ज्वलित होती गई है। आज की राष्ट्रीयता का स्वर अतीत का चित्रण कर वर्तमान को जागरूक करना मात्र नहीं वरन् पूंजीपतियों से शोषितों और पीड़ितों की रक्षा करना है। राष्ट्रीयता का यह नया स्वर प्रगतिवादी कवि दिनकर नें अधिक दिखाई पड़ता है। राष्ट्रीयता अब अपने 'राष्ट्र' तक ही सीमित नहीं है वरन् अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसका मूल्यांकन करना आवश्यक हो गया है। हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा वास्तव में युग के देशव्यापी उत्साह की सबसे ओजस्वी अभिव्यक्ति है।

स्पष्ट है कि हिंदी कविता की विकास यात्रा अपने विकासक्रम की अवधि नित्यप्रति परिवर्तन को स्वीकार करती चली आ रही है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में 'छायावाद' आधुनिक हिन्दी कविता की एक धारा है। यह कहना कि 'छायावाद' द्विवेदी-युग की प्रतिक्रिया है या विरोध—असंगत-सा लगता है।

'रीतिकाल के पश्चात् आधुनिक काव्यधारा का विकास (विशेषतः द्विवेदी युग के पश्चात्) समय की गति के साथ-साथ विकसनशील रहा है जिसके फलस्वरूप कविता की अनेक धारायें प्रवाहित होती रही हैं।

छायावाद-युग—द्विवेदी-युग के पश्चात् आने वाले छायावादी प्रभाव के लक्षण तो हमें द्विवेदी-युग में ही श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में दिखाई देते हैं। श्रीधर पाठक ने हिंदी कविता में जिस स्वच्छंदतावादी विचारधारा का सूत्रपात किया था, उसका ही व्यापक रूप छायावाद है। दिववेदी-युग की आदर्शवादिता एवं नैतिकता के कठोर बंधन के भार से आगे के कवि बोझिल हो उठे थे। ऐसे क्षणों में प्रणयानुभूति एवं अनुभूति की मांसलता के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। अतः कविता अंतर्जगत की ओर उन्मुख होती हुई वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता, भावना की गहराइयों की पैठ, सौंदर्यमयी कल्पना तथा सांकेतिक पदावली में अवतरित होने लगी। वास्तव में छायावाद ने वस्तुगत् सौंदर्य के सूक्ष्म स्तरों का उद्घाटन कर वस्तु के बाह्य आकार की अपेक्षा उसमें निहित भावों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म गहराइयों की पैठ करके हिंदी कविता के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है।

समग्ररूपेण छायावाद वैयक्तिक अनुभूति की ही कविता है। वैयक्तिकता से तात्पर्य व्यक्ति स्वातंत्र्य से है जिसमें उसके सुख-दुःख की अबाध अभिव्यक्ति, भावुकता का निवेदन वह स्वच्छंद रूप से कर सकता है। छायावाद की यह विशिष्टता उसे रीतिकाल की कविता से पृथक कर देती है। महादेवीजी के शब्दों में "इस व्यक्ति प्रधान युग में व्यक्तिगत सुख-दुःख अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल थे।" यह विशिष्टता उसे छायावादी-कविता में ही दिखायी देती है जिसे द्विवेदी-युगीन मर्यादावादी सिद्धांतों एवं संयम ने विवश कर रक्खा था। कविता की इसी आत्मपरक प्रवृत्ति के कारण ही छायावाद मुख्यतः प्रगीत-काव्य है।

अतः छायावादी-काव्य की भावुकतापूर्ण मांसलता तथा सौंदर्यानुभूतिजन्य कल्पना की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक था कि भाषा भी अधिक सूक्ष्म, लाक्षणिक एवं चित्रात्मक हो जिससे भावप्रवणता एवं अर्थ-गांभीर्य सहजता से आ सके। छायावादी कवियों ने अपने भाव और विषय के अनुकूल भाषा को भी चमत्कारिक उत्कर्ष और गहराई प्रदान की। प्रतीकात्मकता, चित्रात्मक भाषा एवं लाक्षणिक पदावली, ध्वन्यात्मकता, गेयता और नवीन अलंकार विधान का प्रयोग आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे छायावादी कवियों ने भाषा खड़ी बोली को जो उत्कर्ष प्रदान किया वह द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मक खड़ी-बोली के समक्ष अपने में अनूठा है।

छंद विधान में कवियों ने मुक्त-छंद का स्वागत किया। यद्यपि द्विवेदी-युग में संस्कृत के अतुकान्त वर्णवृत्तों के प्रयोग द्वारा नवीनता का सूत्रपात हो चुका था। छायावादी कवि इससे एक कदम आगे बढ़े हैं। इनकी छंद-प्रकृति का मौलिक आधार है 'भाव-लय'। अर्थात् भावुकताप्रवण कवियों ने पूर्ववर्ती कवियों की तरह छंदों के साँचों के अनुसार भावों को मोड़ना उचित नहीं समझा वरन् 'भाव-लय' के अनुसार 'छंद-लय' का रूप निर्धारित किया। निराला की 'जुही की कली' ऐसे ही मुक्त छंद का उदाहरण है—"आ तू प्रिये छोड़कर बंधनयम छंदों की छोटी राह।"

काव्य-रूप की दृष्टि से छायावादी काव्य अत्यंत समृद्ध रहा है। एक ओर उसमें गीतों और मुक्त-छंद की कविताओं की अधिकता है, तो दूसरी ओर 'आँसू' और 'तुलसीदास' जैसे विस्तृत काव्य ग्रंथ भी लिखे गये। 'कामायनी' नामक महाकाव्य तो छायावादी समस्त काव्य प्रवृत्तियों के आवृत्त युग प्रवर्तक काव्य-ग्रंथ है। छायावाद के प्रमुख चार स्तंभ प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी छायावाद-युगीन काव्य साहित्य के प्रमुख पोषक रहे हैं। **प्रसादजी** छायावाद और रहस्यवाद के प्रथम प्रवर्तकों में अग्रगण्य हैं। प्रारंभ में आप ब्रजभाषा में कविता करते थे। 'प्रेमपथिक' इसका उदाहरण है। 'झरना' (1918) से पूर्व तक की रचनाएँ ('काननकुसुम'—1913, 'प्रेमपथिक'—1913, 'करुणालय'—1913,—'महाराणा का महत्व'—1914) द्विवेदी-युग के अंतर्गत लिखी गई, बाद की रचनाओं में कवि पर छायावादी प्रवृत्तियों का प्रभाव स्पष्ट है। प्रसादजी में आधुनिकता के साथ-साथ प्राचीन संस्कृति की गरिमा का भी प्रभाव अविच्छिन्न रूप से पड़ा है। कवि ने अंतर्मुखी कल्पना द्वारा सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण बहुत सुंदर ढंग से किया है। वैयक्तिक और ईश्वरोन्मुख प्रेम, प्रकृति-प्रेम, प्राचीन गौरव का चित्रण आदि आपकी कविता की विशिष्टताएं हैं। आपकी कविता में प्रेम की पीड़ा का चित्रण अधिक हुआ है। यही व्यक्तिगत निराशा विश्व-प्रेम का रूप ग्रहण कर सारे विश्व की पीड़ा को स्वीकार कर उसे सुखमय बनाना चाहता है—'आँसू' काव्य में इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

महाकवि निराला—महाकवि निराला की 'जुही की कली' (1916) ने तो मानो द्विवेदी-युग में ही छायावादी कविता का द्वार खोलकर नवीन अनुभूति एवं मुक्त छंद का आह्वान कर दिया था। आपकी कविता में प्रारंभ से ही विविधता के दर्शन होते हैं। यह विविधता भावगत् एवं भाषागत् दोनों में ही है। आपकी कविताओं का संग्रह 'परिमल' और 'अनामिका' हैं। 'परिमल' में गीत भी हैं और मुक्त छंद भी, प्रणयपरक गीत भी हैं और ओजपूर्ण रचनाएँ भी। निरालाजी के स्फुट गीतों का संग्रह 'गीतिका' में हुआ है जिसमें साहित्य और संगीत का अपूर्व मणिकांचन योग है। आपकी रचनाओं पर दर्शन का प्रत्यक्ष प्रभाव लक्षित होता है। 'परिमल', 'गीतिका' के प्रार्थनापरक एवं वंदना गीत इसी रहस्यवाद के सूचक हैं। महाकवि

निराला आधुनिक युग के कवि होते हुए भी प्राचीन भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन एवं सांस्कृतिक मूल्यों को युग के विविध आयामों के साथ लेकर चलने वाले कवि हैं। आपकी इसी युग चेतना ने उन्हें छायावाद की सौंदर्यानुभूति के मध्य लोकोन्मुख बनाकर प्रगतिशील कवियों की प्रथम श्रेणी में खड़ा किया है जिसकी विवेचना आगामी पंक्तियों में की जायेगी।

महाकवि पंत—निरालाजी के शब्दों में हिंदी के 'सुकुमार कवि' पंत प्रकृति चित्रण के सुंदर चितेरे हैं। प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में कवि ने अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि की है। कहीं-कहीं प्रकृति संबंधी रहस्यवाद की भी झलक मिल जाती है। पंत जी के काव्य में कवित्व और सौंदर्य के साथ-साथ विश्वचिंतन और दार्शनिक विचारों का भी प्रभाव लक्षित होता है। विश्वचिंतन का यही भाव आगे चलकर छायावादोत्तर काल में 'युगांत' और 'युगवाणी' में पूर्णरूपेण विकसित हुआ है। आपकी कविता में सौंदर्य और कल्पना का प्रसार प्रकृति और जीवन के सुकुमार रूपों की ओर ही अधिक रहा है। कवि पंत की इसी सुकुमारता एवं मांसलता ने खड़ी बोली के उस लांछन को धो डाला जिसमें यह कहा गया था कि "खड़ी बोली में माधुर्य और कोमलता का अभाव है।"

महादेवी वर्मा—उपर्युक्त छायावादी कवियों के अतिरिक्त महादेवी वर्मा छायावाद की महत् कवयित्री हैं। आपकी कविताओं में विरहजन्य पीड़ा की तीव्र अनुभूति, प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन, जिज्ञासा एवं आध्यात्मिकता के भाव विशेष रूप से दिखाई देते हैं। छायावादी-काल की सुकुमारता एवं अनुभूति की मांसलता आपकी कविताओं में पूर्ण रूप से परिलक्षित होती है। वास्तव में दुःख ही उनके संपूर्ण साहित्य साधना का मूलाधार है, एवं अज्ञात प्रियतम (असीम, अगोचर) के प्रति प्रणय निवेदन ही इनके गीतों का प्रमुख स्रोत रहा है।

छायावाद के परवर्ती दिनों में छायावाद से भिन्न एक अन्य प्रकार की स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का विकास हुआ, जिसे डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में "**प्रेम और मस्ती का काव्य**" कहा गया है, और डॉ. नामवर सिंह ने "जवानी की मौज-मस्ती तथा लापरवाही की प्रवृत्ति का काव्य', कहा है। इस धारा के कवियों ने शरीर और मन के धरातल तक ही अपनी प्रणयानुभूति को सीमित रक्खा है। छायावादी कवियों—प्रसाद, निराला और पंत की रचनाओं में रीति की मांसलता एवं प्रणयानुभूति का चित्रण बड़ी तल्लीनता से हुआ है, किंतु धीरे-धीरे इन कवियों ने स्थूल प्रणय से ऊपर उठने का प्रयास करते हुए रति को जीवन चेतना के एक व्यापक अंग के रूप में ग्रहण किया है।

प्रेम और मस्ती के इन कवियों की रचनाओं में मात्र प्रणय में तल्लीन होना ही इनका साध्य रहा है। हरिवंशराय बच्चन की 'मधुशाला' युगीन काव्य एवं कवि की मादकता का उदाहरण है—

'वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाए जग का भय'

इस धारा के अन्य कवियों में रामेश्वर शुक्ल अंचल, नरेन्द्र शर्मा और हरिकृष्ण प्रेमी के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रणय के अभिलाषी ये कवि शारीरिक प्रेम के महत्व को स्वीकार करते हुए कहीं-कहीं मर्यादा का अतिक्रमण कर गए हैं। नवीन जी की 'साकी' की ये पंक्तियाँ—

'ऐसी पिला कि विश्व हो उठे
एक बार तो मतवाला,
साकी अब कैसा विलम्ब,
भर भर ला तन्मयता हाला'

इस दृष्टि से देखने पर यह कहा जा सकता है कि प्रणय का यह रूप छायावाद और नई कविता के बीच की कड़ी है। जिस प्रकार द्विवेदी युगीन नैतिकता के बोझ से आक्रान्त छायावादियों ने प्रणय को मुक्त करने का प्रयास किया लेकिन वे आध्यात्मिकता से संपृक्त हो गये। साकी और मादकता के ये कवि प्रणय की तीव्रता में इतने आगे बढ़ गये कि 'जग का भय' को अस्वीकार कर कविता में मादकता, साकी और शराब का स्वच्छंद वर्णन करने लगे। वास्तव में यह कविता भी उसी युग की उपज है जिसने छायावाद को जन्म दिया।

छायावादोत्तर युग—छायावाद के उपरान्त हिंदी कविता ने अपने ऐतिहासिक विकासक्रम में अनेक करवटें बदली हैं। प्रश्न उठता है कि इसके क्या कारण हैं? यह प्रश्न अपने आप में एक व्यापक विषय है। इस संदर्भ में इतना अवश्य कह सकते हैं कि संपूर्ण काव्य साहित्य के बदलते हुए प्रतिमानों के मध्य राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ ही सहायक हुई हैं। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप सन् 1930 के आसपास ही जिस नवीन सामाजिक चेतना से युक्त साहित्य-धारा का जन्म हुआ उसे ही सन् 1936 में 'प्रगतिशील साहित्य' का नाम दिया गया। सन् 1935 में एम. फार्स्टर के सभापतित्व में पेरिस में **'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन'** नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। सन् 1936 में सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनन्द के प्रयत्नों से भारतवर्ष में भी इस संस्था की शाखा खुली और प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में 1936 में **'प्रगतिशील लेखक संघ'** की स्थापना हुई। तब से साहित्य में प्रगतिवाद के रूप प्रगतिवादी काव्यधारा का विकास हुआ।

प्रगतिवाद और प्रगतिशील यह दोनों शब्द पूर्णत: अलग हैं । शिवदानसिंह चौहान का कथन है, ''प्रगतिवाद और प्रगतिशील में भेद है'' । प्रगतिवादी कविता किसी वाद विशेष की कविता नहीं है, वरन् विचारों की निर्भय अभिव्यक्ति और प्रगति की दिशा में समानता की माँग है । प्रगतिशील पुराने समाज को बदलने की और अग्रसर होता है और प्रगतिवाद का लक्ष्य साम्यवादी समाज की स्थापना एवं मार्क्सवाद के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रतिष्ठा है । इस प्रकार संपूर्ण प्रगतिवादी साहित्य प्रगतिशील साहित्य है, लेकिन सारा प्रगतिशील साहित्य प्रगतिवादी साहित्य नहीं कहा जा सकता । उदाहरणार्थ प्रेमचन्द का संपूर्ण साहित्य प्रगतिशील साहित्य है, न कि प्रगतिवादी । यही प्रगतिवाद और प्रगतिशील का सूक्ष्म भेद है ।

प्रगतिवादी साहित्यकारों ने छायावादी कविता को सामाजिक हित के प्रतिकूल बताकर उसका विरोध किया । समाज के दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति और आर्थिक शोषण के प्रति विरोध इस नयी प्रवृत्ति का मुख्य लक्षण है । मार्क्सवाद से प्रेरणा ग्रहण कर प्रगतिवादी लेखकों ने क्रांतिकारी विचारों का प्रचार किया । राजनीतिक दासता देश में एक ओर पूंजीवादी और सामंतवाद की शोषक शक्तियों को बढ़ावा दे रही थी तो दूसरी ओर जनसामान्य में अशिक्षा, बेकारी, गरीबी थी । द्वितीय महायुद्ध (1939), बंगाल का अकाल जैसी भीषण घटनाएँ घटित हो रही थीं । ऐसी स्थिति में बढ़ती हुई उग्र जनचेतना, रूस में मार्क्सवाद पर आधारित साम्यवाद का प्रभाव कवियों पर पड़ना स्वाभाविक था । प्रगतिवादी कविता समग्ररूपेण समाज की कविता है जिसमें समाज के सुख-दु:ख, दलित पीड़ित मानवता की पुकार को एवं समाज के अन्दर छोटे-समझे जाने वाले लोगों के जीवन पर, उनकी समस्याओं पर दृष्टिपात कर उन्हें कविता का विषय बनाया गया । प्रगतिवादियों का नारा था कि समाज में व्यक्ति और व्यक्ति के बीच आर्थिक समानता हो तथा समाज की संपूर्ण आर्थिक संरचना पर कुछ इने-गिने लोगों का एकाधिकार न हो ।

प्रगतिवाद 'यथार्थवाद' का पोषक है । 'यथार्थवाद' जयशंकर प्रसाद के शब्दों में—''लघुता के प्रति साहित्यिक दृष्टिपात'' है । कवि की इसी यथार्थवादी दृष्टि ने साहित्य में नवजीवन का संचार करके साहित्य का क्षेत्र व्यापक बनाया । काव्य में व्यापकता की इसी दृष्टि ने छायावादी कवि पंत और निराला को भी प्रगतिशील काव्य-धारा के व्यापक मंच पर खींच लिया । सुमित्रानंदन पंत जैसे छायावादी-युग के निर्माता कवि मार्क्सवाद की ओर मुड़ गये । पंत ने 1936 में 'युगांत' की घोषणा कर 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' (1940) की रचना कर नए युग 'प्रगतिवाद' का प्रारंभ किया । प्रगतिशील चेतना के प्रसार के लिए ही 'रूपाभ' (1928) नामक मासिक पत्रिका भी निकाली । निराला के 'कुकुरमुत्ता' (1943), 'गर्म पकौड़ी', 'स्फटिकशिला'

E+F

छायावाद-युग 1920 से 1936

विषयगत

मानव गौरव और व्यक्तिवाद
दु:खवाद
आत्माभिव्यंजना-अन्तर्मुखी प्रवृत्ति
बंधन से मुक्ति-पलायनवाद
सौंदर्यपूर्ण कल्पना की अभिव्यक्ति
प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण

अभिव्यक्तिगत

चित्रात्मकता तथा लाक्षणिकता
प्रतीकात्मकता-नए प्रतीकों का प्रयोग
सुंदर बिंब-विधान
कोमलकांत संस्कृतगर्भित पदावली
नवीन अलंकार योजना
मुक्त छंद प्रयोग
मुक्तक-शैली

प्रगतिवाद 1936 से 1943

विषयगत

सामाजिक यथार्थवाद
सामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता
वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए यत्न
मार्क्सवाद का प्रभाव
निम्नवर्ग की समस्याओं का चित्रण
रूढ़िवाद का विरोध
वेदना और निराशा की अभिव्यक्ति
बौद्धिकता और व्यंग्य

अभिव्यक्तिगत

कला एवं शैली में नवीन प्रयोग
सरल एवं सुबोध भाषा
छंद

कविता में लय की प्रधानता

और 'नये पत्ते' (1946) की अधिकांश कविताएँ इसी कोटि की हैं जिसमें शोषक-शोषित वर्ग के संघर्ष को उभारा है।

विषय-वस्तु के साथ ही कवि ने भाषा का भी जनवादीकरण किया। साहित्य जनता का है, जनता के लिए चित्रण करना एवं जनता तक पहुँचाने के लिए जनता के जीवन की बात कहना उसका लक्ष्य रहा है। अतः उसकी भाषा, शब्द, प्रतीक एवं मुहावरे सभी कुछ जनजीवन के बीच से लिए गये हैं। इस युग के प्रमुख कवि निराला और पंत के अतिरिक्त नागार्जुन (युगधारा), केदारनाथ अग्रवाल (युग की गंगा), शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन (धरती), शिवमंगल सिंह सुमन (जीवन के गान, प्रलय सृजन), गजानन माधव मुक्तिबोध आदि हैं। इन सभी कवियों ने भावुकता और कल्पना की अतिशयता के मध्य से कविता को निकालकर जन जीवन के मध्य प्रवाहित कर आधुनिक काव्यधारा के इतिहास में एक नया अध्याय अवश्य ही जोड़ा है।

आधुनिक हिंदी कविता के संदर्भ में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता अथवा अन्य विधाएँ समसामयिकता के अनुरूप बदलते हुए प्रतिमान हैं। प्रत्येक काव्य प्रवृत्ति के ह्रास के बाद नवीन 'प्रयोग' होते रहते हैं। सामान्य अर्थ में तो सभी नवीन प्रवृत्तियाँ प्रयोगवादी ही कही जा सकती हैं। किंतु आजकल 'प्रयोगवादी' एक विशेष अर्थ में प्रचलित हो गया है। 'प्रगतिवाद' जिस प्रकार मार्क्स के दर्शन से प्रभावित होकर सामाजिक जन-चेतना को साथ लेकर चला उसी प्रकार 'प्रयोगवाद' फ्रायड के काम सिद्धांत एवं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को साथ लेकर नए-नए भाव-बोधों, अनुभूतियों एवं नवीन-शिल्पगत् तथ्यों को लेकर सन् 1943 में 'तार-सप्तक'[1] के माध्यम से साहित्य जगत में प्रविष्ट हुआ जिसका पर्यावसान 'नयी कविता' में हो गया। 'नयी कविता' प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है। कुछ लोग तो प्रयोगवाद को 'नई कविता' के नाम से पुकारते हैं। यद्यपि दोनों में कोई निश्चित रूपरेखा उभर नहीं पाई थी। प्रयोगवाद वास्तव में ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के 'व्यक्ति जीवन' का चित्र है। आज के विघटनपूर्ण समाज में व्यक्ति किस प्रकार संघर्षों से प्रतिक्षण जूझता हुआ कुंठा, संत्रास और निराशा के मध्य अवसाद मात्र बनकर रह गया है। उसका अपना अस्तित्व (यथार्थ) किस प्रकार दमित कामवासना का यूटोपिया बनता जा रहा है। उसके इस व्यक्तित्व को इन प्रयोगवादी कवियों ने ही पहचाना है, साथ ही सहानुभूतिमय दृष्टि से सोचने के लिए एक नए मार्ग का निर्माण भी किया है, उसके

---

1. **तार सप्तक के कवि**—मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, अज्ञेय।

काव्य का उद्देश्य किसी आदर्श की स्थापना करना नहीं है वरन् जीवन में भोगे हुए सत्य को, अनुभूति की सच्चाई एवं यथार्थ जीवन को ईमानदारी के साथ व्यक्त करना रहा है।

प्रयोगवाद वस्तुत: व्यक्तिवाद और रूपवाद की कविता है। व्यक्तिवाद की अतिशय प्रधानता ने जहाँ इन कवियों को समाज निरपेक्ष बना दिया वहाँ कलावाद अथवा रूपवाद की प्रक्रिया में विलक्षण प्रयोगों, प्रतीकों, बिंबों एवं छंद विधान की अतिशय बौद्धिकता ने कविता के स्वाभाविक रूप को दुरूह बना दिया है। इन कवियों का लक्ष्य आत्मसत्य के द्वारा काव्य-सत्य पाने का प्रयास रहा है। अज्ञेय इसी काव्य सत्य के आकांक्षी रहे हैं। अज्ञेय के ही शब्दों में "व्यक्ति का जो अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी संपूर्णता में पहुँचाया जाए, यही पहली समस्या है"। इसके अतिरिक्त शमशेर बहादुर, भवानीप्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर एवं रघुवीर सहाय आदि कवि इसी धारा के पक्षपाती रहे हैं। इसी परंपरा में आगे चलकर 'नई कविता' का विकास हुआ।

जैसा कि प्रयोगवाद के प्रारंभ में ही कहा जा चुका है—नयी कविता उसका विशिष्ट विकसित रूप है। प्रयोगवादी कविता के प्रवर्तक अज्ञेय ने दूसरा सप्तक[1] (1951) के प्रकाशन के साथ ही नयी कविता का प्रारंभ किया जिसे आगे चलकर 1953 में 'नये पत्ते' और सन् 1954 में डॉ. जगदीश गुप्ता और रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादन में 'नयी कविता' पत्रिका के साथ प्रतिष्ठा मिली।

'नयी कविता' प्रयोगवाद का विकसित रूप होते हुए भी इसका क्षेत्र अधिक व्यापक रहा है। इसका एकमात्र लक्ष्य समाज की सर्वांग अनुभूतियों की तदनुरूप अभिव्यक्ति है। व्यक्ति मन की सूक्ष्मतम गहराइयों की पैठ, जीवन को 'जीवन' के रूप में देखने की अभिलाषा, व्यक्तिमात्र का अपना अस्तित्व, जीवन के प्रति पूर्ण आस्था, क्षण की अनुभूति एवं उसके भोगने की लालसा, समय की माँग के प्रति न्याय उसकी काव्य प्रवृत्ति का प्रमुख लक्ष्य रहा है। उसने अपने चतुर्दिक विकास (व्यक्तिमात्र) के लिए न तो भक्तिकालीन कवियों की भाँति ईश्वर से आराधना की है न रीतिकालीन राजाओं का आश्रय माँगा और न ही छायावादियों की भाँति पलायन किया, (प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की प्रवृत्ति भी उसे संकुचित लगीं) वरन् समाज के बीच ही समस्त संघर्षों से मोर्चा लेते हुए उसी के मध्य उसने समाधान

---

1. दूसरा सप्तक के कवि—भवानीप्रसाद मिश्र, शकुंतला माथुर हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती।

ढूँढ़ा है। वह समाज की सारी शक्ति को व्यक्ति में केंद्रीभूत कर एक नए समाज का सृजन करने की ओर गतिशील है। भवानीप्रसाद मिश्र की यह पंक्तियाँ.............

"..................कि टूटना, बिखरना, कुछ नहीं है, जीवन संघर्ष है, लड़ो..........."

इन कवियों ने व्यक्ति की स्थापना के लिए ही राजनीति और शासनतंत्र की अव्यवस्था का भी पर्दाफाश किया है। जहाँ तक 'नयी कविता' में अपने समय के प्रति जागरूकता एवं व्यक्तिमात्र के प्रति सहानुभूति है, वहाँ दूसरी ओर ये कवि कुछ उच्छृंखल भी हो गये हैं। सब कुछ कहने की छटपटाहट में कहीं-कहीं कविता में उन्मुक्त एवं नग्न सैक्स तथा अनर्गल प्रयोग भी हुए हैं। लेकिन यह स्थिति सर्वत्र नहीं। वास्तव में इन कवियों ने जीवन की यथार्थता को जितने निकट से देखा है, उसका पूर्व युगों में अभाव अवश्य ही खटकता है।

अनुभूति की सच्चाई एवं अभिव्यक्ति की सहजता के अनुरूप ही भाषा एवं छंद का प्रयोग किया है अर्थात् अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप भाषा एवं छंद प्रयोग की मान्यता इन्हें स्वीकृत है। अन्यथा केवल बाहरी रूप-सज्जा के लिए कविता की आत्मा को विघटित नहीं किया जा सकता। शिल्प की सफलता समसामयिकता से बँधकर चली है। यही 'अर्थ की लय' कहलाती है। नयी कविता का काव्य-शिल्प इसी बात पर निर्भर है।

अन्ततः नयी कविता जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति की सार्थकता ही 'नयी कविता' का लक्ष्य है। इस लक्ष्य के लक्षित कवि गजानन माधव मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद, शमशेर, रघुवीर सहाय, गिरिजाकुमार माथुर, केदारनाथ अग्रवाल आदि हैं। इसके अतिरिक्त 1959 में प्रकाशित तीसरा सप्तक के प्रकाशन से भी अनेक नए कवि प्रकाश में आये हैं।

सन् 1960 के बाद की कविता के क्षेत्र में समय-समय पर नये आंदोलन आते रहे हैं, 'साठ के बाद की कविता', 'साठ के बाद की कहानी', 'साठ के बाद का उपन्यास' जैसे शीर्षक निकलते रहे हैं। केवल कविता का ही इतिहास देखा जाय तो इनके अनेक नाम दिये गये हैं—अकविता, नकविता, अस्वीकृत कविता, युयुत्सवादी-कविता, प्रतिबद्ध कविता, भूखी पीढ़ी की कविता। 1943 में 'प्रारंभ' नामक कविता संग्रह के चौदह युवा कवियों की रचनाएँ प्रकाशित हुई जिन्हें 'ताजा कविता' या 'अति-कविता' कहा गया। 1965 में अकविता नामक संकलन पत्रिका के रूप में

---

1. **तीसरा सप्तक के कवि**—प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवरनारायण, विजय देव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

प्रकाशित हुआ। वस्तुतः कविता के संदर्भ में ये विभिन्न नाम अन्ततः थोड़े से परिवर्तन से सामान्य प्रवृत्ति वाले ही हैं जिनमें 'अकविता' नाम अधिक सार्थक होकर प्रचलित हुआ है।

'अकविता' में असंतोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर प्रमुख रहा है। यद्यपि 'नई कविता' में यह असंतोष विद्यमान था, लेकिन सन् 1960 के बाद यह असंतोष भयानक आक्रोश और विद्रोह में परिवर्तित हो गया। समाज की समस्याओं के अनुरूप ये कवि भी संघर्षशील होते जा रहे हैं। राजनीति के शिकंजे के मध्य व्याप्त जमाखोरी एवं भाई-भतीजावाद के प्रति भी इन कवियों ने विद्रोह किया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आज की रोजमर्रा जिन्दगी की अनुभूतियों एवं उनके मध्य व्याप्त अन्तर्विरोधी प्रवृत्तियों को पहचानने की जैसी पैनी दृष्टि इन कवियों में रही है—यह एक नयी काव्य-संवेदना का विस्तार है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कविता को एक जीवंत भाषा दी जिसका मूल स्रोत आम जनता की बोली में है। इस दौर के कवियों में धूमिल, राजकमल चौधरी, चन्द्रकांत देवताले आदि हैं। इन कवियों के अतिरिक्त नयी कविता के विशिष्ट कवि रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे कवियों ने भी नई सामाजिक चेतना से सम्पन्न कविताएँ लिखीं।

साठोत्तरी कविता में समकालीन चेतना और यथार्थ की अभिव्यक्ति का प्रयास तो है ही लेकिन साथ ही सपाटबयानी के आग्रह एवं विद्रोह तथा आक्रोश की भंगिमा ये कवि परंपरा की जीवंत चेतना एवं मानवतावादी मानवीय मूल्यों को भी नकार गए हैं। हर्ष का विषय है कि इधर कुछ वर्षों से कवियों की दृष्टि में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए जिसके फलस्वरूप 'कविता' काव्यधारा की सहज भावभूमि पर अवतरित होने का प्रयत्न कर रही है।

आधुनिक काव्यधारा के संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि संपूर्ण आधुनिक कविता (छायावाद के पश्चात्) के विकासक्रम को परिप्रेक्ष्य में रखकर उसका मूल्यांकन करना उचित होगा। उसे खंड-खंड करके देखना उचित नहीं। 'नयी कविता' के संदर्भ मे यही हुआ। उसे प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के दायरे में बाँटकर अथवा साठोत्तरी, युयुत्सावादी, नकेनवादी आदि पूर्वाग्रह ग्रस्त विशेषणों के संदर्भ में देखा गया। यह अतिवादी दृष्टिकोण है। भक्तिकाल, रीतिकाल अथवा छायावादी साहित्य के दायरे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में निश्चित रूप से रहे हैं। अतः उसी विकासक्रम में 'नयी कविता' का शृंखलाबद्ध रूप में मूल्यांकन करना उचित होगा, तभी उसके प्रति न्याय हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचना में आधुनिक हिंदी-साहित्य (कविता) का अध्ययन करने के पश्चात् यह जिज्ञासा उठती है कि साहित्य के इतिहास की यह प्रवृत्तियाँ (यहाँ सिर्फ

कविता के वर्णन से तात्पर्य है) क्या केवल एक भाषा तक ही सीमित है। वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अपूर्ण ही रहेगा। हमें हिंदी कविता के इतिहास क्रम का अध्ययन करने के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को भी दृष्टि में रखना होगा तभी यह अध्ययन पूर्ण माना जाएगा। आधुनिक साहित्य के विकास की रेखाएं प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में समान रहती हैं। लगभग सभी भाषाओं में आधुनिक युग का सूत्रपात सन् 1857 के स्वातंत्र्य संघर्ष के आसपास ही होता है। स्वतंत्रता-पूर्व आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां प्रमुखतः सांस्कृतिक पुनर्जागरण, राष्ट्रीय भावना का उत्कर्ष, रोमानी सौंदर्य दृष्टि एवं साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय आदि प्रवृत्तियां थोड़े से अंतर से प्रायः सभी भाषाओं में पाई जाती हैं। तमिल में पुनर्जागरण के नेता थे रामलिंग स्वामीगळ इन्होंने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रयत्न किया। सुब्रह्मण्यम भारती, चिदंबर पिल्लई आदि कवियों ने अपने काव्य के द्वारा सांस्कृतिक क्रांति तथा राष्ट्रीय चेतना को वाणी प्रदान की। इसी प्रकार कन्नड़, तेलुगु आदि भाषाओं में भी नवीन जागरण का स्वर तेजी से उठा जिसमें क्रमशः वीरेशलिंगम, गुर्जाड अप्पाराव, कन्नड़ से श्रीकण्ठैया, गोविंद पै, शंकर भट्ट आदि कवियों ने सामाजिक चेतना से अनुप्राणित साम्य भावना तथा देशभक्ति के वीरगीत लिखकर प्रदेश को नवीन स्फूर्ति से भर दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और रोमानी काव्यधाराओं के पश्चात् कविता में मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश हो गया। अ. न. कृष्णराव, करंत तथा निरंजन आदि लेखकों ने शोषित जनता के जीवन गीत गाए हैं। प्रगतिशील कवियों में एन. वी. कुरुप्प, पी. भास्करन, अनुजन आदि उल्लेखनीय हैं। मराठी साहित्य में भी आधुनिक युग का सूत्रपात उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध में हो चुका था। इस वर्ग के कवियों में महाजनि, कीर्तिकर, कुंते आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने मराठी काव्य को नई दिशा प्रदान की। काव्य में राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का विकास हुआ। इसके पश्चात् रोमानी काव्य सौंदर्य को भी कविता में स्थान मिला है। हिंदी की प्रयोगवादी कविता का अभिधान भी मराठी साहित्य में दृष्टिगत होता है। मर्ढेकर जैसे कवियों का नाम इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। गुजराती कविता भी हिंदी भाषा की इस प्रवृत्ति से दूर नहीं है। रोमानी सौंदर्य दृष्टि का उन्मेष हमें पूजालाल आदि की प्राचीन रचनाओं में मिलता है। भारतीय भाषाओं में सबसे समृद्ध आधुनिक साहित्य है बंगला भाषा का। उन्नीसवीं शती में राजा राममोहनराय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ठाकुर आदि नेताओं ने बंगाल के समाज और साहित्य में नवीन युग का प्रवर्तन किया। रवींद्रनाथ के उदय से ही बंगला साहित्य में नवीन रहस्य-चेतना एवं सौंदर्य-भावना का विकास हुआ। इसी प्रकार असमिया और उड़िया में भी आधुनिक साहित्य की गतिविधि

समान रही है। राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत आनंदराम फकन, हेमचंद्र बरुआ, कमला कांत भट्टाचार्य आदि ने वीरगीतों के द्वारा देशभक्ति एवं व्यंग्य कथाओं द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया है। इसी प्रकार रोमानी काव्य-चेतना एवं 1946 में प्रकाशित 'आधुनिक असमिया कविता' में पूंजीवादी शोषण तथा वर्गवाद के विरुद्ध हुँकार सुनाई देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियों के अनुरूप ही अन्य भारतीय भाषाओं (जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) में वे सभी प्रवृत्तियाँ समान रूप से पाई जाती हैं।

उपर्युक्त विवेचना में हिंदी कविता के विकास क्रम की चर्चा विस्तार से की गई है। हिंदी कविता की प्रवृत्तियों को विस्तार देते हुए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या ये प्रवृत्तियाँ हिंदी भाषा के साहित्य तक ही सीमित हैं अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में भी इनके सूत्र तदनुरूप पाए जाते हैं। किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन मात्र एक भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अपूर्ण रहेगा। यह विषय यद्यपि विस्तृत है लेकिन संक्षेप में इन पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ यहाँ नाथ-साहित्य से प्रारभ होकर आधुनिक हिंदी कविता तक प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में देखने को मिलती हैं। उदाहरणार्थ सूर का वात्सल्य वर्णन हिंदी काव्य की अपनी कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, असमिया कवि माघव देव ने अपने 'बड़गीतों' में कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन किया, गुजराती कवि भालण ने अपने आख्यानों में, मलयालम कवि ने कृष्ण गाथा में इसका विस्तार से वर्णन किया है। इसी प्रकार कविता की अन्य प्रवृत्तियाँ जिनका उल्लेख किया जा चुका है–हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं गुजराती, असमिया, तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ आदि में देखने को मिलती हैं।

इतना ही नहीं हिंदी की तरह प्राय: सभी भारतीय भाषाओं का प्रारंभ, (जैसे तेलुगु साहित्य के प्राचीनतम ज्ञात कवि नन्नय जिनका समय है ईसा की ग्यारहवीं शती, मलयालम की सर्वप्रथम कृति ' ामचरितम्' जो अनुमानतः तेरहवीं शती की रचना है, बंगला के चर्यागीतों की रचना 10वीं और 12वीं शताब्दी आदि) भारतीय साहित्यों के विकास के चरण आदि प्रवृत्तियाँ थोड़े से परिवर्तन से प्राय: भिन्न हैं। इस समानता में कहीं-कहीं अपवाद अवश्य है जैसे भाषाओं के प्रारंभ के संदर्भ में देखें तो तमिल और उर्दू इन दो भाषाओं का प्रारंभ अन्य भाषाओं के प्रारंभ की अपेक्षा कुछ अपवादमय है।

उपर्युक्त विवेचित कविता की प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ समान हैं—जैसे रामायण और महाभारत पर आधारित काव्य की परंपरा प्राय: सभी प्रदेशों के साहित्य में मिलती है। उदाहरणार्थ तमिल में 'कम्ब रामायण', मलयालम में रजुतच्चन की 'अध्यातमरामायण, मराठी में मोरोपन्त की रामकथा, तेलुगु में 'रंगनाथ

रामायण', और हिंदी में 'रामचरितमानस' एक व्यापक परंपरा के अंग हैं। इसी प्रकार महाभारत पर आधारित काव्यों पर एक लंबी परंपरा जो अनेकता में एकता की द्योतक है। इसके अतिरिक्त संस्कृत काव्यशास्त्र का भी एक सार्वभौमिक प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओं पर है। उदाहरण के लिए देखिए रीतिकालीन काव्य जिसमें स्पष्ट किया जा चुका है कि रीतिकालीन अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने किस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा को बनाए रखा है।

हिंदी कविता की सुदीर्घ परंपरा अर्थात् उसके विकास क्रम का अध्ययन करने के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं में उन सूत्रों को ढूंढ़ने का जो प्रयास किया गया है उसका एकमात्र उद्देश्य है भारत की राष्ट्रीय एकता को दर्शाना। राष्ट्रीय एकता का स्तंभ ही साहित्य है। जिस प्रकार अनेक धर्मों, जातियों, विचार-धाराओं के होते हुए भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है उसी प्रकार अनेक भाषाओं के होते हुए भी उसमें व्याप्त अन्तर्भूत एकता असंदिग्ध है। हिंदी साहित्य के काल विभाजन की तरह अन्य भाषाओं के साहित्य में यद्यपि ऐसा कोई विभाजन नहीं है लेकिन उसमें व्याप्त प्रवृत्तियाँ प्रायः समान हैं।

जिस प्रकार उपर्युक्त विवेचना में हिंदी साहित्य (विशेषतः कविता) के संदर्भ अन्य भारतीय भाषाओं (मलयालम, कन्नड़, उड़िया, असमिया, तमिल, तेलुगु आदि) का अध्ययन किया गया है उसी प्रकार अब हम यहाँ अखिल भारतीय संदर्भ में हिंदी कविता की स्थिति पर विचार करेंगे।

अखिल भारतीय संदर्भ में हिंदी कविता

हिंदी काव्य—साहित्य के विकास के साथ ही साथ हिंदीतर प्रदेशों में भी हिंदी साहित्य का अच्छा विकास हुआ है। इसका प्रमुख कारण अन्य भाषाओं की

नोट—हिंदीतर साहित्य के संदर्भ में जिन महानुभावों से साक्षात्कार कर मैंने विचार-विमर्श किया है उनमें डॉ. वि. कृष्णस्वामी अय्यंगार (कन्नड़ भाषी), डॉ. न. वी. राजगोपालन (तमिल भाषी), एवं डॉ. नारायण पिल्ले, टी. के. (मलयालम भाषी) के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. न नागप्पा का व्याख्यान जो पुस्तक रूप में प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का अध्यापन', डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास'—(अंतर भारती हिंदी साहित्य) एवं डॉ. मलिक मोहम्मद द्वारा संपादित 'हिंदीतर प्रदेशों का हिंदी साहित्य में योगदान' आदि पुस्तकों की चर्चा प्रस्तुत विषय से संबद्ध है।

अपेक्षा 'हिंदी' की व्यापकता एवं सार्वभौमिकता है। हिंदी-साहित्य अखिल भारतीय साहित्य है, क्योंकि हिंदी-भाषा, मात्र उत्तर-भारत की ही भाषा नहीं है वरन् लोक-शक्ति से उद्भूत जन-सामान्य की भाषा है। वह जन-सामान्य किसी एक प्रदेश का निवासी नहीं है वरन् संपूर्ण राष्ट्र का नागरिक है, जिसकी संस्कृति, साहित्य एवं धर्म के मध्य परस्पर विचार-विनिमय होता रहता है। भारतीय संस्कृति की यही विशिष्टता उसे अन्य संस्कृतियों से अधिक गौरव प्रदान करती है। इस तथ्य को हमारे संतों और महात्माओं ने बहुत पहले ही समझ लिया था। इन संतों साधुओं ने सारे देश में घूम-घूमकर लोगों के साथ सत्संग कर अपने विचारों को हिंदी में व्यक्त कर उसे राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार परस्पर संपर्क के माध्यम से ही हिंदी (दूसरी अन्यान्य बोलियों) के साहित्य में सार्वदेशिक चेतना प्रतिफलित हुई है।

समग्र भारत में आदृत कबीर, सूर और मीरा, तुकाराम और नामदेव, शंकरदेव तथा माधवदेव आदि की भक्तिपूर्ण उक्तियाँ विभिन्न प्रदेशों के लोगों के मध्य प्रचलित रही हैं। इनसे यह प्रमाणित होता है कि मध्ययुग से ही समस्त भारतीय साहित्य का हृदयस्वर एक था। इन सब कारणों से यदि यह कहा जाय तो असंगत न होगा कि हिंदीतर भाषा प्रदेशों के लोगों को भी हिंदी साहित्य अजनबी नहीं था।

सिद्धों और नाथों में अग्रगण गोरखनाथ की वाणी हिंदी साहित्य का अंग है। इस नाथ संप्रदाय के चिंतन का प्रचार पंजाब से लेकर दक्षिण तक गुजरात, महाराष्ट्र से लेकर बंगाल, असम तक व्याप्त था। महाराष्ट्र के ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम आदि, गुजरात के नरसी मेहता, दादू, संत प्राणनाथ और अखा आदि ज्ञानमार्गी संतों ने हिंदी में भक्ति संबंधी रचनायें की थीं।

गुजरात में हिंदी की जो धारा प्रवाहित हुई उनमें संतों की वाणी, वैष्णव कवियों के भक्ति पद जैन कवियों की रचनाएँ, सूफियों के प्रेमाख्यान आदि का विशेष महत्व है। महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गी कृष्णभक्ति का गुजरात में काफी प्रचार हुआ है जिसकी परंपरा में 'अष्टछाप' के कवियों एवं 'ब्रजभाषा' का अपना विशेष महत्व रहा है। भक्ति के अतिरिक्त काव्य-रीति राज-प्रशंसा आदि विषयों को लेकर भी गुजरात में हिंदी रचनाएँ हुईं। राज्याश्रित कवियों में राजकुमार महरामसिंह कृत 'प्रवीणसागर' ब्रजभाषा और खड़ीबोली में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त लखपती कवि का 'लखपती शृंगार' काव्यशास्त्र का ग्रंथ है। पंजाब के गुरुनानक, गुरु गोविन्दसिंह, असम के शंकरदेव, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, उड़ीसा के राय रामानन्द आदि अनेक कवियों ने ब्रजभाषा में रचना करके इसके अखिल-भारतीय स्वरूप के निर्माण में अविस्मरणीय योगदान दिया है। भाषा के इस आक-

र्ण के प्रति जनता का इतना मोह गया था कि ब्रज प्रदेश की भाषा ब्रज, बंगाल व उड़ीसा में 'ब्रजबुलि' तथा असम में 'ब्रजावली' के नाम से कृष्ण काव्य की माध्यम भाषा के रूप में लोकप्रिय हुई।

इसके अतिरिक्त कर्नाटक के मध्वाचार्य, तमिलनाडु के रामानन्द आदि का हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिसकी विवेचना पूर्व की जा चुकी है। इस प्रकार हिंदीतर भाषा-भाषी प्रदेशों में हिंदी का जो प्रचार-प्रसार हुआ उसकी मुख्य आधारशिला धर्म एवं संस्कृति थी जिसके अंतर्गत न केवल भक्ति-साहित्य का प्रचार हुआ अपितु मौलिक रचनाएँ भी निर्मित होती रहीं। मौलिक रचनाओं का यह दौर वास्तव में स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ ही प्रारम्भ हुआ। भारत में राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण की चेतना के फलस्वरूप भारत की विभिन्न भाषाओं में राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण साहित्य की रचना होने लगी। हिंदी राष्ट्रभाषा मानी जाने लगी।

हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी का विकास जिन विभिन्न स्तरों पर हुआ है वे निम्नलिखित हैं—

1. प्रचार कार्य के रूप में

2. मौलिक साहित्य लेखन के रूप में

3. अनुवाद के रूप में

4. शोध कार्य कें रूप में।

यहाँ अधिक विस्तार में न जाकर हमें इतना ही देखना है कि हिंदी कविता के क्षेत्र में हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी कविता के समानान्तर कवियों का क्या योगदान रहा है। यह स्पष्ट है कि कविता की अपेक्षा गद्य साहित्य (कहानी, उपन्यास, निबंध जीवनी आदि) के क्षेत्र में हिंदीतर प्रदेशों में अधिक काम हुआ है। यहाँ हमारा उद्देश्य मात्र 'कविता' के संदर्भ में ही कुछ कहना है। अतः हम यहाँ अति-संक्षिप्त रूप में हिंदीतर प्रदेशों के कवियों का हिंदी कविता की धारा में क्या योगदान रहा है—इस पर विचार करना समीचीन होगा।

हिंदी कविता के क्षेत्र में तमिल भाषा-भाषी कवियों का योगदान उल्लेखनीय रहा है। बीसवीं शती के चौथे दशक में तमिल भाषियों ने हिंदी में मौलिक लेखन का कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि की रचना के माध्यम से हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाया है। कविता-रचना के क्षेत्र में रांगेय राघव, सुमतींद्रन आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। डा. राघव और समुतींद्रन हिंदी के सशक्त प्रगतिशील कवियों में गिने जाते हैं। युग की अधिकांश

प्रयोगवाद से नयी कविता—(तारसप्तक 1943, में दूसरा सप्तक 1951 और तीसरा सप्तक 1959 तक) G

विषयगत

- ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज का चित्रण
- यथार्थ का आग्रह—वैयक्तिकता की प्रधानता
- लघु मानव की प्रतिष्ठा
- जीवन के प्रति पूर्ण आस्था
- जीवन मूल्यों की खोज एवं नए मूल्यों की स्थापना
- भोगे हुए सत्य की अभिव्यक्ति
- जीवन की जड़ता, कुंठा, अनास्था का चित्रण
- दमित कामवासना का प्राधान्य (फ्रायड का काम सिद्धांत)
- क्षण का महत्व
- कोरे आदर्श और दर्शन के प्रति चुनौती

अभिव्यक्तिगत

- परिवेशगत् भाषा प्रयोग
- लोक-जीवन के बिंबों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों का प्रयोग
- नव प्रतीक-योजना
- नए विशेषण-प्रयोग
- नवीनछंद (कहीं-कहीं छंद-मुक्त कविता भी हुई)
- डैश, बिंदु और कोष्ठकों जैसे विराम-चिह्नों का काव्यात्मक प्रयोग

कविताओं में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति और सामाजिक विषमताओं का चित्रण है।

तेलुगु भाषी हिंदी कवियों में सर्वश्री आलूरी वैरागी, डॉ. चावलि सूर्य-नारायण मूर्ति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। तेलुगु भाषियों में खड़ी बोली में प्रबन्ध काव्य लिखने का श्रेय स्व.-पिंगलिलाजपति को है। 'काव्य की उपेक्षिता उर्मिला' का चरित्र चित्रण करते हुए डॉ. चावलि ने 'सती उर्मिला' की रचना की थी। कवि वैरागी की कविताओं का संकलन 'पलायन' काव्यगुण एवं रचना सौष्ठव की दृष्टि से विशिष्ट है। इनकी कविताओं पर मार्क्सवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। इधर स्व. चल्ला लक्ष्मीनारायण शास्त्री ने 'विरि वाना' (फूलों की वर्षा) नाम से 'बिहारी सतसई' का तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत किया।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त श्री के. नरसा रेड्डी, चेब्रोलु शेषगिरिराव, डॉ. जी. बालसुब्रह्मण्यम् आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के विकास में कर्नाटक की देन का कम महत्व नहीं है। अपभ्रंश के आदिकवि स्वयंभू कर्नाटक के थे। इनके काव्य में सैकड़ों कन्नड़ के शब्द प्राप्त होते हैं। कवि पुष्पदन्त के काव्य में भी कन्नड़ के शब्द मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि कर्नाटक का हिंदी भाषा एवं साहित्य से बहुत प्राचीन संबंध रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् हिंदी लेखन के प्रति कन्नड़ भाषियों की रुचि अधिक दिखाई पड़ती है। सरगु कृष्णमूर्ति, पंकज शर्मा, इन्दरराज 'अधीर', कक्कनवर अप्पासाहब सनदी, सिद्धलिंग पट्टणशेट्टी, राधाकृष्ण मुदलियार आदि कवि हुए हैं। इन कवियों की कविताओं में मनुष्यमात्र के प्रति सहानुभूति है, तो दूसरी ओर अन्याय, शोषण और भ्रष्टाचार के प्रति तीखा विद्रोह है।

काव्य रचना में हिंदी का प्रयोग करने वाला सर्वप्रथम केरलीय कवि हास्य सम्राट कुंचन नंबियार माना जाता है। उसके बाद संगीत सम्राट केरल के प्रथम हिंदी गीतकार स्वाति तिरुनाल थे। आपके हिंदी गीतों की भाषा मूलतः ब्रज है। भक्ति और विरहिणी प्रेमिका की व्यथा का चित्रण इन गीतों की उल्लेखनीय विशेषता है। सर्वश्री 'देव' केरलीय, पी. नारायण, एम श्रीधर मेनोन, एन. चन्द्र लेखरन नायर, वी. के. एस. नंबूतिरि के नाम उल्लेखनीय हैं। सामाजिक विषयों पर विचारपूर्ण काव्य लिखने का श्रेय भी इन कवियों को है। साथ ही हिंदी काव्य की छंदहीन धारा, सामाजिक व्यंग्यात्मक कविताएँ एवं प्रयोगवादी रचनाएँ भी इन्हें विशेष आकर्षक लगी हैं। इसके अतिरिक्त प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता जी शंकर कुरूप का काव्य संग्रह 'बाँसुरी' (अनुवादित) आदि काव्यकृतियों के अनुवाद भी हिंदी की काव्य शाखा को समृद्ध करने में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं।

जैसा कि पूर्व विवेचना में विस्तार से कहा जा चुका है, महाराष्ट्र के लगभग सभी संत कवि हिंदी जानते थे और उन्होंने हिंदी में भी रचनाएँ की हैं। आरम्भ में वही सिद्ध और निर्गुण सन्त, फिर वैष्णव भक्तिधारा—राम और कृष्ण चरित पर आश्रित काव्य लिखा गया। इस काल खण्ड में भक्ति साहित्य के अतिरिक्त मुक्त रूप से शृंगार का भी वर्णन कवियों ने किया है। इसके अतिरिक्त श्री केशवराव फणसे, आत्मराव देवकर, तथा सिद्धनाथ माधव अगरकर आदि कवियों के सुधारवादी दृष्टिकोण, सामाजिक उत्थान की भावना एवं अतीत गौरव का चित्रण इन कवियों की कविताओं में सहज देखा जा सकता है। छायावादी कवि प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी का प्रभाव भी इन कवियों की कविताओं में देखा जा सकता है। साहित्य की आधुनिक संवेदना एवं सर्जनात्मक क्षमता से सम्पन्न कवियों में मराठी भाषी हिंदी कवि डॉ. प्रभाकर माचवे, गजानन माधव मुक्तिबोध तथा दिनकर सोनवलकर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। डॉ. माचवे सन् 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' के प्रमुख कवियों में से एक हैं। डॉ. माचवे कवि होने के साथ ही साथ समर्थ ललित निबंधकार भी हैं। मुक्तिबोध मूलतः मराठी थे, ये तारसप्तक के प्रखर कवि थे तथा इनमें साहित्य और समाज की गहन चेतना और सौन्दर्य बोध के साथ-साथ जीवन को गहरी अन्तर्दृष्टि थी जिसने नवलेखन को एक नया आयाम दिया।

हिंदी के संदर्भ में हिंदीतर प्रदेशों के योगदान की चर्चा उठते ही गुजरात का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस प्रदेश के लोगों ने विशेषतः वैष्णव कवियों एवं निर्गुण सन्तों ने अपने मत के प्रचारार्थ अपनी मातृभाषा के साथ-साथ हिंदी को भी संप्रेषण का माध्यम बनाया जिनकी चर्चा पूर्व पृष्ठों में की जा चुकी है। आधुनिक कवियों में दलपतराम, नर्मद, बालाशंकर और गोविन्द-गिल्ला भाई मुख्य हैं। दलपतराम कृत 'श्रवणाख्यान' और गोविन्द गिल्ला भाई की हिंदी रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिंदी प्रदेश से बंगाल का संबंध न केवल प्राचीन है वरन् घनिष्ठ रहा है। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देने के लिए विचार-परम्परा का सूत्रपात बंगाल में ही हुआ था। मैथिल के कवि विद्यापति के पदों के आश्रय से बंगला में 'विद्यापति' नामधेय कवियों ने 'ब्रजबुलि' में कृष्णभक्ति एवं शृंगार विषयक पदों की रचना की है। वास्तव में हिंदी-साहित्य को बंगाल की देन यहीं से शुरू होती है। सोलहवीं शताब्दी में श्री गौरांग चैतन्य महाप्रभु के द्वारा माधुर्य-भक्ति से अभिषिक्त एवं रससिक्त हिंदी कृष्णकाव्य के निर्माण में चैतन्यदेव की देन को उजागर करती है। इस प्रकार हिंदी साहित्य के साथ बंगाली कवियों का भी संबंध मूलतः भक्ति के माध्यम से गहरा होता गया। आधुनिक चेतना संपन्न समकालीन कविता के क्षेत्र में कवि प्रवण कुमार बंद्योपाध्याय एवं श्यामसुन्दर घोष का नाम लिया जा सकता है।

इन अहिंदी भाषी बंगाली विद्वानों ने हिंदी भाषा और साहित्य की विशेष सेवा की है।

उड़िया एवं हिंदी साहित्य का विकास प्रायः समान रहा है, इसका कारण परिस्थितियों का एक समान होना हैं। रामानुजाचार्य द्वारा वैष्णव भक्ति के प्रचार एवं चैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित प्रेमाभक्ति से प्रभावित वहाँ के कवियों में ब्रजभूमि के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा जिसके फलस्वरूप लोग बड़ी संख्या में वहाँ की भाषा (ब्रज जिसे उड़ीसा में 'ब्रजबुलि' के नाम से जाना जाता है कृष्णकाव्य की माध्यम भाषा के रूप में लोकप्रिय हुई) को अपनाने लगे। इस प्रकार 'ब्रजबुलि' में रचना करने की होड़-सी लग गई जिसके प्रवर्तक राय रामानन्द थे। भक्ति-साहित्य की रस धारा ब्रजबुलि के प्रसिद्ध गायकों का प्रमुख केन्द्र उड़ीसा ही रहा है। वास्तव में हिंदी कवि विद्यापति के मैथिल गीतों का प्रभाव ही बंगाल और उड़ीसा में 'ब्रजबुलि'[1] एवं असम में ब्रजावली रूप में पनपा है। रीतिकालीन कवियों में दीन कृष्णदास की रचना 'रसकलोल' लोकप्रिय रही है। इसके अतिरिक्त उड़ीसा के नीलमणि मिश्र, श्रीमती कुन्तला कुमारी आदि के नाम हिंदी के रचियताओं में उल्लेखनीय हैं।

पंजाब का ब्रजभाषा से दीर्घ अवधि से सम्बन्ध रहा है। परिनिष्ठित एवं एकमात्र पद्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा यहाँ शताब्दियों तक प्रचलित रही है। गुरुनानक के पदों में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का रूप स्पष्टतया दिखायी देता है। नानक देव के पश्चात् भी पंजाब के संत कवियों ने दीर्घ अवधि तक ब्रजभाषा को ही अपनाया है। संभवतः पंजाब में आधुनिक हिंदी कविता बहुत संपन्न न हो सकी। आधुनिक कवियों में कुमार विकल और बलदेवबंसी के नाम चर्चित हैं।

गद्य साहित्य के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त लेखकों-सुदर्शन, यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती से हिंदी जगत परिचित है।

अन्य हिंदीतर प्रदेशों की तरह ही असम में भी हिंदी भाषा एवं साहित्य का अच्छा विकास हुआ है। मध्यकालीन भक्त एवं संत कवियों ने ब्रजावली में अपरिमित रचनायें की हैं। शंकरदेव वैष्णव-भक्ति आंदोलन के प्रवर्तक थे। आपकी दो रचनायें—

---

1. 'ब्रजबुलि' बंगला का कृत्रिम मिश्रित रूप है। इस भाषा का जन्म विद्यापति की भाषा के अनुकरण पर बंगाल में ही हुआ। मैथिली इस 'ब्रजबुलि' की आधार भूत भाषा है; साथ ही बंगला तथा ब्रजभाषा का मिश्रित स्वरूप है। इसका लेखन काल पंद्रहवीं शती से आधुनिक काल तक है। 'ब्रजबुलि' के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में गोविन्द दास कविराज का नाम लिया जा सकता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी भानुसिंह के नाम से 'ब्रजबुलि' में कविताएँ लिखी हैं।

बरगीत एवं फुटकर पद्य प्रमुख हैं। कुछ प्रमुख कवियों में श्री बापचन्द्र महंत (देश की पुकार), श्री अंबिका प्रसाद पंकज (लाजवंती), श्री प्रफुल्ल कुमार शर्मा (तामस दीप), उषा देवी जैन आदि कवियों के काव्य संकलन उल्लेखनीय हैं। इतना ही नहीं असमीया बिहुगीत की हिंदी अभिव्यक्ति का सफल प्रयास भी इन कवियों ने किया है।

मणिपुरी भाषा में भी हिंदी सहित्य का सृजन विभिन्न रूपों में हुआ है। हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ वहाँ मौलिक काव्य लेखन का कार्य भी विकास पर है। मणिपुरी भाषी हिंदी कवियों में आचार्य राधा गोविंद थोंङाम, सिद्धनाथ प्रसाद 'पारंग', श्री लनचेनबा मीतै, डॉ० इबोहल सिंह काङजम निरंतर हिंदी कविताएँ लिख रहे हैं। 'मणिपुर हिंदी परिषद पत्रिका' कविता प्रकाशन का सबसे बड़ा मंच है। 26 जनवरी को हिंदीतर हिंदी कवि सम्मेलन ऐसा मंच है जहाँ कवियों को कविता प्रस्तुत करने का मौका मिलता है।

अहिंदी भाषी जम्मू-कश्मीर प्रदेश जो भारत का मणिमुकुट है—वर्षों से हिंदी-कविता की सेवा करता आ रहा है। कश्मीरी भाषी हिंदी कवियों में मधुर शर्मा (वे मुखर क्षण नामक कविता), मनसाराम चंचल का कविता संग्रह 'अश्रुमाल', सुषमा रतनलाल शांत (खोटी किरणें-कविता संग्रह), रमेश मेहता (खुले कमरे बन्द द्वार) आदि उल्लेखनीय हैं।

समग्ररूपेण हिंदीतर प्रदेशों के साहित्यकारों का हिंदी-भाषा एवं साहित्य (विशेषत: कविता के संदर्भ) के विकास को देखकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि इन कवियों का हिंदी की प्रगति, प्रचार-प्रसार एवं मौलिक कार्य-लेखन में प्रारंभ से ही सहयोग रहा है, जिसकी विवेचना उपर्युक्त पंक्तियों में की जा चुकी है। यद्यपि सृजनात्मक साहित्य-लेखन उनकी अपनी मातृभाषा (प्रादेशिक भाषा) में ही अधिक हुआ है लेकिन फिर भी हिंदी के प्रति उनकी सेवा को नकारा नहीं जा सकता।

इसके अतिरिक्त अनुवाद एवं शोध कार्य के रूप में हिंदीतर प्रदेशों के साहित्यकार का जिक्र करना भी अनिवार्य हो जाता है। वास्तव में अनुवाद ऐसी विधा है जिस पर लेखनी चलाने के लिए (हिंदी—अन्य भाषा) दोनों भाषाओं पर समान अधिकार अपेक्षित है। सौभाग्य ही कहना चाहिए कि इन विभिन्न प्रदेशों में ऐसे बहुत से विद्वान हैं जो दोनों भाषाओं का गहरा ज्ञान रखते हैं और वे अनुवाद के द्वारा काव्य को समृद्ध करते आ रहे हैं। अनुवाद का यह कार्य एक तरफा नहीं है।

अखिल भारतीय स्तर पर भाषावार अनुवाद-कार्य का अध्ययन करें तो दक्षिण भारत की चारों भाषाएँ—तमिल, तेलुगु, मलयालम एवं कन्नड़ के लेखकों

का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। सुप्रसिद्ध तमिल अनुवादकों की सूची में श्री आर. वीलिनाथन, बी. एम. कृष्णस्वामी, श्री. र. शौरिराजनु, श्री एम. सुब्रह्मण्यम, श्री वेंकटकृष्ण अय्यंगार, एस. लक्ष्मी सुब्रह्मण्यम आदि विद्वानों एवं विदूषियों ने तमिल से हिंदी में और हिंदी से तमिल में कविताओं का अनुवाद किया है। तमिलनाडु के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि श्री सुब्रह्मण्यम भारती की राष्ट्रीय कविताओं को श्री सुन्दरम एवं श्री विश्ववासी ने मिलकर हिंदी में अनूदित किया। स्वर्गीय जमदग्नि ने तमिल में 'कामायनी' का अनुवाद किया है। तेलुगु में 'संत त्यागराजु' (विश्व तेलुगु सम्मेलन 1975 के अवसर पर प्रकाशित) में डॉ० ऐ० पांडुरंगराव ने भक्त प्रवर त्यागराजु का समग्र परिचय प्रस्तुत करने के साथ त्यागराजु के कुछ चुने हुए पदों का हिंदी काव्यमय अनुवाद भी प्रस्तुत किया है।

हिंदी के अनुवाद साहित्य को समृद्ध बनाने में कर्नाटक के लेखकों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। 'भारतीय कविता माला' में साहित्य अकादेमी के लिए कन्नड़ के प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का अनुवाद सर्वश्री प्रो नागप्पा, डॉ. हिरण्मय, बी. आर. नारायण आदि ने किया है। डॉ. सरोजिनी महिषी ने कुवेंपुणी के महाकाव्य रामायणदर्शनम् के एक खंड का हिंदी अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त 'भाषा', समकालीन भारतीय साहित्य आदि पत्रिकाओं के माध्यम से कन्नड़ कविताओं का अनुवाद बराबर प्रकाशित होता रहा है। हिंदी में अनूदित मलयालम कविताओं के अनुवाद अब तक धर्मयुग, आजकल, राष्ट्रवाणी आदि उत्तर और दक्षिण की हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। मलयालम के प्रसिद्ध आधुनिक कवियों में से सर्वश्री एन. वी. कृष्णवारियर, एन. एन. कक्काड आट्टूर रविवर्मा की कविताओं का अनुवाद संकलन में प्राप्त है। इतना ही नहीं जहाँ एक ओर मलयालम साहित्य को हिंदी पाठकों तक पहुँचाने में विद्वान सफल हुए हैं वहीं दूसरी ओर 'कामायनी', 'चिदम्बरा', 'कबीर के गीत' आदि मलयालम के सहृदय काव्यास्वादकों को अपनी भाषा में मिले हैं। इस प्रकार अनुवाद का यह कार्य एक तरफा नहीं है।

राष्ट्र के पूर्वांचल असम, बंगाल और उड़ीसा में भी अनुवाद कार्य पर्याप्त मात्रा में हुआ है। असमीया नामघोषा (माधव देव कृत) का हिंदी पद्यानुवाद श्री सुरेन्द्रनाथ साहु ने किया। गणेश चन्द्र गर्ग के 'पापरि' नामक काव्य का अनुवाद काफी लोकप्रिय हुआ। इसके बाद राष्ट्र भाषा परिषद गुवाहाटी से 'असमीया कविता' नाम से 35 असमीया कविताओं का हिंदी काव्यानुवाद प्रकाशित हुआ। कुछ प्रमुख अनुवादकों में सर्वश्री भूपेन्द्र राय चौधरी, कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', राजेन्द्र वरदलै आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार के अनगिनत उदाहरण हमें विभिन्न भारतीय भाषाओं में मिलते हैं जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मौलिक

लेखन के समानान्तर अनुवाद का कार्य भी शीर्ष पर था। इसी प्रकार उड़िया में डॉ. बनमाली दास ने धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' एवं गोलोक विहारी धल जो मूलत: भाषाशास्त्री थे, ने प्रेमचन्द के उपन्यासों का उड़िया में अनुवाद किया है। बंगाल भी इससे अछूता न रहा। हिंदी में संभवत: बंगाल से ही सर्वाधिक ग्रंथों का अनुवाद हुआ।

हिंदीतर प्रदेश भी दो प्रकार के हैं—कुछ ऐसे प्रदेश हैं जहाँ हिंदी से निकटता का संबंध रखने वाली भाषाएँ—आर्य परिवार की ही भाषाएँ व्यवहृत होती हैं—अत: मराठी, गुजराती एवं पंजाबी भाषी कवियों का हिंदी साहित्य के प्रति योगदान की चर्चा करना अनिवार्य नहीं। हिंदी साहित्य के इतिहास का 'भक्तिकाल' इन संतों की हिंदी सेवा का जीता जागता उदाहरण है। अत: मौलिक साहित्य लेखन के साथ-साथ अनुवाद का कार्य भी इन प्रदेशों की प्रमुख देन है।

उपर्युक्त मौलिक एवं अनूदित हिंदी साहित्य के अलावा तुलनात्मक अध्ययन का कार्य भी हिंदीतर प्रदेशों में भरपूर हुआ है। इसके अतिरिक्त शोध प्रबंध एवं लघु-शोध प्रबंध[1] भी हिंदी में प्रकाशित हुए हैं। इन शोध प्रबंधों का विवरण यदि देखें तो उससे पता चलता है कि हिंदीतर प्रदेशों के विद्वानों द्वारा स्वतंत्र विषयों की अपेक्षा तुलनात्मक विषयों पर शोध-कार्य अधिक हुआ है। हिंदी भाषा और साहित्य के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक संदर्भ में इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन की उपादेयता स्वयं सिद्ध है।

अब तक के विवरण से स्पष्ट है कि हिंदीतर प्रदेशों के हिंदी सेवियों ने हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में जहाँ एक ओर हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं सृजनात्मक लेखन कार्य किया है वहीं दूसरी ओर अनुवाद के क्षेत्र में भी अपनी सेवा से हिंदी भाषा एवं साहित्य को वंचित नहीं रखा वरन् उच्चस्तरीय शोध प्रबंध एवं लघुशोध प्रबंध के कार्य को भी सुसंपन्न किया है। जिस प्रकार हिंदी प्रदेशों के कवियों का हिंदी काव्य रचना में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उसी प्रकार विदेशी साहित्यकारों एवं 'मनीषियों' की सेवा से भी हिंदी कविता वंचित नहीं रही। आज विद्वान विभिन्न विदेशी भाषाओं से हिंदी में और हिंदी से विदेशी भाषाओं में अनुवाद करके हिंदी काव्य संपदा में वृद्धि कर रहे हैं।

उपर्युक्त विवेचना में हिंदी कविता के विकास की समग्र विवेचना के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपने ऐतिहासिक विकासक्रम की परिधि में प्रत्येक युग की काव्यधारा अपने पूर्ववर्ती युग की काव्यधारा का अखंड स्रोत रही है। भारतीय

---

1. रजत जयंती वर्ष पर प्रकाशित लघुशोध प्रबध सार —कें. हिं. सं. आगरा

साहित्य में युग-चेतना का प्रादुर्भाव करने वाली 'कविता' ही रही है। इस प्रकार हिंदी-साहित्य एक प्रकार से समस्त भारतीय संस्कृति के मूलभूत सत्यों को अभिव्यक्ति देता रहा है। इस रूप में उसकी अनुस्यूत परम्परा रही है, साथ ही परिवर्तित होने वाले विभिन्न युगों का यदि समग्र जीवन प्रतिबिम्बित न हुआ हो तो भी युग-चेतना का स्वर उसमें सुनाई देता है।

प्रस्तुत संकलन के बारे में—

प्रस्तुत संकलन हिंदीतर भाषा प्रदेशों के छात्रों के लिए तैयार किया गया है। इसमें प्राचीन युग के उन्हीं प्रतिनिधि कवियों एवं उनकी रचनाओं को लिया गया है जो सम्पूर्ण युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन मध्ययुगीन सन्तों और भक्त कवियों की वाणी को इसीलिए स्थान मिल सका है कि भारत की सामासिक संस्कृति की झलक और भावात्मक समन्वय का कोई अन्य विकल्प वर्तमान हिंदी साहित्य में नहीं है। हिंदी प्रारम्भ से ही आंतर भाषा के रूप में विकसित हुई है। महाराष्ट्र के नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि सन्तों की वाणी, गुजरात की वैष्णव भक्ति परम्परा के महाप्रभु वल्लभाचार्य, पंजाब के सिख गुरुओं की हिंदी पदावली दूसरी ओर कबीर सूर, तुलसी, मीरा और रसखान की रचनायें हिंदी की इस सार्वदेशिक व्याप्ति का प्रमाण हैं। अहिंदी प्रान्तों में आज भी इन भक्तिकालीन कवियों के प्रति अनुराग है। आज भी कबीर, सूर और तुलसी की रचनायें पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं तथा लोग प्रेम से मीरा, सूर और रसखान के पद गाते हैं। इस दृष्टि से कालक्रम से, प्रमुख कवियों की महत्वपूर्ण रचनायें संकलित करते हुए रीतिकाल के कुछ प्रतिनिधि कवियों देव, बिहारी, घनानन्द की रचनाओं का समावेश भी किया गया है। महाकवि देव आचार्य और कवि दोनों ही रूपों में सामने आते हैं। ब्रजभाषा साहित्य में देव अपनी सर्वोत्कृष्ट भाषा के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। महाकवि बिहारी काव्यशास्त्रीय परम्परा के पृष्टपोषक होते हुए भी अपनी कविता में पर्याप्त मौलिक हैं। रीतिमुक्त कवि की हैसियत से घनानन्द को लिया गया है। खड़ी-बोली से पूर्व हिंदी की इन बोलियों (ब्रजभाषा, अवधी) का मानक रूप एवं व्यापाक साहित्य उपलब्ध होता है। इस दृष्टि से भी इन प्राचीन कवियों का संकलन में महत्वपूर्ण स्थान है।

इस समय हिंदी का संस्कार अखिल भारतीय स्तर पर हो रहा है। हिंदी की राष्ट्रीयता एवं उपयोगिता को देखते हुए आज उसका मूल्यांकन अखिल भारतीय स्तर पर होना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में डॉ. मोतीलाल जोतवाणी का यह कथन कि "अभी तक हिंदी साहित्य का जो इतिहास लिखा गया है, वह हिंदी प्रान्तों के साहित्य का इतिहास है। हमें अहिंदी मातृभाषी प्रान्तों में रचित हिंदी साहित्य को

भी इस इतिहास में स्थान देना चहिए।"[1] इसीलिए भूमिका में अहिंदी मातृभाषी लोगों यथा—तमिल, तेलुगु, मलयालम कन्नड़, गुजराती, मराठी, पंजाबी एवं उड़िया भाषा-भाषियों का हिंदी साहित्य (विशेषतः कविता के सन्दर्भ में) लेखन में क्या योग-दान रहा है, इस पर संक्षिप्त चर्चा की गई है। वहाँ दूसरी ओर हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में भारतीय साहित्य के अध्ययन पर भी प्रकाश डाला गया है अर्थात् हिंदी साहित्य (विशेषतः कविता के सन्दर्भ) में पाई जाने वाली प्रवृत्तियों का अन्य भारतीय भाषाओं (तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, असमिया, बंगला आदि) में कहाँ तक पाई जाती है उनका उल्लेख किया गया है। साथ ही अनुवाद एवं शोध कार्य के रूप में हिंदी प्रदेशों के साहित्यकारों का क्या योगदान रहा है, उस पर भी संक्षेप में विचार किया गया है। किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन केवल एक भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अपूर्ण ही माना जाएगा। उदाहरण के लिए आदिकाल में चारण काव्य लेखन की प्रवृत्ति, नाथ साहित्य की परम्परा, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, अन्य प्रेमाख्यान काव्य परम्परा आदि भारतीय भाषाओं—गुजराती, उड़िया, असमिया, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में सहज ही मिल जाती हैं। यद्यपि यह कार्य अपने में एक स्वतन्त्र तथा विस्तृत कार्य है। क्योंकि प्रत्येक प्रादेशिक भाषाओं का ज्ञान किसी एक व्यक्ति को हो, यह कठिन है। यहाँ तो मात्र छात्रों को अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से परिचित कराने के लिए उसका उल्लेख मात्र किया गया है। हिंदीतर प्रान्तों में हिंदी के विकास के लिए जो कुछ किया, वह उसी हिंदी का अंग है जिस हिंदी की बात हम करते हैं। इस रूप में हिंदी के अन्तर्प्रान्तीय रूप की चर्चा यहाँ दोहरा मूल्य रखती है, साथ ही हिंदी साहित्य के प्रति छात्रों की रुचि को बनाए रखने के लिए भी इसका उल्लेख महत्वपूर्ण है।

आधुनिक कवियों के चयन में हरिऔध एवं गुप्तजी को विशेष रूप से इसीलिए लिया गया है क्योंकि भारतेन्दु युग के पश्चात् साहित्य के बदलते हुए प्रतिमानों (ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की प्रतिष्ठा एवं विषयगत वैविध्यता) के सन्दर्भ में ये दो कवि ही प्रतिनिधि रूप में सामने आते हैं। यद्यपि कुछ अन्य कवियों को भी युगीन सन्दर्भ में लिया जा सकता था (जैसे—रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, रूपनारायण पाण्डेय) लेकिन विषय की सीमा को देखते हुए सबका समावेश करना कठिन है।

संकलन में इस बात का पूरा प्रयास किया गया है कि युगानुसार कविता का विकासक्रम बना रहे जिससे छात्र आसानी से काव्यगत प्रवृत्तियों को समझ सकें।

---

1. विश्व के मानचित्र पर हिंदी (तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर प्रकाशित)
—डॉ. मोतीलाल जोतवाणी पृष्ठ 127

इसके लिए युगानुसार कविता के बदलते हुए रूपों के अनुरूप ही कवियों का चयन किया है। छायावादी कवि प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की रचनाओं का संकलन इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है, क्योंकि द्विवेदी-युग के पश्चात् भाव एवं भाषा के क्षेत्र में आद्योपान्त जो प्रौढ़ता एवं नव्यता आई है, उसका दिग्दर्शन इन्हीं कवियों द्वारा हो सका है। अतः इन चारों कवियों के अभाव में संकलन अधूरा ही रहता।

छायावाद के पश्चात् छायावाद से भिन्न जिस स्वच्छन्द काव्य प्रवृत्ति को लेकर नवीनजी अपनी 'साकी' द्वारा आए अथवा बच्चन की 'मधुशाला' की प्रणय-मूलक वैयक्तिक कविताओं को भी संकलन में स्थान दिया गया है। लेकिन इस तरह के संदर्भों में हर संभव संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया गया है। काव्यात्मक आदर्श की रक्षा के लिए न तो यथार्थ का गला घोंटा गया है और न ही आदर्श की शुष्क नीरसता को बनाए रखने के लिए कविता की मांसलता को नकारा गया है।

आधुनिक कविता के बदलते हुए संदर्भों को देखकर, उसमें विषयों की इतनी विविधता और जटिलता है कि सब बातों को संक्षेप में प्रस्तुत संकलन में समेटना असम्भव है। इन विविध आयामों में कविता ने अनेक मोड़ लिए हैं। इसी के अनु-रूप संकलन में कवियों एवं उनकी रचनाओं को लिया गया है। 'प्रगतिशील' कवि की हैसियत से नागार्जुन, शमशेर, मुक्तिबोध और केदारनाथ अग्रवाल को लिया है जिन्होंने जन-जीवन के यथार्थ को ग्रहण करने का प्रारंभ से ही प्रयत्न किया है। वैसे शमशेर और मुक्तिबोध ने प्रयोगवादी रचनाएँ भी की हैं किन्तु मुख्य रूप से प्रगतिवादी रचना दृष्टि ही उनकी विशेषता रही है। लेकिन कविता के प्रति कवियों की यह वफादारी अधिक समय तक न चल सकी जिसके विरोध से 'प्रयोगवाद' का नारा बुलन्द हुआ तथा जिसका पर्यावसन 'नई कविता' में हुआ। इस धारा के कवियों में सर्वश्री अज्ञेय भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती, रघुवीरसहाय, और गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं का संकलन किया गया है। आज के संदर्भ में कविता यदि जीवन की व्याख्या है तो उसकी अभिव्यक्ति से छात्रों को परिचित कराने के लिए उपर्युक्त कवि उल्लेख-नीय हैं। आज के विघटनपूर्ण समाज में व्यक्ति किस प्रकार संघर्षों से प्रतिक्षण जूझता हुआ कुंठा, संत्रास और निराशा के मध्य अवसाद बनकर रह गया है—इसकी पहचान इन्हीं कवियों ने की है। इसी उद्देश्य से इन कवियों को संकलन में समाहित किया गया है।

इस प्रकार बीसवीं शती के हिंदी काव्य में प्रत्येक मोड़ पर कवियों ने प्रारम्भ से ही अपने वैयक्तिक अस्तित्व को रूपायित करने का प्रयास किया है जिसके फलस्वरूप 'छायावाद' (सन् 1920 से 1936 तक), 'प्रगतिवाद' सन् 936 से 1943 तक), 'प्रयोगवाद' (1943 से 1847 तक) और 'नई कविता' (1951 से 1959 तक) का

जन्म हुआ। साठोत्तरी (सन् 1960 के बाद) पीढ़ी के कवि भी अपना अस्तित्व बनाए रखने में पीछे नहीं हटे। इन कवियों में हमने धूमिल और रघुवीरसहाय की रचनाओं को लिया है। इन दोनों ही कवियों में समाज की विसंगतियों का गहरा अहसास है। धूमिल की 'मोचीराम' कविता इसका जीता-जागता उदाहरण है। इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण कवि (कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी, अशोक वाजपेयी, श्रीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही) अवश्य ही छूट गए हैं जिनका समावेश प्रस्तुत संकलन के विस्तार भय के कारण छोड़ा गया है।

कविता के विकास क्रम में न जाने कितनी अन्य धारायें प्रवाहित होती रही हैं, आगे भी नए-नए प्रयोग होते रहेंगे। काव्यगत प्रवृत्तियों की दृष्टि से उन सबसे पाठकों को परिचित कराना आवश्यक है। इसी हेतु भूमिका में इस पर संक्षिप्त चर्चा की गई है। हास्यरस जैसी व्यंग्यात्मक रचनाएँ, क्षणिकाएँ, हँसिकाएँ और गजलें आदि नवीन काव्यधाराएँ आज भी जनमानस को उद्वेलित कर रही हैं। हमारा प्रयास अध्येताओं (छात्रों) को इस रस गंगा का पावन स्पर्श कराना मात्र रहा है, इसमें अवगाहन करने का समय अध्ययनशील छात्रों को मिले, यही शुभकामना है।

प्राचीन साहित्य के संदर्भ में एक समस्या प्रामाणिक पाठ की है। कबीर, तुलसी आदि की रचनाओं के अनेक पाठान्तर प्राप्त होते हैं। काव्य संकलन में यह ध्यान रखा गया है कि अधिकतर विद्वानों द्वारा प्रामाणिक माना गया 'पाठ' ही रखा जाए।

परिशिष्ट के अन्त में कविता के शब्दार्थ और टिप्पणी देते समय हर संभव यही प्रयास किया है कि अहिंदी भाषी छात्र सरलता से उन कविताओं के अर्थ को आत्मसात् कर सकें, इसके लिए कविता के मध्य आने वाले विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित अन्तर्कथायें, अभिधा से इतर लक्षणा एवं व्यंजना में निहित कविता के भावों की विशेष टिप्पणी देते हुए उसकी सरल व्याख्या की गई है।

प्रथम संस्करण की भूमिका के बारे में यह अनुभव किया जा रहा था कि वह हिंदी काव्य का एकांगी दृष्टिकोण मात्र ही दे पा रही थी। अतः नये संस्करण की भूमिका में अन्य भारतीय भाषाओं की काव्य प्रवृत्तियों का समावेश करते हुए एक ऐसी तुलनात्मक दृष्टि देने का प्रयास किया गया जो छात्रों को अपनी भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में हिंदी काव्य की प्रवृत्तियों को समझने में सहायक हो। संस्थान के तत्कालीन निदेशक, प्रो. बाल गोविन्द मिश्र जी ने सतत मार्ग-दर्शन किया जिसके लिए हृदय से उनकी आभारी हूँ।

द्वितीय संस्करण की भूमिका लिखते समय यह अनुभव किया जा रहा था कि जिस प्रकार हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ सृजनात्मक लेखन

कार्य हुआ है, उसी के समानान्तर अनुवाद एवं शोधकार्य निरन्तर विकसित हो रहा है। अनुवाद कार्य द्वारा दो भिन्न संस्कृतियों के आदान-प्रदान का कार्य एवं राष्ट्रीय एकता का जो समन्वित रूप हिंदी साहित्य (विशेषत: कविता के संदर्भ) में आया उसे भी भूमिका में जोड़ा जाए। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्रस्तुत संस्करण की भूमिका में काव्य के संदर्भ में अनुवाद-कार्य की विशेष रूप से चर्चा की गई है।

इस तृतीय संशोधित संस्करण के प्रकाशन के लिए संस्थान के निदेशक प्रो. महावीर शरन जैन के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ जिनके प्रयासों से प्रस्तुत संस्करण का संशोधित रूप आप तक पहुँच रहा है।

इस पुन: संशोधित संस्करण के संपादन के लिए प्रो. रामवीर सिंह को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने कार्य के संपादन में सहयोग दिया। काव्य संग्रह के परिशिष्ट भाग का संशोधन डॉ. श्रीमती हेमा उप्रेती द्वारा किया गया है। मैं उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

इसके अतिरिक्त इस कार्य में जिन लोगों ने मुझे सहयोग दिया उनमें संस्थान के पत्राचार विभाग के भूतपूर्व प्रभारी डॉ. न. वी. राजगोपालन, प्रशिक्षण एकक विभाग की प्रभारी डॉ. सरोजिनी शर्मा एवं भाषा प्रौद्योगिकी विभाग की डॉ. वशिनी शर्मा के प्रति मैं आभारी हूँ। संस्थान के प्रकाशन विभाग के प्रबन्धक डॉ. देवेन्द्र शर्मा को धन्यवाद देती हूँ जिनका सहयोग निरन्तर मिलता रहा।

—मीरा सरीन

कबीर

(पद)

(1)

साधो, शब्द-साधना कीजै ।
जे ही शब्दते प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै ॥
शब्द गुरु शब्द सुन सिख भये, शब्द सो बिरला बूझै ॥
सोई शिष्य सोई गुरु महातम, जेहि अन्तर, गति सूझै ॥
शब्दै वेद पुरान कहत हैं, शब्दै सब ठहरावै ॥
शब्दै सुर-मुनि-सन्त कहत हैं, शब्द भेद नहि पावै ॥
शब्दै सुन सुन भेष धरत हैं, शब्दै कहै अनुरागी ।
षट-दर्शन सब शब्द कहत हैं, शब्द कहै बैरागी ॥
शब्दै काया जग उतपानी, शब्दै केरि पसारा ।
कहैं कबीर जहँ शब्द होत है, भवन भेद है न्यारा ॥

(2)

रहना नहिं देस बिराना है ।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है ।
यह संसार कांटकी बाड़ी, उलझ-पुलझ मरि जाना है ॥
यह संसार झाँड़ और झांखर, आग लगे बरि जाना है ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है ॥

(3)

माया महा ठगिनि हम जांनीं ।
तिरगुन फांसि लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी ।
केसव के कंवला होइ बैठी, सिव के भवन भवांनीं ।

पंडा के मूरति होइ बैठी, तीरथ हू मैं[1] पांनी ।।
जोगी कै जोगिन होइ बैठी, राजा कै घरि[2] रांनीं ।
काहू कै जोगिनि होइ बैठी, काहू कै कौड़ी कांनीं ।।
भगतां कै भगतिनि होइ बैठी, तुरकां[3] कै तुरकांनीं ।
दास[4] कबीर साहब का बंदा, जाकै हाथ बिकांनीं ।।

(4)

साधो, देखा जग बौराना ।
साँची कहौ तौ मारन धावै झूंठे जग पतियाना ।
हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना ।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं मरम कोइ नहिं जाना ।
बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी प्रात करैं असनाना ।
आतम-छोड़ि पषानै पूजैं तिनका थोथा ज्ञाना ।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन में बहुत गुमाना ।
पीपर-पाथर पूजन लागे तीरथ-बर्न भुलाना ।
माला पहिरे टोपी पहिरे छाप-तिलक अनुमाना ।
साखी शब्दै गावत भूले आतम खबर न जाना ।
घर घर मंत्र जो देन फिरत हैं माया के अभिमाना ।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े अन्तकाल पछिताना ।
बहुतक देखे पीर-औलिया पढ़ै किताब-कुराना ।
करै मुरीद कबर बतलावें उनहूँ खुदा न जाना ।
हिन्दुकी दया मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी ।
वह करै जिबह वाँ झटका मारे आग दोऊ घर लागी ।
या विधि हंसत चलत हैं हमको आप कहावैं स्याना ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना ।।

(5)

तोको पीव मिलैंगे घूंघट के पट खोल रे ।
घट घट में वही साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे ।
धन जोबन को गरब न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे ।

3/1. वि—महँ । 2. वि.—घर । 3. वि.—ब्रह्मा के ब्रह्मानी । 4. वि.—कहँहि कबीर सुनहु हो सन्तो, ई सभ अकथ कहानी :

सुन्न महलमें दियना बार ले, आसासों मत डोल रे।
जोग जुगत सो रंग महलमें, पिय पाई[1] अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

(6)

मन फूला फूला फिरै जगत में कैसा नाता रे।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा।।

पेट पकरि के माता रोवै बाँह पकरि के भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवै हँस अकेला जाई।।

जब लगि माता जीवै रोवै बहिन रोवै दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा।।

चार गजी चरगजी मँगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।
चारों कौने आग लगाया फूंक दियो जस होरी।।

हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आया पासा।।

घर की तिरिया ढूंढन लागी ढूंढ़ि फिरी चहुँ देसा।
कहै कबीर सुनो भई साधो छोड़ो जग की आसा।।

(7)

मुखड़ा क्या देखै दरपन में, तेरे दया धरम नहिं मन में।
आम की डार कोइलिया बोलै सुवना बोलै बन में।।
घरबारी तो घर में राजी फक्कड़ राजी बन में।

ऐंठी धोती पाग लपेटी तेल चुआ जुलफन में।।
गली गली की सखी रिझाई दाग लगाया तन में।

पाथर की इक नाव बनाई उतरा चाहै छन मैं।
कहत कबीर सुनो भाई साधो वे क्या चढ़िहैं रन में।।

5/1: पायो।

(8)

पंडित बाद बदै[1] सो झूठा ।
राम कहें[2] दुनिया[3] गति पावै खांड़ कहें मुख मीठा ॥

पावक कहें[4] पांव जे दाझै जल कहें[5] त्रिखा बुझाई ।
भोजन कहें भूख जे भाजै तो सब[6] कोई तिरि जाई ॥

नर कै संगि[7] सुवा हरि बोलै हरि परताप न जानैं ।
जौ कबहूँ उड़ि जाइ जंगल मैं बहुरि[8] सुरति नहिं आनैं ॥

बिनु[9] देखें बिनु अरस परस बिनु नाम लिए का होई ।
धन के कहें धनिक जौ होई तौ निरधन रहै न कोई ॥

साँची प्रीति बिखै माया सौं हरि भगतन सौं हाँसी[10] ।
कहै कबीर प्रेम[11] नहिं उपजै तो बाँधे जमपुर जासी ॥

(साखी)

ईश्वर का अस्तित्व

ज्योंतिल माँही तेल है, ज्यों चकमक में आगि ।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सके तो जागि ॥1॥

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढ़ै बन माहिं ।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं ॥2॥

जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप-कुरूप ।
पुहुप बास तें पातरा, ऐसा तत्व अनूप ॥3॥

साधु स्वभाव

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारनें, साधुन धरा सरीर ॥4॥

8/1. ना. प्र.—बदंते । 2. ना. प्र.—कह्यां । 3. वि.—जो जगत । 4. ना. प्र.—कह्यां । 5. ना. प्र.—कहि । 6. वि.—दुनिया । 7. ना. प्र.—साथि । 8. वि.—तो हरि । 9. ना. प्र.—की प्रति में ये दो पंक्तियां नहीं हैं । 10. वि.—की फांसी । 11. वि.—एक राम भजे बिनु ।

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय ।।5।।

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुरै सौ बार।
दुर्जन कुंभ कुम्हार के, एकै धक्का दरार ।।6।।

जीवनोपदेश

रूखा सूखा खाइ कै, ठण्डा पानी पीव।
देख पराई चूपड़ी, मत ललचावै जीव ।।7।।

जो तोकूं काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल।
तोहि फूल के फूल हैं, वाको है तिरसूल ।।8।।

करता था सो क्या किया, अब करि क्यों पछताय।
बोवै पेड़ बबूल को, आम कहाँ ते खाय ।।9।।

पाखण्ड विखण्डन

मूँड़ मुड़ाये हरि मिलें, सब कोई लेय मुँड़ाय।
बार-बार के मूँड़ते, भेड़ न बैकुँठ जाय ।।10।।

पाहन पूजें हरि मिलैं, तो मैं पूजूँ पहार।
तातें यह चाकी भली, पीस खाय संसार ।।11।।

काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँगदे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ।।12।।

माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ।।13।।

सूक्तियाँ

दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुख काहे को होय ।।14।।

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ।।15।।

गोधन, गजधन, बाजि धन, और रतन धन खानि।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समानि ।।16।।

बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥17॥

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, तौ विष से अमृत होय ॥18॥

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥19॥

दोष पराये देख करि, चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अन्त ॥20॥

माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रह्यो लिपटाय।
हाथ मलै और सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥21॥

['कबीर ग्रन्थावली से']

मलिक मुहम्मद जायसी

नागमती वियोग-वर्णन

नागमती चितउर पँथ हेरा। पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा।
नागरि नारि काहु बस परा। तेई बिमोहि मो सौं चितु हरा।
सुवा काल होइ लै गा पीऊ। पिउ नहिं लेत लेत बरु जीऊ।
भएउ नरायन बादन करा। राज करत बलि राजा छरा।
करन बान लीन्हेउ कै छंदू। भारथ भएउ झिलमिल आनंदू।
मानत भोग गोपीचँद भोगी। लै उपसवा जलंधर जोगी।
लेइ कान्हहि भा अकरुर अलोपी। कठिन बिछोउ जिअहिं किमि गोपी।

सारस जोरी किमि हरी मारि गएउ किन खग्गि।
झुरि झुरि पाँजरि धनि भई विरह कै लागी अग्गि ॥1॥

पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा तस बोलै पिउ पीऊ।
अधिक काम दगधै सो रामा। हरि जिउ लैसो गएउ पिय नामा।
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीजि भीजि तन चोली।
सखि हिय हेरि हार मैन मारी। हहरि परान तजै अब नारी।
खिन एक आव पेट महँ स्वाँसा। खिनहि जाइ सब होइ निरासा।
पौनु डोलावहि सींचहिं चोला। पहरक समुझि नारि मुख बोला।
प्रान पयान होत केइँ राखा। को मिलाव चात्रिक कै भाखा।

आह जो मारी बिरह की आगि उठी तेहि हाँक।
हंस जो रहा सरीर महँ पाँख जरे तन थाक ॥2॥

चढ़ा असाढ़ गँगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।
धूम श्याम धौरे घन धाए। सेत धुजा बगु पाँति देखाए।
खरग बीच चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरिसै घन घोरा।
अद्रा लाग बीज भुइँ लेई। मोहि पिय बिनु को आदर देई।
ओनै घटा आई चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेझ घट रहै न जीऊ।
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाँह मँदिर को छावा।

जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब ।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्ब ।।3।।

सावन बरिस मेह अतिवानी । भरनि भरइ हौं विरह झुरानी ।
लागु पुनर्बसु पीऊ न देखा । भै बाउरि कहँ कंत सरेखा ।
रकत क आँसु परे भुइँ टूटी । रेंगि चली जनु बीर बहूटी ।
सखिन्ह रचा पिउ सँग हिंडोला । हरियर भुइँ कुसुंभि तन चोला ।
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा । बिरह झुलावै देइ झँकोरा ।
बाट असूझ अथाह गँभीरा । जिउ बाउर भा भवै भँभीरा ।
जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी । मोर नाव खेवक बिनु थाकी ।

परबत समुँद अगम बिच बन बेहड़ घन ढंख ।
किमि करि भेटौं कंत तोहि ना मोहि पाँव न पंख ।।4।।

भर भादौं दूभर अति भारी । कैसें भरौं रैनि अँधियारी ।
मँदिल सून पिय अनतै बसा । सेज नाग भै घै घै डसा ।
रहौं अकेलि गहें एक पाटी । नैन पसारि मरौं हिय फाटी ।
चमकि बीच घन गरजि तरासा । बिरह काल होइ जीउ गरासा ।
बरिसै मघा झँकोरि झँकोरी । मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी ।
पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी । आक जवास भई हौं झूरी ।
धनि सूखी भर भादौं माहाँ । अबहूँ आइ न सींचति नाहाँ ।

जल थल भरे अपूरि सब गगन धरति मिलि एक ।
धनि जोबन औगाह महँ दे बूड़त पिय टेक ।।5।।

लाग कुआर नीर जग घटा । अबहुँ आउ पिउ परभुमि लटा ।
तोहि देखे पिउ पलुहै काया । उतरा चित्त फेरि करु माया ।
उए अगस्ति हस्ति घन गाजा । तुरै पलानि चढ़े रन राजा ।
चित्रा मित मीन घर आया । कोकिल पीउ पुकारत पावा ।
स्वाति बुंद चातिक मुख परे । सीप समुद्र मोति लै झरे ।
सरवर सँवरि हंस चलि आए । सान्त कुरूरहि खँजन देखाए ।
गए अवगास कास बन फूलें । अंत न फिरे विदेसहि भूलें ।

बिरह हस्ति तन सालै खाइ करै तन पूर ।
बेगि आह पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर ।।6।।

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहैं जारी।
चौदह करा कीन्ह परगासू। जानहुँ जरें सब धरति अकासू।
तन मन सेज करै अगिडाहू। सब कहँ चाँद मोहि होइ राहू।
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौं घर नाहिन कंत पियारा।
अबहूँ निठुर आव ऐहिं बारा। परब देवारी होइ संसारा।
सखि झूमक गावहिं अँग मोरी। हौं झूरौं बिछुरी जेहि जोरी।
जेहि घर पिउ सो मुनिवरा पूजा। मो कहँ बिरह सवति दुख दूजा।

सखि मानहिं तेवहार सब गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कंत बिनु तेहि रही छार सिर मेलि ॥7॥

अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुख सो जाइ किमि काढ़ी।
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरै बिरह ज्यों दीपक बाती।
काँपा हिया जनावा सीऊ। तो पै जाइ होइ सँग पीऊ।
घर घर चीर रचा सब काहूँ। मोर रूप रँग लै गा नाहूँ।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै फिरै रँग सोई।
सियरि अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दगधै भै छारा।
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू।

पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआँ हम लाग ॥8॥

पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।
बिरह बाढ़ि भा दारुन सीऊ। कँपि कँपि मरौं लेहि हरि जीऊ।
कंत कहाँ हौं लागौं हियरें। पंथ अपार सूझ नहिं नियरें।
सौर सुपेती आवै जूड़ी। जानहुँ सेज हिवंचल बूड़ी।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं निसि बासर बिरह कोकिला।
रैन अकेलि साथ नहिं सखी। कैसें जिऔं बिछोही पँखी।
बिरह सैचान भँवै तन चौड़ा। जीयत खाइ मुएँ नहिं छाँड़ा।

रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भए सब पंख।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटहु पंख ॥9॥

लागेउ माँह परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला।
पहल पहल तन रुई जो झाँपै। हहलि हहलि अधिकौ हिय काँपै।
आइ सूर होइ तपु रे नाहाँ। तेहि बिनु जाड़ न छूटै माहाँ।
एहि मास उपजै रस मूलू। तूं सो भँवर मोर जोबन फूलू।

नैन चुर्वाहि जस माँहुट नीरू। तेहि जल अंग लाग सर चीरू।
टूटहि बुंद परहि जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला।
केहिक सिंगार को पहिर पटोरा। गियँ नहिं हार रही होइ डोरा।

तुम्ह बिनु कंता धनि हरुई तन तिनुवर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल ॥10॥

फागुन पवन झँकोरै वहा। चौगुन सीउ जाइ किमि सहा।
तन जस पियर पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होइ झोरा।
तरिवर झरै झरै बन ढाँखा। भइ अनपत्त फूल फर साखा।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू।
फाग करहि सब चाँचरि जोरी। मोहि जिय लाइ दीन्हि जसि होरी।
जौं पै पियहि जरत अस भावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा।
रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागौं कंत थार जेउँ तोरें।

यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहँ पाउ ॥11॥

चैत बसंता होइ घमारी। मोहि लेखें संसार उजारी।
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै।
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीज मंजीठ टेसू बन राता।
मोरें आँब फरैं अब लागे। अबहुँ सँवरि घर आउ सभागे।
सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिरै सँवरि मालती।
मो कहँ फूल भए जस काँटे। दिस्टि परत तन लागहिं चाँटे।
भर जोवन एहु नारँग साखा। सोवा बिरह अब जाइ न राखा।

घिरिनि परेवा आव जस आइ परहु पिय टूटि।
नारि पराएँ हाथ है तुम्ह बिनु पाव न छूटि ॥12॥

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोला चीर चंदन भौ आगी।
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौहँ रथ हाँका।
जरत बजागिनी होउ पिय छाँहाँ। आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि सों करू फुलवारी।
लागिउँ जरे जरे जस भारू। वहुरि जो भूँजसि तजौं न बारू।
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ होइ बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दिस्टि दवँगरा मेरवहु एका।

कँवल जो बिगसा मानसर छारहि मिलै सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौं पिय सींचहु आइ ॥13॥

जेठ जरै जग बहै लुवारा। उठै बवंडर धिकै पहारा।
बिरह गाजि हनिवंत होइ जागा। लंका डाह करै तन लागा।
चारिहुँ पवन झँकोरै आगी। लंका डाहि पलंका लागी।
दहि भइ स्याम नदी कालिदी। बिरह की आगि कठिन अति मंदी।
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ मरौं दुख बाँधी।
अधजर भई माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काग होइ भूखा।
माँसु खाइ अब हाड़न्ह लागा। अबहूँ आउ आवत सुनि भागा।

परबत समुँद मेघ ससि दिनअर सहि न सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिअै जरै जो अस पिय लागि ॥14॥

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।
तन तिनुवर भा झूरौं खरी। मैं बिरहा आगरि सिर परी।
साँठि नाहि लगि बात को पूँछा। बिनु जिय भएउ मूँज तन छूँछा।
बंध नाहि औ कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।
ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।
बरसहि नैन चुअहि घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाँहाँ।
कोरे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।

अबहूँ दिस्टि मया करु छान्हिन तजु घर आउ।
मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ ॥15॥

['पद्मावत से']

———

सूरदास

(क) विनय

अब कैं राखि लेहु भगवान् ।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान ।
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान ।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान ?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान ।
सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय-जय कृपानिधान ॥1॥

प्रभु हौं सब पतितनि कौ टीकौ ।
और पतित सब दिवस चारि कै, हौं तौ जनमत ही कौं ।
बधिक, अजामिल गनिका तारी और पूतना ही कौं ।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे मिटै सूल क्यों जी कौं ।
कोउ न समरथ अब करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौं ।
मरियत लाज सूर पतितनि मैं, मोहूँ तैं कौं नीकौं ॥2॥

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम, क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।
महामोह के नुपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल ।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधिनहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नंदलाल ॥3॥

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसें उड़ि जहाज कौ पंछी, फिरि जहाज पर आवै ।
कमल-नैन कौ छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै ।

परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ॥4॥

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी हैं नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, गंगानाम परौ।
तन माया, ज्यौं ब्रह्म कहावत, सूर सुमिलि बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ॥5॥

(ख) भ्रमर गीत

ऊधौ मन माने की बात।
दाख छोहरा छाँड़ि अमृतफल विषकीरा विष खात।
जो चकोर को दैइ कपूर कोइ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर फोरि काठ में, बँधत कमल के पात।
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपक सों लपटात।
'सूरदास' जाको मन जासों, सोई ताहिं सुहात ॥6॥

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंसा सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजनि की छांहीं।
वै सुरभी वै बच्छ दोहिनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि-गहि बाहीं।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि-मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं।
अनगन भांति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं ॥7॥

ऊधौ, मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधै ईस ?
इन्द्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यों देही बिनु सीस।

स्वासा अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस।
तुम तौ सखा स्याम सुन्दर के, सकल जोग के ईस।
'सूरदास' रसिक की बतियाँ, और नहीं जगदीस ॥8॥

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब वे लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।
वृथा बहति जमुना खग बोलत बृथा कमल-फूलनि अलि गुंजैं।
पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि-सुत किरनि भानु भई भुंजैं।
यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग जोवत अँखियाँ भई छुंजैं ॥9॥

निर्गुन[1] कौन देश को वासी?
मधुकर हंसि[2] समुझाय सौंह दै, बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक, जननि को कहियत[3] कौन नारी को दासी?
कैसौ वरन भेष है कैसौ केहिं रस को[4] अभिलाषी?
पावैगो पुनि कियो आपनौ, जो रे कहैगो[5] गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठगों सो[6] 'सूर' सबै मति नासी ॥10॥

हमारैं हरि हारिल की लकरी।
मन क्रम वचन नंद-नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी।
जगत-सोवत स्वप्न दिवस-निसि कान्ह-कान्ह जकरी।
सुनत जोग लागत है ऐसौ, ज्यौं करुई ककरी।
सु तौ ब्याधि हमकौं लै आए, देखी सूनी न करी।
यह तौ सूर तिनहिं लै सौंपौ, जिनके मन चकरी ॥11॥

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं।
अबला सार-ज्ञान कह जानैं, कैसैं ध्यान धराहीं।
तेई मूंदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतैं सुनी न जाहीं।
स्रवत चीरि सिर जटा बधावहु, ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अंग भस्म बतावत, विरह अनल अति दाहीं।
जोगी भ्रमत जाहि लगि भूले, सो तौ है अप माहीं।
सूर स्याम तैं न्यारी न पल-छिन ज्यों घट तैं परछाहीं ॥12॥

10/1. निरगुन। 2. कहि। 3. कौन है जननी। 4. मैं। 5. करैगी। 6. बाबरौ।

लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि, कैसे छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ चरित, अन्तरगति लूटत ।।

वह चितवनि वह चाल मनोहर, वह मुसकानि मंद-धुनि गावनि ।
नटवर भेष नन्द-नन्दन कौ वह विनोद, वह वन तैं आवनि ।।
चरन कमल की सौंह करति हौं यह संदेश मोहिं विष सम लागत ।
सूरदास पल मोहिं बिसरति, मोहन मूरति सोवत जागत ।।13।।

['सूरसागर' से]

गोस्वामी तुलसीदास

(क) भरत-महिमा

चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु ।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरित को आजु ।।1।।

भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख दूषन हरनू ।।
जो किछु कहब थोर सखि सोई । राम बंधु अस काहे न होई ।।
हम सब सानुज भरतहि देखें । भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें ।।
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं । कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं ।।
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन । बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ।।
कहँ हम लोक वेद बिधि हीनी । लघु तिय कुल करतूति मलीनी ।।
बसहि कुदेस कुगांव कुबामा । कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ।।
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा । जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ।।

भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु ।
जनु सिंघल बासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु ।।2।।

निज गुन सहित राम गुन गाथा । सुनत जाहि सुमिरत रघुनाथा ।
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा । निरखि निमज्जहि करहि प्रनामा ।।
मनहीं मन मागहि बरु एहू । सीय राम पर पद पदुम सनेहू ।।
मिलहि किरात कोल बनबासी । बैखानस बटु जती उदासी ।।
करि प्रनामु पूंछहि जेहि तेही । केहि बन लखनु रामु बैदेही ।।
ते प्रभु समाचार सब कहहीं । भरतहु देखि जनम फलु लहहीं ।।
जे जन कहहि कुसल हम देखे । ते प्रिय राम लखन सम लेखे ।।
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी । सुनत राम बनबास कहानी ।

तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ।।3।।

मंगल सगुन होहि सब काहू । फरकहि सुखद बिलोचन बाहू ।।
भरतहि सहित समाज उछाहू । मिलिहहि रामु मिटिहि दुख दाहू ।।

करत मनोरथ जस जियँ जाके। जाहिं सनेह सुराँ सब छाके।।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बहबल बचन प्रेम बस बोलहिं।।
रामसखाँ तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा।।
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा।।
देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा।।
प्रेम मगन अस राजसमाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू।।

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु।।4।।

भरतहिं होई न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहूँ कि कांजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।।5।।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई।।
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी।।
मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई। होई न नृपमदु भरतहि भाई।।
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।।
सगुन खीरु अवगुन जलु ताता। मिलई रचइ परपंचु बिधाता।।
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जपत कीन्हि उजियारी।।
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ।।

सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु।।6।।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को।।
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा।।
लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुख लहेउ न जाय बखानी।।
इहाँ भरतु सब सहित सुहाए। मंदाकिनी पुनीत नहाए।।
सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा।।
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई।।
समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं।।
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।।

मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर।।7।।

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥
मोरें सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही॥
जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नवीना॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेहँ सिथिल सब गाता॥
फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाहँ जल अलि गति जैसी॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। मा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु॥8॥

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह मारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गहि तेहि अनुहारी॥
राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव विरागु विवेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥
भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राच चरन आश्रित चित चाऊ॥

जीति मोह महिपालु दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुर सुख संपदा सुकालु॥9॥

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥
जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाहँ सुखद सब काला॥
मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी॥
ए तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई॥
तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए॥
बट छाया बेदिका बनाई। सियँ नित पानि सरोज सुहाई॥

जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥10॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई।
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका॥
रजसिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥11॥

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन॥
करत प्रवेश मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे॥
सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें। तून कसें कर सरु धनु काँधे॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु॥12॥

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥
बचन सप्रेम लखन पहचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपा निधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥13॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कविकुल अगम करम मन बानी।।
परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई।।
कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई।।
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा।।
अगम सनेह भरत रघुवर को। जहँ न जाइ मनु विधि हरि हर को।।
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती।।
मिलनि बिलोकि भरत रघुवर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी।।
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे।।

मिलि सपेम रिपुसूदनहिं केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम।।14।।

('रामचरितमानस' से)

(ख) कवितावली

(बालकाण्ड)

(1)

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद के भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच बिमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से।।
तुलसी, मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से विकसे।।

(2)

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु वनी मनिमाल हिएँ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप मोद लिएँ।।
अरबिंदु सो आननु, रूपमरंदु अनन्दित लोचन-भृंग पिएँ।
मन मों न बस्यौ अस बालक जौं तुलसी जग में फलु कौन जिएँ।।

(3)

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।।

कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ॥
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मन्दिर में बिहरैं ॥

(अयोध्या काण्ड)

(4)

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू ॥
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ॥
तुलसी अवलंब न और कछु लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू ।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥

(5)

रावरे दोष न पायन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन तें बह-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पायँ पखारि के नाव चढ़ाइहौं आयस होत कहा है ?
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥

(ग) विनय-पत्रिका

(1)

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
राम कृपा भव-निसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं ॥
पायेउँ नाम चारु चिन्तामनि, उरकर तें न खसैहौं ।
स्याम-रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित-कंचनहि कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ॥
मन-मधुकर पनकै तुलसी, रघुपति पद-कमल बसैहौं ॥

(2)

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥
कौन देव बराइ बिरद हित, हठि-हठि अधम उधारे ।
खग मृग व्याध पषान बिटप, जड़ जवन कवन सुर तारे ॥
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया-बिबस विचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी, प्रभु कहा अपनपौ हारे ॥

(3)

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि रामभगति-सुरसरिता आस करत ओसकन की ।।
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की ।।
ज्यों गज काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की ।।
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपा निधि ! जानत हौ गति जन की ।
तुलसीदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाखनिज पन की ।।

गीतावली

(1)

जब जब भवन बिलोकति सूनो ।
तब तब विकल होति कौसल्या दिन-दिन प्रति दुख दूनो ।
सुमिरत बाल-बिनोद राम के सुन्दर मुनि-मन-हारि,
होत हृदय अति सूल समुझि पद-पंकज अजिर बिहारि ।
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो भाई ।
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई ।
जीवौं तो विपति सहौं निसि-वासर मरौं तौ मन पछितायो,
चलत विपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो ।
'तुलसीदास' यह दुसह दसा अति दारुन बिरह घनेरो,
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोक जनित रुज मेरो ।

(पद सं० 235)

मीरा

पद

बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदायी भगत बछल गोपाल ॥1॥

आली म्हांने लागे वृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत जमना में भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप बिराजे मुगट धर्यो तुलसी को।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका सबद सुणत मुरली को।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको ॥2॥

माई री मैं तो लीयो गोविन्दो मोल।
कोई कहैं छाने, कोई कहैं चौड़े, लियो री बजंता ढोल।
कोई कहै मुँहघों, कोई कहै सुहँघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो लियोरी अमोलिक मोल।
या ही कूँ सब लोग जाणत है लियो री आँखी खोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यो पूरब जनम को कोल ॥3॥

मैं गिरधर रँगराती, सैयाँ मैं०।
पचरंग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती।
ओहि झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो खोल मिली तन गाती।
जिनका पिया परदेस बसत है लिखलिख भेजैं पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है न कहुँ आती जाती।
चंदा जायगा सूरिज जायगा जायगी धरणि अकासी।
पवन पाणी दोनु ही जायेंगे अटल रहैं अबिनासी।

सुरत निरत का दिवला सँजोले मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल मँगाले जग रह्या दिन ते राती।
सतगुर मिलिया सांसा भाग्या सैन बताई साँची।
ना घर तेरा ना घर मेरा गावै मीराँ दासी ॥4॥

पपइया रे पिव की वाणि न बोल।
सुण पावेली बिरहणी रे थारी रालैली पाँख मरोड़।
चाँच कटाऊँ पपइया रे ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पीव की रे तू पिव कहै स कूण!
थारा सबद सुहावणा रे जो पिव मेला आज।
चाँच मढ़ाऊँ थारी सोवनी रे तू मेरे सिरताज।
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ कउवा तू ले जाइ।
जाइ प्रीतमजी सूँ यूँ कहै रे थाँरी बिरहणि धान न खाइ।
मीराँ दासी व्याकुली रे पिव करत बिहाइ।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी तुम बिन रह्यौहि न जाइ ॥5॥

दरस बिन दूखण लागे नैण।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहु न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपैं मीठे-मीठे बैन।
विरह कथा कासूँ कहूँ सजनी वह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैण।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटत सुख देण ॥6॥

हेरी मैं तो दरद दिवाणी, मेरा दरद न जाणै कोइ।
घायल की गति घायल जाणै कि जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहर जाणै के जिन जौहर होइ।
सूली ऊपरि सेज हमारी किस विधि सोणा होइ।
गगन मँडप पै सेज पिया की किस विधि मिलणा होइ।
दरद की मारी बन-बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोइ।
मीराँ की प्रभु पीर मिटेगी जब बैद साँवलिया होइ ॥7॥

कोई कहियौरे प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की, कोई०।
आप न आवै लिख नहिं भेजै बांण पड़ी ललचावन की।
ए दोइ नैणा कह्यो नहिं मानै नदियाँ बहै जैसे सावन की।

कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो पाँख नहीं उड़ जावन की ।
मीराँ कहै प्रभु कबर मिलोगे चेरी भइ हूँ तेरे दाँवन की ।।8।।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।
छांडि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई ।
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई ।
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेलि फैल गई आणँद फल होई ।
भगति देखि राजी हुई जगति देख रोई ।
दासी मीराँ लाल गिरधर तारो अब मोही ।।9।।

मैं तो साँवरे के रंग राची ।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू लोक-लाज तजि नाची ।
गई कुमति लई साधु की संगति भगत रूप भई साँची ।
गाय गाय हरि के गुन निसदिन काल ब्याल सूँ बाँची ।
उण बिनि सब जग खारो लागत और बात सब काँची ।
मीराँ श्री गिरधरन लाजसूँ भगति रसीली जाँची ।।10।।

मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी ।
जब जब सुरत लगे बा घर की, पल पल नैनन पानी ।
ज्यों हिये पीर पीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ।
रात दिवस मोहि नींद न आवत, भावै न अन्न न पानी ।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन विहानी ।
ऐसा बैद मिलै कोई भेदी, देस विदेस पिछानी ।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमो खानी ।
खोजत फिरों मद वा घर को, कोई न करत बखानी ।
रैदास संत मिले मोहिं सतुगुरु, दीन्हा सुरत सहदानी ।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी ।
मीराँ खाक खलक सिरडारी, मैं अपना घर जानी ।।11।।

['मीराँ मन्दाकिनी' से]

रसखान

प्रान वही जु रहैं रिझि वा पर, रूप वही जिहि वाहि रिझायो ।
सीस वही जिनि वे परसे पद, अंग वही जिन वा परसायो ।
दूध वही जु दुहायो री वाही, दही सु वही सु वही ढरकायो ।
और कहाँ लौं कहौं 'रसखानि', री भाव वही जु वही मन भायो ।।1।।

द्रौपदी औ गनिका गज गीध, अजामिलि जो कियो सो न निहारो ।
गौतम-गेहनी कैसे तरी, प्रह्लाद को कैसे हर्यो दुख भारो ।
काहे को सोच करै 'रसखानि', कहा करिहैं रविनंद बिचारो ।
कौन की संक परी है, जु माखन-चाखनहार, सो राखनहारो ।।2।।

मानुष हौं तो वही 'रसखानि', बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ।
पाहन हौं तौ वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिंदी कूल कदंब की डारन ।।3।।

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहुँ सिद्ध नवो निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं ।
'रसखानि' कबौं इन आँखिन तैं, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिनहूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं ।।4।।

धूर भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनियाँ कटि पीरी कछोटी ।
वा छवि को 'रसखानि', विलोकत, बारत काम कलानिज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी ।।5।।

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुवेद बतावैं ।
नारद लै सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पर पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।।6।।

हिंदी कविता का विकास क्रम

हिंदी का पूर्ववर्ती साहित्य

- अपभ्रंश
  - जैन साहित्य
  - वज्रयानी सिद्धों का साहित्य
- अवहट्ठ
  - विद्यापति का अवहट्ठ साहित्य (कीर्तिलता, कीर्तिपताका)

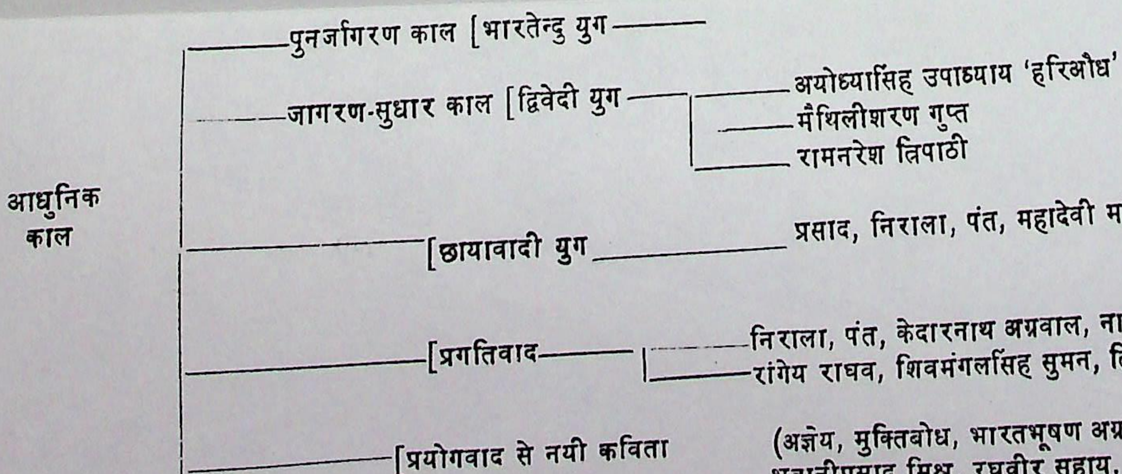
↓

हिंदी साहित्य का विकास-क्रम

आदिकाल
- वीरगाथा साहित्य [रासो साहित्य, वीरगीत] — दलपति विजय, चन्दबरदाई, नरपतिनाल्ह, जगनिक
- भक्ति साहित्य [विद्यापति]

भक्तिकाल
- सगुण भक्ति
  - रामभक्ति शाखा — गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास
  - कृष्णभक्ति शाखा — अष्टछाप के समस्त कवि-विशेषतः सूरदास, नन्ददास
- निर्गुण भक्ति
  - ज्ञानमार्गी शाखा — कबीरदास
  - प्रेममार्गी शाखा — सूफी कवि जायसी

रीतिकाल
- रीतिबद्ध साहित्य
  - केशवदास
  - देव
  - मतिराम
  - भिखारीदास
  - पद्माकर
- परम्परावादी मौलिक साहित्य — महाकवि बिहारी
- रीतिमुक्त साहित्य
  - घनानंद
  - बोधा
  - ठाकुर



वह नंद को साँवरों छैल अली, अब तो अति ही इतरावन लग्यो ।
नित घाटन वाटन कुंजन में, मोहि देखत ही नियरान लग्यो ।
रसखानि, बखान, कहा करियै, तकि सैननि सों, मुसकान लग्यो ।
तिरछी बरछी सम मारत है, दृग बान कमान सु कान लग्यो ॥7॥

काहू सो माई कहा कहिये, सहिये सु जोई 'रसखानि' सहावै ।
नेम कहा जब प्रेम कियो, अब्र नाचिये सोई जो नाच नचावै ।
चाहति हैं, हम और कहा सखि, क्यों हूँ कहूँ पिय देखन पावैं ।
चेरिय सों जु गुपाल रच्यो तौ, चलौ री सबै मिलि चेरी कहावैं ॥8॥

दानी नये भये माँगत दान, सुने जु पै कंस तौ बाधें कै जैहौ ।
रोकत हौ बन में 'रसखानि', पसारत हाथ, कहा दुख पैहौ ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन, जो धन है सु सबै पुनि रहौ ।
जैहै भूषन काहू तिया को तौ, मोल छला के लला न बिकैहौ ॥9॥

मोरपखा परि ऊपर राखि हौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी, बन गावत गोधन संग फिरौंगी ।
भावतो वोहि मेरो 'रसखानि' सौं, तेरे कहे तब्र स्वाँग करौंगी ।
पै मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी ॥10॥

बंसी बजावत आनि कढ़यो री, गली में अली कछु टोना सो डारैं ।
नेंक चितै तिरछी करि दीठि, चलो गयो मोहन मूठि सी मारैं ।
ताही घरी सों परी वह सेज पै, प्यारी न बोलति प्रानहुँ वारैं ।
राधिका जीहैं तो जीहैं सबै, न तो पीहैं हलाहल नंद के द्वारैं ॥11॥

कान्ह भये बस बाँसुरी के, अब कौन सखी हमको चहिहै ।
निसि द्यौस रहै यह साथ लगी, यह सौतिन साँसत को सहिहै ।
जिनि मोहि लियो मनमोहन को 'रसखानि' सु क्यों न हमें दहिहै ।
मिलि आवो सबै कहुँ भाग चलैं, अब तो ब्रज में बँसुरी रहिहै ॥12॥

सोहत है चँदवा सिर मोर को, तैसीय सुन्दर पाग कसी है ।
तैसिये गोरज भाल बिराजत तैसी हिये बनमाल लसी है ।
'रसखानि' बिलोकत बौरी भई दृग मूंदि कै ग्वालि पुकार हँसी है ।
खोलि री घूंघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैनन माँझ बसी हैं ॥13॥

(रसखान ग्रंथावली)

रहीम

वन्दना

तें 'रहीम' मन आपनो, कीन्हो चारु चकोर।
निसि-बासर लागौ रहै कृष्णचन्द्र की ओर ॥1॥
'रहिमन' कोऊ का करै, ज्वारी, चोर लबार।
जो पत-राखनहार है, माखन-चाखनहार ॥2॥

अनन्यता

अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
'रहिमन' ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि ॥3॥
धनि 'रहीम' गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहाँ भौंर को भाय ॥4॥
प्रीतम छबि नैनन बसी, पर-छवि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि, पथिक आप फिर जाय ॥5॥

प्रेम

'रहिमन' पैंड़ा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिलछत पाँव पिपीलिको, लोग लदावत बैल ॥6॥
'रहिमन' धागा प्रेम को, मत तोड़ो-छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ पड़ जाय ॥7॥
'रहिमन' प्रीति सराहिये, मिले होत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥8॥
टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार।
'रहिमन' फिरि-फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार ॥9॥

राम-नाम

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
'रहिमन' जगत-उधार को, और न कछू उपाय ॥10॥

राम-नाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।
कहि 'रहीम' क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥11॥
राम-नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि 'रहीम' तिहि आपुनों, जनम गँवायो वाधि ॥12॥

मित्र

मथत मथत माखन रहे, दही मही बिलगाय।
'रहिमन' सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥13॥
जे गरीब सों हित करें, धनि 'रहीम' ते लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई-जोग ॥14॥

चेतावनी

'रहिमन' कठिन चितान तैं, चिंता को चित चैत।
चिता दहति निर्जीव को, चिन्ता जीव-समेत ॥15॥

लोक-नीति

'रहिमन' वहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत।
हम तो ढारत ढेंकुली, सींचत अपनो खेत ॥16॥
सब कोऊ सबसों करें, राम जुहार सलाम।
हित अनहित तब जानिये, जा दिन अटके काम ॥17॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर-घर गये 'रहीम' ॥18॥
'रहीमन' अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देइ ॥19॥
'रहिमन' जिह्वा बावरी, कहिगी सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥20॥
धन थोरो, इज्जत बड़ी, कहि 'रहीम' का बात।
जैसे कुल की कुलवधू, चिथड़न माहि समात ॥21॥
कदली, सीप, भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥22॥
जो 'रहीम' गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥23॥

बड़े दीन को दुःख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु 'रहीम' पहिचानि ॥24॥

'रहीमन' आटा के लगे, बाजत है दिन-राति।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति ॥25॥

'रहीमन' कुटिल कुठार ज्यों, करि डारत द्वै टूक।
चतुरन के कसकत रहै, समय चूक की हूक ॥26॥

'रहीमन' तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचान।
पर बस परे, परोस-बस, परे मामिला जानि ॥27॥

'रहिमन' पानी राखिये बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून ॥28॥

'रहिमन' निज मन की बिथा, मनही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लहैं कोय ॥29॥

'रहिमन' रिस को छाँड़ि के, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो, नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥30॥

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात।
सदा रहै नहिं एक सी, का 'रहीम' पछितात ॥31॥

देव

मंगलाचरण

पाँयनि नूपुर मंजु बजैं,
कटि-किंकिनि में धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसैं पट-पीत,
हिये हुलसै बन-माल सुहाई॥
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल,
मंद हँसी मुख-चंद-जुन्हाई।
जै जै-मंदिर-दीपक सुंदर,
श्री ब्रज-दूलह देव-सहाई॥1॥

शृंगार (राधा-कृष्ण)

माथे मनोहर मौर लसै,
पहिरैं हिय में गहिरे गुंज-हारनि।
कुंडल-मंडित गोल कपोल,
सुधा-सम बोल, बिलोल निहारनि॥
सोहति त्यों कटि पीत-पटी,
मन मोहति मंद महा पग-धारनि।
सुन्दर नन्द-कुमार के ऊपर,
बारिये कोटिक मार-कुमारनि॥2॥

पूर्व-राग

बँसुरी सुनि देखन दौरि चली
जमुना-जल के मिस बेगि तबै।
कवि देव सखी के सँकोचन सों
करि ऊठ सु औसर को बितवै॥

वृषभान-कुमारि मुरारि की ओर
बिलोचन-कोरन सों चितवै।
चलिबे को धरै न करै मन नेक
धरै फिरि-फेरि भरै रितवै ॥3॥

राधिका कान्ह को ध्यान धरै, तब
कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै।
त्यों अँसुवां बरसै बरसाने को
पाती लिखैं लिखि राधिकै ध्यावै।
राधे ह्वै जावत है छिन में, वह
प्रेम की पाती लै छाती लगावै।
आपु में आपुन ही उरझै।
सुरझै बिरुझै समुझै समुझावै ॥4॥

बिरह-वर्णन

(होरी)

को बचिहै यहि बैरि बसंत में,
आवत यों बन आग लगावत।
बौरत ही कर डारिहै बौरी,
भरे बिख बेरी रसाल कहावत॥
ह्वै हैं करेजन की किरचैं।
कवि देव जू कोकिल कूक सुनावत।
बीर की सौं, बल-बीर बिना।
उड़ि जायँगे प्रान अबीर उड़ावत ॥5॥

स्वप्न

झहरि-झहरि झीनी बूंद है परति मानो,
घहरि-घहरि घटा घिरी है गगन में।
आनि कह्यो श्याम मो सों, चलो झूलिबे कों आजु,
फूली ना समानी, भयी ऐसी हौं मगन में॥
चाहति उठयोई, उठि गयी सो निगोड़ी नींद,
सोय गये भाग मेरे जानि वा जगन में।
आँखि खोलि देखौं तो न घन हैं न घनश्याम,
वेई बूंदें छाई मेरे आंसू ह्वै दृगन में ॥6॥

ऋतु-वर्णन : शरद्

डार द्रुम पालन, बिछौना नव-पल्लव के,
सुमन झँगूला सोहै, तन छवि भारी दे।
पवन झुलावै केकी-कीर बतरावैं 'देव',
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दे।
पूरित पराग सों उतारौ करे राई-नोन,
कंज-कली नायिका, लतान सिरसारी दे।
मदन-महीप जू को बालक बसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दे ॥7॥

['देव ग्रन्थावली' से]

बिहारी

भक्ति

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, श्याम हरित-दुति होई ॥1॥

सीस मुकुट कट काँछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल ॥2॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों-ज्यों बूढ़ैं स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्जलु होइ ॥3॥

चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा वे हलधर के वीर ॥4॥

ऋतु वर्णन

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो किये दीरघ दाघ निदाघ ॥5॥

प्रलय करन बरषन लगे, जुरि जलधर इक साथ.
सुरपति गरबु हर्‌यो हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ ॥6॥

आवत-जात न जानिए, तेजहिं तजि सियरान।
घरहिं जँवाई लौ घट्यो, खरौ पूस दिन मान ॥7॥

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गन्ध।
ठौर-ठौर झूमत झँपत भौंर-भौंर मधु-अन्ध ॥8॥

रनित-भृंग-घंटावली झरत दान मधु नीर।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर-कुंज-समीर ॥9॥

नीति

तन्त्री नाद कवित्त रस, सरस राग, रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अंग ॥10॥

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल-बल जल ऊँचे चढ़ै, तऊ नीच कौ नीच ॥11॥

संगति, सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर में, हींग न होति सुगंध ॥12॥
घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन जाँचतु जाइ।
दियै लोभ चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥13॥
कनक कनक तैं सौगुनी मादकता अधिकाइ।
उहि खाए बौराइ जगु, इहिं पाए बौराइ ॥14॥
स्वारथु, सुकृतु न, स्रम बृथा, देखि बिहंग बिचारि।
बाज, पराए पानि परि, तू पंछीनु न मारि ॥15॥
नर की अरु नल नीर की, गति एकै कर जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥16॥
गुनी गुनी सब कोउ कहैं, निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौं कहूँ तरु अर्क तें, अर्क समान उदोतु ॥17॥
बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु।
भलौ, भलौ, कहि छोड़िए, खोटे ग्रह जपु दानु ॥18॥
अति अगाध अति औथरौ, नदी, कूप, सरु बाइ।
सौ ताकौ सागरु, जहाँ, जाकी, प्यास बुझाइ ॥19॥
बुरौ बुराई जौ तजै, तो चितु खरौ सकातु।
ज्यों निकलंकु मयंकु लखि, गनैं लोग उतपातु ॥20॥
इहीं आस अटक्यौ रहैं, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै है फेरि बसन्त ऋतु, इन डारिन वे फूल ॥21॥
मरतु प्यास पिंजरा पर्‌यौ, सुआ समै के फेर।
आदरु दै दै बोलियतु, बाइसु बलि की बेर ॥22॥
दिन दसु आदरु पाइकै, करि लै आपु बखानु।
जौं लगि काग सराध पखु, तौ लगि तो सनमानु ॥23॥
अरे हंस या नगर में, जैयौ आप बिचारि।
कागनि सौं जिन प्रीति करि, कोकिल दई बिडारि ॥24॥
दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि, दुरजन हियैं, दई नई, यह रीति ॥25॥
नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौं तारन—विरदु, बारक बारनु तारि ॥26॥

सौन्दर्य और प्रेम

कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात ।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सौं बात ॥27॥

भूषन भारु सँभारि है, क्यौं इहि तन सुकुमार ।
सूधे पाइ न धरि परै, सोभा ही कैं भार ॥28॥

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात ।
कहिहैं सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ॥29॥

इन दुखिया अखियानु कूँ, सुख सिरज्यौ ही नाँहि ।
देखै बनै न देखतैं, अनदेखै अकुलाँहि ॥30॥

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर ।
मनु ह्वै जातु अजौं वहै, उहि जमुना के तीर ॥31॥

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय ।
सौंह करै, भौंहनि हँसे दैन कहै नटि जाय ॥32॥

घनानंद

प्रेम-साधना

(1)

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ।।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो इत एक तैं दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ।।

(2)

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै ।
नीर सनेही कों लाय कलंक निरास ह्‌वै कायर त्यागत प्रानै ।।
प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़, मीत के पानि परै को प्रमानै ।
या मन की जु दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै ।।

प्रेम की अनन्यता

(3)

घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ ! जिहि भाँतिनि हौं दुख-सूल सहौं ।
नहीं आवनि-औधि, न रावरी आस, इते पै एक बाट चहौं ।।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं ।
जिय नेकु विचारि के देहु बताय हहा पिय ! दूरि तैं पाय गहौं ।।

उपालम्भ

(4)

इत बात परी सुधि, रावरे भूलनि कैसे उराहनो दीजिये जू ।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जू कछु मन भाई सु कीजिये जू ।।
घनआनन्द जीवन-प्रान सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू ।
नित नीके रहौ तुम्हें चाड़ कहा पै असीस हमारी हू लीजियै जू ।।

(5)

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधार है लेख्यौ।
ताही के चारू चरित्र विचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि विसेख्यौ ।।
ऐसो हियों-हित-पत्र पवित्र, ज़ु आन कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनन्द जान-अजान लौं टूट कियौ परि बाचि न देख्यौ ।।

(6)

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिर नेह को तोरियै जू।
निराधार अधार दै धार-मंझार दई ! गहि बाँह न बोरियै जू ।।
घनआनन्द आपने चालक कों गुन बाँधिलै मोह न छोरियै जू।
रस प्यास कें ज्याय, बढ़ाय कै आस बिसास में यों विष घोरियै जू ।।

विरह

(7)

पीरी परी देहँ छीनी राजत सनेह—भीनी
कीनी है अनंग अंग अंग रंग बोरी सी।
नैन पिचकारी ज्यौं चल्योई करै रैन दिन
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी ।।
कहाँ लौं बखानौं घनआनंद दुहेली दसा
फागमयी भई जान प्यारी वह भोरी सी ।।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा
विरह-अँगारीन मगारि हिय होरी सी ।।

विविध

(8)

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि में छबि—फूलन की वरषा, उर-ऊपर जाति है ह्वै ।।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जल जावलि द्वै।
अंग—अंग तरंग उठै—दुति की, परिहै मनौ रूप अबैधरिच्वै ।।

(9)

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यौं-ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहिं आनितिहारिए ।।

एक ही जीव हुतौ सुतौ वार्यौ, सुजान, सकोच और सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै, घनआनन्द, बावरी रीझि के हाथनि हारियै॥

(10)

डगमगी डगरि धरनि छबि ही के भार
डरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
सुन्दर बदन तर कोटिक मदन बारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की।
कालिह हि गली अली निकसे औचक आज,
कहा कहौं "अटक मटक" तिहि काल की।
भिजई हौं रोम-रोम आनन्द के घन छाय,
बसी मेरो आँखनि में आवनि गुपाल की॥

(11)

पर काजहि देह को धारे फिरौ,
पर जन्य जथारध ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करो,
सबही बिधि सज्जनता परसौ।
'घनआनन्द' जीवनदायक हौं,
कुछ मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन,
मो अँसुवान को लै बरसौ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

(पवन-दूतिका)

बैठी खिन्ना एक दिवस वे गेह में थीं अकेली।
आके आँसू दृग-युगल में थे धरा को भिगोते।
आई धीरे इस सदन में पुष्प-सद्‌गंध को ले।
प्रातः वाली सुपवन इसी काल वातायनों से ।।1।।

संतापों को विपुल बढ़ता देख के दुःखिता हो।
धीरे बोलीं सदुख उससे श्रीमती राधिका यों।
प्यारी प्रातः पवन इतना क्यों मुझे है सताती।
क्या तू भी है कलुषित हुई काल की क्रूरता से ।।2।।

मेरे प्यारे नव जलद से कंज से नेत्रवाले।
जाके आये न मधुवन से औ न भेजा संदेसा।
मैं रो-रो के प्रिय-विरह से बावली हो रही हूँ।
जा के मेरी सब दुख-कथा श्याम को तू सुना दे ।।3।।

ज्यों ही मेरा भवन तज तू अल्प आगे बढ़ेगी।
शोभावली सुखद कितनी मंजु कुंजें मिलेंगी।
प्यारी छाया मृदुल स्वर से मोह लेंगी तुझे वे।
तो भी मेरा दुख लख वहाँ जा न विश्राम लेना ।।4।।

थोड़ा आगे सरस रव का धाम सत्पुष्पवाला।
अच्छे-अच्छे बहु द्रुम लतावान सौन्दर्यशाली।
प्यारा वृन्दाविपिन मन को मुग्धकारी मिलेगा।
आना जाना इस विपिन से मुह्‌यमाना न होना ।।5।।

जाते-जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे।
तो जा के सन्निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना।
धीरे-धीरे परस करके गात उत्ताप खोना।
सद्‌गंधों से श्रमित जन को हर्षितों सा बनाना ।।6।।

लज्जाशीला पथिक महिला जो कहीं दृष्टि आये ।
होने देना विकृत-वसना तो न तू सुन्दरी को ।
जो थोड़ी भी श्रमित वह हो गोद ले श्रान्ति खोना ।
होठों की औ कमल-मुख की म्लानतायें मिटाना ।।7।।

कोई क्लान्ता कृषक-ललना खेत में जो दिखावे ।
धीरे-धीरे परस उसकी क्लान्तियों को मिटाना ।
जाता कोई जलद यदि हो व्योम में तो उसे ला ।
छाया द्वारा सुखित करना, तप्त भूतांगना को ।।8।।

जाते जाते पहुँच मथुरा-धाम में उत्सुका हो ।
न्यारा शोभा वर नगर की देखना मुग्ध होना ।
तू होवेगी चकित लख के मेरु से मन्दिरों को ।
आभावाले कलश जिनके दूसरे छैं अर्कसे हैं ।।9।।

देखें पूजा समय मथुरा मन्दिरों मध्य जाना ।
नाना वाद्यों मधुर स्वर की मुग्धता को बढ़ाना ।
किंवा लेके रुचिर तरु के शब्दकारी फलों को ।
धीरे-धीरे मधुर रव से मुग्ध हो हो बजाना ।।10।।

तू देखेगी जलद-तन को जा वहीं तद्गता हो ।
होंगे लोने नयन उनके ज्योति-उत्कीर्णकारी ।
मुद्रा होगी वर वदन की मूर्त्ति-सी सौम्यता की ।
सीधे साधे वचन उनके सिक्त होंगे सुधा से ।।11।।

नीले फूले कमल दल-सी गात की श्यामता है ।
पीला प्यारा वसन कटि में पैन्हते हैं फबीला ।
छूटी काली अलक मुख की कान्ति को है बढ़ाती ।
सद्वस्त्रों में नवल तन की फूटती-सी प्रभा है ।।12।।

साँचे ढाला सकल वपु है दिव्य सौंदर्यशाली ।
सत्पुष्पों-सी सुरभि उसकी प्राण-संपोषिका है ।
दोनों कंधे वृषभ वर-से है बडे ही सजीले ।
लम्बी बाँहें कलभ-कर-सी शक्ति की पेटिका है ।।13।।

राजाओं-सा शिर पर लसा दिव्य आपीड होगा ।
शोभा होगी उभय श्रुति में स्वर्ण के कुण्डलों की ।

नाना रत्नाकलित भुज में मंजु केयूर होंगे।
मोतीमाला लसित उनका कम्बु-सा कंठ होगा ॥14॥

तेरे में है न यह गुण जो तू व्यथायें सुनाये।
व्यापारों को प्रखर मति औ युक्तियों से चलाना।
बैठे जो हों निज सदन में मेघ-सी कान्तिवाले।
तो चित्रों को इस भवन के ध्यान से देख जाना ॥15॥

जो चित्रों में विरह-विधुरा का मिले चित्र कोई।
तो जा जाके निकट उसको भाव से यों हिलाना।
प्यारे होके चकित जिससे है चित्र की ओर देखें।
आशा है यों सुरति उनको हो सकेगी हमारी ॥16॥

जो कोई भी इस सदन में चित्र उद्यान का हो।
औ हों प्राणी विपुल उसमें घूमते बावले से।
तो जाके सन्निकट उसके औ हिला के उसे भी।
देवात्मा को सुरति ब्रज के व्याकुलों की कराना ॥17॥

कोई प्यारा कुसुम कुम्हला गेह में जो पड़ा हो।
तो प्यारे के चरण पर ला डाल देना उसी को।
यों देना ऐ पवन बतला फूल-सी एक बाला।
म्लाना हो हो कमल-पग को चूमना चाहती है ॥18॥

जो प्यारे मंजु उपवन या वाटिका में खड़े हों।
छिद्रों में जा क्वणित करना वेणु सा कीचकों को।
यों होवेगी सुरति उनको सर्व गोपांगना की।
जो हैं वंशी श्रवण-रुचि से दीर्घ उत्कण्ठ होती ॥19॥

लाके फूले कमल दल को श्याम के सामने ही।
थोड़ा थोड़ा विपुल जल में व्यग्र हो-हो डुबाना।
यों देना ऐ भगिनि जतला एक अंभोजनेत्रा।
आँखों को हो विरह-विधुरा वारि में बोरती है ॥20॥

धीरे लाना वहन कर के नीप का पुष्प कोई।
औ प्यारे के चपल दृग के सामने डाल देना।
ऐसे देना प्रकट दिखला नित्य आशंकिता हो।
कैसी होती विरहवश में सित्य रोमांचिता हूँ ॥21॥

बैठें नीचे जिस विटप के श्याम होवें उसीका।
कोई पत्ता निकट उनके नेत्र के ले हिलाना।
यों प्यारे को विदित करना चातुरी से दिखाना।
मेरे चिन्ता-विजित चित का क्लान्त हो काँप जाना ॥22॥

सूखी जाती मलिन लतिका जो धरा में पड़ी हो।
तो पाँवों के निकट उसको श्याम के ला गिराना।
यों सीधे से प्रकट करना प्रीति से वंचिता ही।
मेरा होना अति मलिन औ सूखते नित्य जाना ॥23॥

कोई पत्ता नवल तरु का पीत जो हो रहा हो।
तो प्यारे के दृग युगल के सामने ला उसे हो।
धीरे धीरे सँभल रखना औं उन्हें यों बताना।
पीला होना प्रवल दुख के प्रोषिता-सा हमारा ॥24॥

यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथायें।
धीरे धीरे वहन करके पाँव की धूलि लाना।
थोड़ी-सी भी चरण-रज जो ला न देगी हमें तू।
हा ! कैसे तो व्यथित चित को बोध मैं दे सकूँगी ॥25॥

पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी।
तो तू मेरी विनय इतनी मान लें औं चली जा।
छू के प्यारे कमल-पग को प्यार के साथ आ जा।
जो जाऊँगी हृदयतल में मैं तुझी को लगाके ॥26॥

['प्रिय प्रवास' से]

मैथिलीशरण गुप्त

(1) यशोधरा के विरह गीत

(क) सखि, बसन्त-से कहाँ गये वे ?

सखि, बसन्त-से कहाँ गये वे,
मैं ऊष्मा-सी यहाँ रही।
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उड़ाता आया,
हाय ! विभूति रमाने का भी मैंने योग न पाया।
सूखा कण्ठ, पसीना छूटा, मृगतृष्णा की माया,
झुलसी दृष्टि, अँधेरा दीखा, दूर गई वह छाया।

मेरा ताप और तप उनका,
जलती हैं हा ! जठर मही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

जागी किसकी वाष्पराशि, जो सूने में सोती थी ?
किसकी स्मृति के बीज उगे ये सृष्टि जिन्हें बोती थी ?
अरी वृष्टि ऐसी ही उनकी दया-दृष्टि रोती थी,
विश्व वेदना की ऐसी ही चमक उन्हें होती थी।

किसके भरे हृदय की धारा,
शतधा होकर आज बही ?
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

उनकी शान्ति-कांति की ज्योत्स्ना जगती है पल-पल में,
शरदातप उनके विकास का सूचक है थल-थल में,
नाच उठी आशा प्रतिदल पर किरणों की झल-झल में,
खुला सलिल का हृदय-कमल खिल हंसों के कल-कल में।

पर मेरे मध्याह्न ! बता क्यों,
तेरी मूर्च्छा बनी वही ?
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

हेम पुंज हेमन्तकाल के इस आतप पर वारूँ
प्रियस्पर्श की पुलकावलि मैं कैसे आज बिसारूँ ?
किंतु शिशिर, ये ठण्डी सांसें हाय ! कहाँ तक धारूँ ?
तन मारूँ, मन मारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ ?

मेरी बाँह गही स्वामी ने,
मैंने उनकी छाँह गही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देखकर, त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।
उनके तप के अग्नि-कुण्ड-से घर-घर में है जागे।
मेरे कम्प, हाय ! फिर भी तुम नहीं कहीं से भागे।

पानी जमा, परन्तु न मेरे
खट्टे दिन का दूध-दही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

आशा से आकाश थमा है, श्वास-तंतु कब टूटे ?
दर्शन-मुख दमके, पल्लव चमके, भव ने नव रस लूटे !
स्वामी के सद्भाव फैलकर फूल-फूल में फूटे !
उन्हें खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे।

उनके श्रम के फल सब भोगें,
यशोधरा की विनय यही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

['यशोधरा' से]

(ख) रे मन, आज परीक्षा तेरी

रे मन, आज परीक्षा तेरी ।
विनती करती हूँ मैं तुझसे, बात न बिगड़े मेरी ।

अब तक जो तेरा निग्रह था,
बस अभाव के कारण वह था ।
लोभ न था, जब लाभ न यह था;
सुन अब स्वागत-भेरी !
रे मन, आज परीक्षा तेरी ।

दो पग आगे ही वह धन है,
अवलम्बित जिस पर जीवन है ।
पर क्या पथ पाता यह जन है ?
मैं हूँ और अँधेरी ।
रे मन, आज परीक्षा तेरी ।

यदि वे चल आये हैं इतना,
तो दो पद उनको है कितना ?
क्या भारी वह मुझको जितना ?
पीठ उन्होंने फेरी ।
रे मन, आज परीक्षा तेरी ।

सब अपना सौभाग्य मनावें,
दरस-परस, निःश्रेयस पावें ।
उद्धारक चाहें तो आवें,
यहीं रहे यह चेरी ।
रे मन, आज परीक्षा तेरी ।

['यशोधरा' से]

(2) सीता का उटज गीत

निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

सम्राट स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं,
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं।
धन तुच्छ यहाँ,—यद्यपि असंख्य आकर हैं,
पानी पीते मृग-सिंह एक तट पर हैं।

सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

क्या सुन्दर लता-वितान तना है मेरा,
पुंजाकृति गुंजित कुंज घना है मेरा।
जल निर्मल, पवन पराग-सना है मेरा,
गढ़ चित्रकूट दृढ़-दिव्य बना है मेरा।

प्रहरी निर्झर, परिखा प्रवाह की काया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रम वारिबिन्दु फल स्वास्थ्यशुक्ति फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।

तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

जिनसे ये प्रणयी प्राण त्राण पाते हैं,
जी भरकर उनको देख जुड़ा जाते हैं।
जब देव कि देवर विचर-विचर आते हैं,
तब नित्य नये दो-एक द्रव्य लाते हैं।

उनका वर्णन ही बना विनोद सवाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

किसलय-कर स्वागत-हेतु हिला करते हैं,
मृदु मनोभाव-सम सुमन खिला करते हैं,
डाली में नव फल नित्य मिला करते हैं,
तृण-तृण पर मुक्ता-भार झिला करते हैं।

निधि खोले दिखला रही प्रकृति निज माया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।
कहता है कौन कि भाग्य ठगा है मेरा ?
वह सुना हुआ भय दूर भगा है मेरा।
कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा,
वन में ही तो गार्हस्थ्य जगा है मेरा।
वह वधू जानकी बनी आज यह जाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।
फल-फूलों से हैं लदी डालियाँ मेरी,
वे हरी पत्तलें, भरी थालियाँ मेरी।
मुनि बालाएँ हैं यहाँ आलियाँ मेरी,
तटिनी की लहरें और तालियाँ मेरी।
क्रीड़ा-सामग्री बनी स्वयं निज छाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया,
मैं पली पक्षिणी विपिन-कुंज-पिंजर की,
आती है कोटर-सदृश मुझे सुध घर की।
मृदु-तीक्ष्ण वेदना एक एक अंतर की,
बन जाती है कल-गीति समय के स्वर की।
कब उसे छेड़ यह कण्ठ यहाँ न अघाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।
गुरुजन-परिजन सब अन्य ध्येय हैं मेरे,
औषधियों के गुण-विगुण ज्ञेय हैं मेरे,
वन-देव-देवियाँ आतिथेय हैं मेरे,
प्रिय-संग यहाँ सब प्रेय श्रेय हैं मेरे।
मेरे पीछे ध्रुव-धर्म स्वयं ही धाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।
नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,
नाचो कुरंग, तुम लो उड़ान के तोड़े।
गाओ दिवि, चातक, चटक, भृंग भय छोड़े,
वैदेही के वनवास-वर्ष हैं थोड़े।
तितली, तूने यह कहाँ चित्रपट पाया ?
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

आओ कलापि, निज चन्द्रकला दिखलाओ,
कुछ मुझसे सीखो और मुझे सिखलाओ।
गाओ पिक, मैं अनुकरण करूँ, तुम गाओ,
स्वर खींच तनिक यों उसे घुमाते जाओ।
शुक, पढ़ो, मधुर फल प्रथम तुम्हीं ने खाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

अयि राजहंसि, तू तरस-तरस क्यों रोती,
तू शुक्ति-वंचित कहीं मैथिली होती।
तो श्यामल तनु के श्रमज-बिन्दुमय मोती,
निज व्यंजन-पक्ष से तू अंकोर सुध खोती,
जिन पर मानस ने पद्म-रूप मुँह बाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

ओ निर्झर, झर-झर नाद सुनाकर झड़ तू,
पथ के रोड़ों से उलझ-सुलझ, बढ़ अड़ तू।
ओ उत्तरीय, उड़, मोद-पयोद, घुमड़ तू,
हम पर गिरि-गद्गद् भाव, सदैव उमड़ तू।
जीवन को तूने गीत बनाया, गाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल-बालाओ,
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई, आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,
दो अहो! नव्यता और भव्यता पाओ।
लो, मेरा नागर भाव भेंट जो लाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

सब ओर लाभ ही लाभ बोध-विनिमय में,
उत्साह मुझे है विविध वृत्त-संचय में।
तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में।
निकले फूलों का रंग, ढंग से ताया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

[साकेत]

(3) नहुष का पतन

मस्त-सा नहुष चला बैठ ऋषियान में,
व्याकुल-से देव चले साथ में, विमान में।
पिछड़े तो वाहक विशेषता से भार की,
आरोही अधीर हुआ प्रेरणा से मार की।

"दीखता है कठिन मुझे तो मार्ग कटना,
यह बढ़ना है तो कहूँ मैं किसे हटना ?
बस क्या यही है बस, बैठ विधियाँ गढ़ो ?
अश्व से अड़ो न अरे, कुछ तो बढ़ो।"

बार-बार कन्धे फेरने को, ऋषि अटके,
आतुर हो राजा ने सरोष पैर पटके।
क्षिप्त पद हाय ! एक ऋषि को जो जा लगा,
सातों ऋषियों में महा क्षोभानल आ जगा !

"भार वहें, बातें सुनें, लातें भी सहें क्या हम ?
तु ही कह क्रूर, मौन अब भी रहें क्या हम ?
पैर था या साँप यह, डँस गया संग ही,
पामर, पतित हो तू होकर भुजंग ही !"

राजा हततेज हुआ शाप सुनते ही काँप,
पीकर जगा गया हो जैसे उसे पीना-साँप !
श्वास टूटने-सी मुख-मुद्रा हुई विकला,
"हा! यह हुआ क्या ?" यही व्यग्र वाक्य निकला।

जड़ सा सचिन्त वह नीचा सिर करके,
पालकी का नाल, डूबते का तृण धर के।
शून्य-पट-चित्र हुआ घुलता-सा वृष्टि से।
देखा फिर उसने समक्ष शून्य दृष्टि से।

दीख पड़ा उसको न जाने क्या समीप-सा,
चौंका एक साथ वह बुझता प्रदीप-सा–
"संकट तो संकट, परन्तु यह भय क्या ?
दूसरा सृजन नहीं मेरा एक लय क्या ?"

सँभला अदम्य मानी खींचकर ढीले अंग—
"कुछ नहीं, स्वप्न था सो हो गया भला ही भंग।
कठिन कठोर सत्य! तो भी शिरोधार्य है,
शान्त हों महर्षि, मुझे शाप अंगीकार्य है।"

दुःख में भी राजा मुसकाया पूर्व-दर्प से—
"मानते हो तुम अपने को डँसा सर्प से।
होते ही परन्तु पटस्पर्श भूल-चूक से,
मैं भी क्या डँसा नहीं गया हूँ दन्दशूक से

मानता हूँ भूल हुई खेद, मुझे इसका,
सौंपे वही कार्य उसे धार्य हो जो जिसका।
स्वर्ग से पतन, किन्तु गोत्रिणी की गोद में,
और जिस जोन में जो, सो उसी में मोद में।

काल गतिशील, मुझे लेके नहीं बैठेगा,
किन्तु उस जीवन में विष घुस पैठेगा।
तो भी खोजने का कुछ कष्ट जो उठावेंगे,
विष में भी अमृत छिपा वे कृती पावेंगे।

मानता हूँ, आड़ ही ली मैंने स्वाधिकार की,
मूल में तो प्रेरणा थी काम के विकार की।
माँगता हूँ आज मैं शची से भी खुली क्षमा,
विधि से बहिर्गता भी साध्वी वह ज्या रमा।

मानता हूँ, भूल गया नारद का कहना—
"दैत्यों से बचाए यह भोगधाम रहना।"
आ घुसा असुर हाय! मेरे ही हृदय में,
मानता हूँ आप लज्जा पाप-अविनय में।

मानता हूँ और सब, हार नहीं मानता,
अपनी अगति नहीं आज भी मैं जानता।
आज मेरा भुक्तोज्झित हो गया है स्वर्ग भी,
लेके दिखा दूँगा कल मैं ही अपवर्ग भी।

तन जिसका हो मन और आत्मा मेरा है,
चिन्ता नहीं बाहर उजेला या अँधेरा है।
चलना मुझे है, बस अन्त तक चलना,
गिरना ही मुख्य नहीं, मुख्य है सँभलना।

गिरना क्या उसका उठा ही नहीं जो कभी ?
मैं ही तो उठा था आप गिरता हूँ जो अभी।
फिर भी उठूंगा और बढ़के रहूँगा मैं,
नर हूँ, पुरुष हूँ मैं, चढ़के रहूँगा मैं,

चाहे जहाँ मेरे उठने के लिए ठौर है,
किन्तु लिया आज मैंने भार कुछ और है।
उठना मुझे ही नहीं एकमात्र रीते हाथ,
मेरी देवता भी और ऊँची उठे मेरे साथ।''

[नहुष]

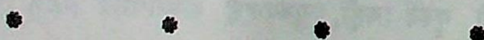
(4) आशा

बीती नहीं यद्यपि अभी तक है निराशा की निशा--
है किन्तु आशा भी कि होगी दीप्त फिर प्राची दिशा।
महिमा तुम्हारी ही जगत में धन्य आशे ! धन्य है,
देखा नहीं कोई कहीं अवलम्ब तुम-सा अन्य है।

आशे, तुम्हारे ही भरोसे जी रहे हैं हम सभी,
सब कुछ गया पर हाय रे ! तुम को न छोड़ेंगे कभी।
आशे, तुम्हारे ही सहारे टिक रही है यह मही,
धोखा न दीजो अन्त में, बिनती हमारी है यही।

यद्यपि सफलता की अभी तक सरसता चक्खी नहीं,
हम किन्तु जान रहे कि वह श्रम के बिना रक्खी नहीं।
यद्यपि भयंकर भाव से छायी हुई है दीनता—
कुछ-कुछ समझने हम लगे हैं किन्तु अपनी हीनता।

यद्यपि अभी तक स्वार्थ का साम्राज्य हम पर है बना—
पर दीखते हैं साहसी भी और कुछ उन्नतमना।
बन कर स्वयं सेवक सभी के जो उचित हित कर रहे,
होकर निछावर देश पर जो जाति पर हैं मर रहे।



प्राचीन और नवीन अपनी सब दशा आलोच्य है,
अब भी हमारी अस्ति है यद्यपि अवस्था शोच्य है।
कर्तव्य करना चाहिए, होगी न क्या प्रभु की दया,
सुख-दुःख कुछ हों, एक-सा ही सब समय किसका गया।

['पुष्करिणी' से
संपादक : अज्ञेय]

(5) अन्ध कुणाल

हे अवनि और अम्बर, प्रणाम;
करता हूँ सब से राम-राम।

हे रवि-शशि-ग्रह-तारक-समाज,
हे वर्ण-वर्ण के साज बाज,
लेता हूँ सब से बिदा आज,
रहा हरा-भरा तू धरा-धाम,
करता हूँ सब से राम-राम।

हे हृद-नद-निर्झर, धरे वेत्र,
हे वन-उपवन, हे हरे क्षेत्र,
रह जायँ रिक्त ये भरे नेत्र,
तुम भरे रहो चिर सरस-श्याम,
करता हूँ सब से राम-राम।

हे सान्ध्य वृष्टि-घन, मधुर मन्द्र,
शुभ शरन्निशा के कुमुद चन्द्र,
मधु के प्रभात-अम्बुज अतन्द्र,
लूँ मैं किस-किस का आज नाम ?
करता हूँ सब से राम-राम।

बाहर से कुछ दीखे न आज,
सब रहे किन्तु भीतर विराज।
रम रहा व्यक्ति में ज्यों समाज,
तुम जागो मुझ में अष्ट याम,
करता हूँ सब से राम-राम।

अवलोक लोक-सौन्दर्य-सृष्टि,
हो गयी कृतार्थ कुणाल-दृष्टि,
सब संसृति पर हो अमृत-वृष्टि,
गूँजे घर-घर में तीन ग्राम ;
करता हूँ सब से राम-राम।

छोड़े मैंने मणि-रत्न आज,
चुक गये स्वयं वे यत्न आज,
पर मेरा कौन सपत्न आज ?
मैं दक्षिण हूँ विधि रहे वाम।
करता हूँ सबसे राम-राम !

दीखे न भले ही रूप-रंग,
आने दो द्विज ! निज ध्वनि-तरंग,
श्रुति में ही दर्शन के प्रसंग,
निष्काम आप ही पूर्ण काम !
करता हूँ सब से राम-राम !

निर्मुक्त हुई यह आज सीप
तुम जलो न मेरे अर्थ दीप !
झुलसें न शलभ आ कर समीप;
मेरी निशि में सब लें विराम।
करता हूँ सब से राम-राम !

रामनरेश त्रिपाठी

विधवा का दर्पण

एक आले में दर्पण एक किसी प्रणयी के सुख का सखा,
किसी के प्रियतम का स्मृति-चिह्‌न, किन्हीं सुन्दर हाथों का रखा,
धूल की चादर से मुँह ढाँक पड़ा था भार लिये मन का,
मूक भाषा में हाहाकार मचा था उनके क्रन्दन का।

दीमकों ने उसके सब ओर कोर कर अपनी मनोव्यथा,
बना दी थी उस आदरहीन दीन की अतिशय करुण कथा,
मकड़ियाँ उस पर जाले तान ग्लान कर मुख की सुन्दरता।
दिखाती थीं करके विस्तार रूप-मद का क्षण-भंगुरता।

मुकुर यों कहने लगा सशोक रोक कर मेरी मुक्ति-गति को;
मनुज का मिथ्या है अभिमान जानकर मेरी दुर्गति को।
कभी दिन मेरे भी थे, हाय ! मुझे लेकर प्रिय ने कर में,
प्रियतमा को था अर्पण किया रीझ कर उस सूने घर में।

देखने को उसके अनमोल माल पर लोलुपता लट की,
रसीली चितवन का उन्माद, मनोहरता मुसकाहट की,
प्रियतमा ने पाकर एकान्त चूम कर हर्ष मनाया था—
जान कर प्रियतम की प्रिय वस्तु हृदय से मुझे लगाया था।

एक मुग्धा के कोमल हाथ पोंछते थे मेरे मुख को,
हार पहनाते थे कर प्यार-कहूँ मैं कैसे उस सुख को।
कामिनी कर के जब शृंगार पास प्रियतम के जाती थी,
प्रथम मेरी अनुमति के लिए निकट मेरे नित आती थी।

सभी अंगों में उसके नित्य छलकता था मद यौवन का,
अजब था रंग प्रेम से तृप्त अधखुले पंकज-लोचन का।
अधर पर उसके मृदु मुसकान निरन्तर क्रीड़ा करती थी,
दृगों में प्रियतम की छवि नित्य बिना विश्राम विचरती थी।

दूध की सरिता-सी अति शुभ्र पंक्ति थी दाँतों की ऐसी,
जुड़ी हो तारापति के पास सभा ताराओं की जैसी।
मनोहर उसका अनुपम रूप हृदय प्रियतम का हरता था।
जभी मिलती थी मैं जी खोल प्रशंसा उसकी करता था।

कभी प्राणेश्वर के गल-बाँह डालकर वह मुसकाती थी,
गाल से प्रिय का कन्धा दाब खड़ी फूली न समाती थी।
कराती थीं मुझसे वह न्याय-मुकुर ! निष्पक्ष सदा तुम हो,
अधिक किसके मन में है प्रेम, हमारी आँखें देख कहो।'

गर्व उसका सुन अधर, कपोल चिबुक को अगणित चुम्बन से,
तृप्त कर प्रणयी निज सर्वस्व वारता था विमुग्ध मन से।
देखता था मैं नित यह दृश्य मुझे निद्रा कब आती थी ?
हृदय मेरा खिल उठता था सामने वह जब आती थी।

हृदय था उसका ऐसा सरल प्रकृति में भी सुन्दरता।
वसन तन-वदन देख कर मलिन कभी मैं निन्दा भी करता,
मानती थी न बुरा तिल-मात्र, न आलस या हठ करती थी;
स्वच्छ सुन्दर बनकर तत्काल देखकर मुझे निरखती थी।

काम में रहती थी निज व्यस्त, न वह क्षणभर अलसाती थी,
ध्यान में प्रियतम के निज मस्त इधर जब आती-जाती थी।
ठहर कर आँचल से मुँह पोंछ प्यार से देख विहँसती थी,
देखती भी आँखों में मूर्ति प्राणधन की जो बसती थी !

रहे थोड़े ही दिन इस भाँति परम सुख से दोनों घर में, ।
अचानक यह सुन पड़ी पुकार राष्ट्रपति की स्वदेश-भर में,
"कष्ट अब पर-पद-दलित स्वदेश-भूमि में अन्तिम सहने को;
चलो, वीरो, बनकर स्वाधीन जगत में जीवित रहने को।'
प्रियतमा का वह प्राणाधार मनस्वी युवकों का नेता—
राष्ट्रपति की पुकार को व्यर्थ भला वह क्यों जाने देता ?
बड़ा भावुक था उसका हृदय निरन्तर मग्न वीर-रस में,
देश पर मरने का उत्साह भरा था उसकी नस-नस में।

सुखों का वन्धन क्षण में तोड़ देश के प्रति अति आदर से,
राष्ट्रपति की पुकार पर वीर प्रथम वह निकला था गर से।
तभी से वह अबला दिन-रात घोर चिन्ता में बहती थी;
विजय की खबरों को दे कान प्रतीक्षा में नित रहती थी।

एक दिन बड़े हर्ष के साथ राष्ट्रपति ने स्वदेश-भर में
घोषणा की कि 'वीर ने घोर युद्ध कर भीषण समर में,
विजय हम सबको देकर पूर्ण, चूर्ण कर रिपुओं के मद को,
छोड़ कर यह नश्वर संसार प्राप्त कर लिया परम पद को।'

उसी दिन उसी घड़ी से, हाय! न मैंने फिर उसको देखा।
छिप गई कहाँ अचानक, हाय! रूप की वह अनुपम रेखा!
न तब से फिर आयी इस ओर भूल करके भी वह बाला,
पवन ने मेरे मुँह पर धूल झोंक अन्धा भी कर डाला।

दुलारों में नित पली हुई प्रेम की प्रतिमा वह प्यारी,
खिलौना इस घर की वह, हाय, ! कहाँ है सरला सुकुमारी!
अरे! मेरी यह दीन पुकार कहीं यदि सुनता हो कोई,
मुझे दिखला दे मेरा प्राण-जगा दे फिर क़िस्मत सोयी!

नहीं तो कर दे कोई मुक्त विरह-ज्वर से सत्वर मुझको।
मिटा दे मेरा यह अस्तित्व पटक कर पत्थर पर मुझको।
न जाने कब से चिन्ता-मग्न, विरह-विधुरा, भूखी-प्यासी,
कहाँ होगी वह विह्वल, व्यथित, हाय! करुणा की कविता-सी!

जयशंकर प्रसाद

1. चिन्ता

(1)

हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष, भीगे नयनों से
देख रहा था, प्रलय प्रवाह !

(2)

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था एक सघन,
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।

(3)

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान;
नीरवता सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।

(4)

तरुण तपस्वी-सा वह बैठा,
साधन करता सुर-श्मशान,
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का,
होता था सकरुण अवसान।

(5)

उसी तपस्वी से लम्बे, थे
देवदारु दो चार खड़े;
हुए हिम-धवल, जैसे पत्थर
बन कर ठिठुरे रहे अड़े।

(6)

अवयव की दृढ़ मांस-पेशियां,
उर्जस्वित था वीर्य्य अपार;
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार ।

(7)

चिंता-कातर बदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत-प्रोत;
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत ।

(8)

बँधी महा-बट से नौका थी;
सूखें में अब पड़ी रही;
उतर चला था वह जल-प्लावन,
और निकलने लगी मही ।

(9)

निकल रही थी मर्म वेदना,
करुणा विकल कहानी सी;
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही,
हँसती सी पहचानी सी ।

(10)

'ओ' चिंता की पहली रेखा,
"अरी विश्व वन की व्याली;
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप सी मतवाली ।

(11)

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा ।
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
जल—माया की चल रेखा ।

(12)

इस ग्रह कक्षा की हलचल ! री
तरल गरल की लघु लहरी;
जरा अमर जीवन की, और न
कुछ सुनने वाली बहरी ।

(13)

अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी
अरी आधि, मधुमय अभिशाप ।
हृदय-गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप ।

(14)

मनन करावेगी तू कितना ?
उस निश्चित जाति का जीव,
अमर मरेगा क्या ? तू कितनी
गहरी डाल रही है नीव ।

(15)

बुद्धि, मनीषा, मति आशा, चिंता
तेरे हैं कितने नाम ।
अरी पाप है तू, जा, चल, जा
यहाँ नहीं कुछ तेरा काम ।

(16)

विस्मृति आ, अवसाद घेर ले,
नीरवते ! बस चुप कर दे ;
चेतनता चल जा, जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे ।"

(17)

"चिन्ता करता हूँ मैं जितनी
उस अतीत की, उस सुख की;
उतनी ही अनन्त में बनती
जाती रेखाएँ दुख की ।

(18)

आह सर्ग के अग्रदूत ! तुम
असफल हुए विलीन हुए।
भक्षक या रक्षक, जो समझो,
केवल अपने मीन हुए।

(19)

मणि-दीपों के अन्धकारमय
अरे निराशापूर्ण भविष्य
देव-दम्भ के महा मेघ में
सब कुछ ही बन गया हविष्य।

(20)

अरे अमरता के चमकीले
पुतलो ! तेरे वे जय नाद;
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि
बन कर मानो दीन विषाद।

(21)

वे सब डूबे डूबा उनका
विभव, बन गया पारावार;
उमड़ रहा है देव सुखों पर
दुःख जलधि का नाद अपार।"

(22)

"वह उन्मुक्त विलास हुआ क्या ?
स्वप्न रहा या छलना थी।
देव सृष्टि की सुख विभावरी
ताराओं की कलना थी।

(23)

चलते थे सुरभित अंचल से
जीवन के मधुमय निश्वास।
कोलाहल में मुखरित होता
देव जाति का सुख-विश्वास।

(24)

सब कुछ थे स्वायत्त, विश्व के
बल, वैभव, आनन्द अपार,
उद्वेलित लहरों से होता, उस
समृद्धि का सुख-संचार।

(25)

स्वयं देव थे हम सब, तो फिर
क्यों न विशृंखल होती सृष्टि।
अरे अचानक हुई इसी से
कड़ी आपदाओं की वृष्टि

(26)

गया, सभी कुछ गया, मधुरतम
सुर बालाओं का शृंगार;
उषा ज्योत्स्ना सा, यौवन-स्मित,
मधुप सदृश निश्चित विहार।

(27)

भरी वासना-सरिता का वह
कैसा था मदमत्त प्रवाह,
प्रलय-जलधि में संगम जिसका
देख हृदय था उठा कराह।"

(28)

"चिर किशोर-वय, नित्य विलासी,
सुरभित जिससे रहा दिगंत;
आज तिरोहित हुआ कहाँ वह
मधु से पूर्ण अनंत वसंत ?

(29)

कुसुमित कुंजों में वे पुलकित
प्रेमालिंगन हुए विलीन,
मौन हुई है मूर्च्छित तानें
और न सुन पड़ती अब बीन।

(30)

अब न कपोलों पर छाया सी
पड़ती मुख की सुरभित भाप;
भुज मूलों में, शिथिल वसन की
व्यस्त न होती है अब माप।

(31)

कंकण क्वणित, रणित नूपुर थे,
हिलते थे छाती पर हार;
मुखरित था कलरव, गीतों में
स्वर लय का होता अभिसार।

(32)

सौरभ में दिगंत पूरित था,
अंतरिक्ष आलोक-अधीर
सब में एक अचेतन गति थी,
जिससे पिछड़ा रहे समीर।

(33)

सुरा सुरभिमय वदन अरुण वे
नयन भरे आलस अनुराग;
कल कपोल था जहाँ बिछलता
कल्पवृक्ष का पीत पराग।

(34)

विकल वासना के प्रतिनिधि वे
सब मुरझाये चले गये;
आह ! जले अपनी ज्वाला से,
फिर वे जल में गल गये !"

(35)

"अरी उपेक्षा-भरी अमरते।
री अतृप्ति ! निर्बाध विलास
द्विधा-रहित अपलक नयनों की
भूख भरी दर्शन की प्यास।

(36)

बिछुड़े तेरे सब आलिंगन,
पुलक स्पर्श का पता नहीं;
मधुयम चुंबन कातरतायें
आज न मुख को सता रहीं।

(37)

रत्न सौध के वातायन, जिनमें
आता मधु-मदिर समीर;
टकराती होगी अब उनमें
तिमिंगलों की भीड़ अधीर।

(38)

देव-कामिनी के नयनों से
जहाँ नील नलिनों की सृष्टि।
होती थी, अब वहाँ हो रही
प्रलयकारिणी भीषण वृष्टि।

(39)

देव-यजन के पशु यज्ञों की
वह पूर्णाहुति की ज्वाला,
जलनिधि में बन जलती कैसी
आज लहरियों की माला।

(40)

उनको देख कौन रोया यों
अंतरिक्ष में बैठ अधीर।
व्यस्त बरसने लगा अश्रुमय
यह प्रालेय हलाहल नीर।

(41)

हा—हा—कार हुआ क्रन्दन मय
कठिन कुलिश होते थे चूर;
हुए दिगंत बधिर, भीषण रव
बार-बार होता था क्रूर।

(42)

पंचभूत का भैरव मिश्रण,
शंपाओं के शकल—निपात,
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ
खोज रही ज्यों खोया पात।

(43)

बार—बार उस भीषण रव से
कँपती धरती देख विशेष,
मानो नील व्योम उतरा हो
आलिंगन के हेतु अशेष।

(44)

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी;
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों सी।

(45)

बढ़ने लगा विलास वेग सा
वह अति भैरव जल संघात;
तरल तिमिर से प्रलय पवन का
होता आलिंगन, प्रतिघात।

(46)

करका क्रन्दन करती गिरती
और कुचलना था सब का;
पंचभूत का यह तांडवमय
नृत्य हो रहा था कब का।"

(47)

"एक नाव थी, और न उसमें
डाँड़े लगते, या पतवार;
तरल तरंगों में उठ गिर कर
बहती पगली बारम्बार।

(48)

लगते प्रबल थपेड़े, धुंधले
तट का था कुछ पता नहीं ;
कातरता से भरी निराशा
देख नियति पथ बनी वही।

(49)

लहरें व्योम चूमती उठती ;
चपलाएँ असंख्य नचती।
गरल जलद की खड़ी झड़ी में
बूंदें निज संसृति रचती।

(50)

चपलाएँ उस जलधि विश्व में
स्वयं चमत्कृत होती थीं।
जो विराट बाड़व ज्वालाएँ
खंड-खंड हो रोती थीं।

(51)

घनीभूत हो उठे पवन, फिर
श्वासों की गति होती रुद्ध ;
और चेतना थी बिलखाती,
दृष्टि विकल होती थी क्रुद्ध।

(52)

उस विराट आलोड़न में, ग्रह
तारा बुद-बुद से लगते।
प्रखर प्रलय पावस में जगमग,
ज्योतिरिंगणों से जगते।

(53)

प्रहर दिवस कितने बीते, अब
इसको कौन बता सकता।
इनके सूचक उपकरणों का
चिह्न न कोई पा सकता।

(54)

काला शासन चक्र मृत्यु का
कब तक चला न स्मरण रहा,
महा मत्स्य का एक चपेटा
दीन पोत का मरण रहा।

(55)

किन्तु उसी ने ला टकराया
इस उत्तर-गिरि के शिर से,
देव सृष्टि का ध्वंस अचानक
श्वास लगा लेने फिर से।

(56)

आज अमरता का जीवित हूँ
मैं यह भीषण जर्जर दम्भ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का
प्रथम पात्र भय सा विष्कंभ।"

(57)

"ओ जीवन की मरु मरीचिका,
कायरता के अलस विषाद।
अरे पुरातन अमृत! अगतिमय
मोहमुग्ध जर्जर अवसाद।

(58)

मृत्यु, अरी चिर-निद्रे! तेरा
अंक हिमानी-सा शीतल,
तू अनंत में लहर बनाती
काल-जलधि की-सी हलचल।

(59)

महानृत्य का विषम सम, अरी
अखिल स्पंदनों की तू माप,
तेरी ही विभूति बनती है
सृष्टि सदा होकर अभिशाप।

(60)

अंधकार के अट्टहास सी,
मुखरित सतत चिरंतन सत्य,
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू,
यह सुन्दर रहस्य है नित्य।

(61)

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घन-माला में,
सौदामिनी—संधि सा सुन्दर
क्षण भर रहा उजाला में।"

(62)

पवन पी रहा था शब्दों को
निर्जनता की उखड़ी सांस,
टकराती थी, दीन प्रतिध्वनि
बनी हिमशिलाओं के पास।

(63)

धू-धू करता नाच रहा था
अनस्तित्व का तांडव नृत्य ;
आकर्षण विहीन विद्युत्कण
बने भारवाही थे भृत्य।

['कामायनी से']

2. आँसू

बस गई एक बस्ती है स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र—लोक फैला है जैसे इस नील निलय में। 1

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिन्ह हैं केवल मेरे उस महा मिलन के। 2

शीतल ज्वाला जलती है ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ सांस चल-चलकर करती है काम अनिल का। 3

वाडवज्वाला सोती थी इस प्रणय-सिन्धु के तल में
प्यासी मछली-सी आँखें थीं विकल रूप के जल में ।4

बुलबुले सिन्धु के फूटे नक्षत्र-मालिका टूटी
नभ-मुक्त-कुन्तला धरिणी दिखलाई देती लूटी । 5

इस विकल वेदना को ले किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिंचन बेसुध चैतन्य हमारा । 6

अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना भीगी पलकों का लगना । 7

इस हृदय-कमल का घिरना अलि-अलकों की उलझन में
आँसू मरन्द का गिरना मिलना निश्वास पवन में । 8

मादक थी मोहमयी थी मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है वह मधुर प्रेम की पीड़ा । 9

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई । 10

रो-रोकर सिसक-सिसक कर कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते करते जानी अनजानी । 11

मैं बल खाता जाता था मोहित बेसुध बलिहारी
अन्तर के तार खिंचे थे तीखी थी तान हमारी । 12

झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी, नीरद माला
पाकर इस शून्य हृदय को सब ने आ डेरा डाला । 13

तुम सत्य रहे चिर सुन्दर मेरे इस मिथ्या जग के
थे केवल जीवन-संगी कल्याण कलित इस मग के । 14

गौरव था, नीचे आये प्रियतम मिलने को मेरे
मैं इठला उठा अकिंचन, देखा ज्यों स्वप्न सबेरे । 15

मधु राका मुस्क्याती थी पहले देखा जब तुमको
परिचित-से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको । 16

परिचय राका जलनिधि का जैसे होता हिमकर से
ऊपर से किरणें आतीं मिलती हैं गले लहर से । 17

मैं अपलक इन नयनों से निरखा करता उस छवि को
प्रतिमा डाली भर लाता कर देता दान सुकवि को। 18

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे, सूखी सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी में। 19

शशि-मुख पर घूंघट डाले अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये। 20

घन में सुन्दर बिजली-सी बिजली में चपल चमक-सी
आँखों में काली पुतली पुतली में श्याम झलक सी। 21

प्रतिमा में सजीवता सी बस गई सुछवि आँखों में
थी एक लकीर हृदय में जो अलग रही लाखों में। 22

माना कि रूप सीमा है सुन्दर तब चिर यौवन में
पर समा गये थे, मेरे मन के निस्सीम गगन में। 23

लावण्य-शैल राई सा जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की सुषमा थी प्यारी-प्यारी। 24

बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से। 25

काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली
मानिक-मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली? 26

विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे
है हंस न, शुक यह फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसी? 27

विकसित सरसिज-बन वैभव मधु-उषा के अंचल में
उपहास करावे अपना जो हँसी देख ले पल में? 28

मुख-कमल समीप सजे थे दो किसलय से पुरइन के
जल बिन्दु सदृश ठहरे कब उन कानों में दुख किनके। 29

चंचला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी। 30

छलना थी, तब भी मेरी उसमें विश्वास घना था
उस माया की छाया में कुछ सच्चा स्वयं बना था। 31

वह रूप गर्व था केवल या हृदय रहा भी उसमें
जड़ता की सब माया थी चैतन्य समझकर मुझमें। 32

मेरे जीवन की उलझन बिखरी थी उनकी अलकें
पी ली मधु मदिरा किसने थीं बन्द हमारी पलकें? 33

विष प्याली जो पी ली थी वह मदिरा बनी नयन में
सौन्दर्य पलक प्याले का अब प्रेम बना जीवन में। 34

मादकता से आये तुम संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते, थे उतरे हुए नशे से। 35

नाविक! इस सूने तट पर किन लहरों में खे लाया
इस बीहड़ बेला में क्या अब तक था कोई आया। 36

उस पार कहाँ फिर जाऊँ तम के मलीन अंचल में
जीवन का लोभ नहीं, वह वेदना छद्म-मय छल में। 37

प्रत्यावर्तन के पथ में पद-चिन्ह न शेष रहा है
डूबा है हृदय मरुस्थल आँसू नद उमड़ रहा है। 38

चमकूँगा धूल कणों में सौरभ हो उड़ जाऊँगा
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो ग्रह-पथ में टकराऊँगा। 39

सब सुमन मनोरथ अंजलि बिखरा दी इन चरणों में
कुचलो न कीट सा इनके कुछ है मकरन्द कणों में। 40

दुख-सुख में उठता गिरता संसार तिरोहित होगा
मुड़ कर न कभी देखेगा किसका हित अनहित होगा। 41

मानव जीवन वेदी पर परिणय हो विरह-मिलन का
दुःख-सुख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का मन का। 42

['आँसू' से]

3. ले चल वहाँ

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक! धीरे-धीरे?

जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी....
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे!

जहाँ साँझ-सी जीवन छाया,
ढो ले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँति घनी रे

जिस गम्भीर मधुर छाया में····
विश्व-चित्र-पट चल माया में····
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई,
दुख-सुख वाली सत्य बनी रे !

श्रम-विश्राम क्षितिज-बेला से····
जहाँ सृजन करते मेला····
अमर जागरण उषा नयन से····
बिखराती हो ज्योति घनी रे···· ।

4. मधुमय देश

अरुण यह मधुमय देश हमारा ।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को, मिलता एक सहारा ।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर ।
छिटका जीवन हरियाली पर—मंगल कुंकुम सारा ।
लघु सुरधनु से पंख पसारे—शीतल मलय समीर सहारे ।
उड़ते खग जिस ओर मुंह किये—समझ नीड़ निज प्यारा ।
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा-जल ।
लहरें टकरातीं अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा ।
हेम कुम्भ से उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे ।
मदिर ऊँघते रहते जब—जग कर रजनीभर तारा ।
अरुण यह मधुमय देश हमारा !

5. श्रद्धा का गीत

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन !

विकल होकर नित्य चंचल,
खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक-सी रही तब,
मैं मलय की बात रे मन !

चिर-विषाद, विलीन मन की,
इस व्यथा के तिमिर-वन की,
मैं उषा-सी ज्योति-रेखा,
कुसुम-विकसित प्राप्त रे मन ! प्रात

जहाँ मरु-ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवन घाटियों की,
मैं सरस बरसात रे मन !

पवन की प्राचीर में रुक,
जला जीवन जी रहा झुक,
इस झुलसते विश्व दिन की,
मैं कुसुम-ऋतु-रात रे मन !

चिर-निराशा नीरधर से
प्रतिच्छायित अश्रु-सर में,
मधुप मुखर मरन्द मुकुलित,
मैं सजल ज़लजात रे मन !

6. सुवासिनी का गीत

तुम कनक-किरण के अन्तराल में
लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?
नत-मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन, रस कन ढरते,
हे लाज-भरे, सौन्दर्य !
बता दो मौन बने रहते हो क्यों ?
अधरों के मधुर कगारों में
कल-कल ध्वनि की गुंजारों में
मधुसरिता-सी यह हँसी,
तरल अपनी पीते रहते हो क्यों ?
बेला विभ्रम की बीत चली,
रजनीगन्धा की कली खिली,
अब सान्ध्य-मलय आकुलित
दुकूल-कलित हो, यों छिपते हो क्यों ?

7. पेशोला की प्रतिध्वनि

करुण करुण विम्ब !
यह निर्धूम भस्म रहित ज्वलन-पिण्ड !
विकल विवर्तनों से
विरल प्रवर्तनों में
श्रमित नमित सा—
पश्चिम के व्योम में है आज निरलम्ब-सा।
आहुतियाँ विश्व की अजस्र से लुटाता रहा—
सतत सहस्र कर-माल से—
तेल ओज बल जो वदान्यता कदम्ब-सा।
पेशोला की उर्मियाँ हैं शान्त, घनी छाया में—
तट-तरु है चित्रित तरल चित्रसारी में।
झोपड़े खड़े हैं बने शिल्प से विषाद के
दग्ध अवसाद से।
धूसर जलद-खंड भटक पड़े हैं,
जैसे विजन अनन्त में।
कालिमा बिखरती संध्या के कलंक-सी
दुन्दुभि-मृदंग-तूर्य शान्त, स्तब्ध मौन हैं।
फिर भी पुकार-सी है गूंज रही व्योम में-
"कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
दुर्बलता इस अस्थिमांस की—
ठोंक कर लोहे से, परख कर वज्र से,
प्रलयोल्का—खण्ड के निकष पर कस कर
चूर्ण अस्थि-पुंज-सा हँसेगा अट्टहास कौन ?
साधना पिशाचों की बिखर चूर-चूर हो के
धूलि-सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से।
कौन लेगा भार यह ?
जीवित है कौन ?
साँस चलती है किसकी
कहता है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ—
—मैं हूँ—मेवाड़ में

आरावली शृंग-सा समुन्नत सिर किसका ?
बोलो, कोई बोलो अरे क्या तुम सब मृत हो ?
आह, इस खेवा की ।—
कौन थामता है पतवार ऐसे अन्धड़ में ।
अन्धकार—पारावार गहन नियति सा—
उमड़ रहा है ज्योति-रेखा-हीन क्षुब्ध हो ।
खीच ले चला है—
काल-धीवर अनन्त में
साँस सफरी-सी अटकी है किसी आशा में ।
आज भी पेशोला के—
तरल जल-मण्डलों में
वही शब्द घूमता सा—
गूँजता विकल है ।
किन्तु वह ध्वनि कहाँ ?
गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़ !
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ ?

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

1. जुही की कली

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी—स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु-तरुणी—जुही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल—पत्रांक में,
वासन्ती निशा थी,
विरह-विधुर-प्रिया संग छोड़,
किसी दूर देश में था पवन,
जिसे कहते हैं मलयानिल।

आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आयी याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आयी याद कान्ता की कंपित कमनीय गात,
फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन
कुंज-लता-पुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली-खिली-साथ।

सोती थी,
जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।
इस पर भी जागी नहीं,
चूक क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालय वंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही—
किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये,
कौन कहे ?

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि झोंकों की झाड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिए गोरे कपोल गोल;
चौंक पड़ी युवती,—
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज-पास,
नम्रमुखी हँसी-खिली,
खेल रंग,प्यारे-संग।

[निराला रचनावली से]

2. भिक्षुक

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी-भर दानें को—भूख मिटाने को
मुँहफटी-पुरानी झोली को फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।
भूख से सूख होठ जब जाते
दाता-भाग्यविधाता से क्या पाते ?—
घूंट आँसुओं के पीकर रह जाते।

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।
ठहरो, अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूंगा
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम,
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूंगा।

['निराला रचनावली' से]

3. तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर ;
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर ।

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार ;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार ;—
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार ।
चढ़ रही थी धूप ;
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप ;
उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगीं छा गयीं
प्रायः हुई दुपहर—
वह तोड़ती पत्थर ।
देखते देखा, मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्न-तार ;
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोयी नहीं ।
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार ।
एक छन के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
"मैं तोड़ती पत्थर ।"

[निराला रचनावली]

4. बादल राग

तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया—
यह तेरी रण-तरी,
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी-गर्जन से सजग, सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे, ऐ विप्लव के बादल !
फिर फिर

वार-बार गर्जन,
वर्षण है मूसलाधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र-हुंकार।
अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत-हत अचल-शरीर,
गगन-स्पर्शीस्पद्र्धा-धीर
हँसते हैं छोटे पौधे लघु-भार—
शस्य अपार,

हिल-हिल,
खिल-खिल
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।
अट्टालिका नहीं है रे
आतंक-भवन

सदा पंक पर ही होता जल-विप्लव-प्लावन,
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर,
रोगशोक में भी हँसता है शैशव का सुकुमार शरीर।
रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी

आतंक-अंक पर कांप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से, बादल !
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार !

['परिमल' से]

संध्या सुन्दरी

दिवसावसान का था समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर दोनों हैं उसके अधर,—
किन्तु जरा गम्भीर,—नहीं है उनमें हास-विलास
हँसता है तो केवल तारा एक
गुंथा हुआ उन घुंघराले काले-काले बालों से,
हृदयराज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह सी अम्बर पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग आलाप,
नूपुरों में भी रुनझुन रुनझुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा "चुप, चुप, चुप,"
है गूंज रहा सब कहीं—
व्योम-मण्डल में—जगतीतल में—
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में—

सौंदर्य गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में—
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में—
उत्ताल-तरंगाघात प्रलय घन गर्जन-जलधि प्रबल में—
क्षिति में-जल में नभ में अनिल-अनल में
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप, चुप, चुप"
है गूंज रहा सब कहीं,—
और क्या है ? कुछ नहीं ।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अंग पर अपने
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने,
अर्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग ।

['निराला रचनावली' से]

6. तुम और मैं

तुम तुंग-हिमालय-शृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता ।
तुम विमल-हृदय-उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी-कविता ;
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरा-पान-घन अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति ।
तुम दिनकर के खर किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुस्कान,
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान ;
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुराग निश्छल तप
मैं शुचिता सरल समृद्धि ।

तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजिनी भाषा;
तुम नन्दन-वन-घन-विटप
और मैं सुख शीतल-तल शाखा,
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनमोहिनी माया।

तुम प्रेममयी के कंठहार,
मैं वेणी काल-नागिनी,
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार,
मैं व्याकुल विरह-रागिनी।
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु,
तुम हो राधा के मनमोहन,
मैं उन अधरों की वेणु।

तुम पथिक दूर के श्रान्त
और मैं बाट जोहती आशा,
तुम भवसागर दुस्तर
पार जाने की मैं अभिलाषा।
तुम नभ हो, मैं नीलिमा,
तुम शरत-काल के बाल-इन्दु,
मैं हूँ निशीथ-मधुरिमा।

तुम गन्ध-कुसुम-कोमल पराग,
मैं मृदुगति मलय, समीर,
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष,
मैं प्रकृति, प्रेम-जंजीर।
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति,
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र,
मैं सीता अचला भक्ति।

तुम आशा के मधुमास
और मैं पिक-कल-कूजन-तान,
तुम मदन—पंच—शर-हस्त
और मैं हूँ मुग्धा अनजान।

तुम अम्बर, मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार, घन-पटल (—) श्याम,
मैं तड़ित तूलिका रचना।

तुम रण-तांडव-उन्माद (—) नृत्य,
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद-वेद (—) ओंकार (—) सार,
मैं कवि शृंगार (—) शिरोमणि।

तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति,
तुम कुन्द (—) इन्दु (—) अरविन्द शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

['निराला रचनावली' से]

7. मैं अकेला

मैं अकेला;
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।

पके आधे बाल मेरे;
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही,
हट रहा मेला।

जानता हूँ, नदी-झरने
जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देव,
कोई नहीं भेला।

['निराला रचनावली' से]

8. बाँधो न नाव

बाँधो न नाव इस ठाँव, बन्धु!
पूछेगा सारा गाँव, बन्धु!
यह घाट वही जिस पर हँस कर,
वह कभी नहाती थी धँस कर,
आँखें रह जाती थीं फँसकर,
काँपते थे दोनों पाँव बन्धु!

वह हँसी बहुत कुछ कहती थी,
फिर भी अपने में रहती थी,
सब की सुनती थी, सहती थी,
देती थी सबके दांव बन्धु !

['निराला रचनावली' से]

9. वर दे, वीणा वादिनि

वर दे ! वीणा वादिनि वरदे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मन्त्र नव भारत में भर दे !

काट अन्ध-उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर जगमग जग कर दे !
नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव,

नवल कंठ, नव जलद-मन्द्र रव,
नव नभ के नव विहग-वृन्द को नव पर, नव स्वर दे !

['निराला रचनावली' से]

सुमित्रानन्दन पंत

1. प्रथम रश्मि

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना !
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि ?
पाया तूने यह गाना ?

सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर
ऊँघ रहे थे, घूम द्वार पर
प्रहरी-से जुगनू नाना ;

शशि किरणों से उतर-उतर कर
भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल नवल कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे मुसकाना !

स्नेहहीन तारों के दीपक,
श्वास-शून्य थे तरु के पात,
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में,
तम ने था मण्डप ताना,

कूक उठी सहसा तरु-वासिनि,
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अन्तर्यामिनि,
बतलाया उसका आना ?

निकल सृष्टि के अन्ध गर्भ से
छाया-तन बहु छाया-हीन
चक्र रच रहे थे खल निशिचर
चला कुहुक टोना-माना;

छिपा रही थी मुख शशि बाला
निशि के श्रम से हो श्री-हीन,

कमल क्रोड़ में बन्दी था अलि,
कोक शोक से दीवाना !

मूर्छित थीं इन्द्रियाँ, स्तब्ध जग
जड़-चेतन सब एकाकार,
शून्य विश्व के उर में केवल
साँसों का आना-जाना;

तूने ही पहले बहु दर्शिनि,
गाया जागृति का गाना,
श्री-सुख सौरभ का, नभचारिणि,
गूँथ दिया ताना-बाना !

निराकार तम मानो सहसा
ज्योति-पुंज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत्-जाल में
धेर कर नाम-रूप नाना !

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम-अधरों पर,
हिल मोती का सा दाना !

खुले पलक, फैली सुवर्ण छबि
खिली सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पन्दन, कम्पन औ' नव जीवन
सीखा जग ने अपनाना;

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि,
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ-कहाँ, हे बाल-विहंगिनि ।
पाया यह स्वर्गिक गाना ?

[पंत 'ग्रन्थावली' से]

2. ताज

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !
स्फटिकसौध में हो श्रृंगार मरण का शोभन,
नग्न क्षुधातुर, वास-विहीन रहें जीवित जन ?

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान, प्रेत 'औ' छाया से रति !
प्रेम-अर्चना यही, करें हम मरण को वरण ?
स्थापित कर कंकाल, भरें जीवन का प्रांगण ?
शव को दें हम रूप, रंग, आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बनादें शव का ?
गत-युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर,
मानव के मोहान्ध हृदय में किए हुए घर !
भूल गए हम जीवन का सन्देश अनश्वर,
मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर !

['पंत ग्रन्थावली' से]

3. गीत विहग

मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता,
स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता,
मैं मन:क्षितिज के पार मौन शाश्वत की
प्रज्वलित भूमि का ज्योतिवाह बन आता !

युग के खण्डहर पर डाल सुनहली छाया,
मैं नव प्रभात के नभ में उठ, मुस्काता,
जीवन पतझर में जन-मन की डालों पर
मैं नव मधु के ज्वाला-पल्लव सुलगाता !

आवेशों से उद्वेलित जन-सागर में
नव स्वप्नों के शिखरों का ज्वार उठाता,
जब शिशिर-क्रांत, वन-रोदन करता भू मन,
युग पिक बन प्राणों का पावक बरसाता !
मिट्टी के पैरों से भव-क्लान्त जनों को
स्वप्नों के चरणों पर चलना सिखलाता,
तापों की छाया से कलुषित अन्तर को
उन्मुक्त प्रकृति का शोभा वक्ष दिखाता !

जीवन मन के भेदों में सोयी मति को
मैं आत्म-एकता में अनिमेष जगाता,
तम पंगु, बहिर्मुख जग में बिखरे मन को
मैं अन्तर सोपानों पर ऊर्ध्व चढ़ाता !

आदर्शों के मरु-जल से दग्ध मृगों को
मैं स्वर्गंगा स्मित अन्तर्पथ बतलाता,
जन-जन को नव मानवता में जाग्रत कर
मैं मुक्त-कण्ठ जीवन रण-शंख बजाता !

मैं गीत-विहग, निज मर्त्य नीड़ से उड़ कर
चेतना-गगन में मन के पर फैलाता,
मैं अपने अन्तर का प्रकाश बरसा कर
जीवन के तम को स्वर्णिम कर नहलाता !

मैं स्वर्दूतों को बाँध मनोभावों में
जन-जीवन का नित उनको अंग बनाता,
मैं मानव-प्रेमी, नव भू-स्वर्ग बसाकर
जन-धरणी पर देवों का विभव लुटाता !

मैं जन्म-मरण के द्वारों से बाहर कर
मानव को उसका अमरासन दे जाता,
मैं दिव्य चेतना का सन्देश सुनाता,
स्वाधीन भूमि का नव्य जागरण गाता !

['पंत ग्रन्थावली' से]

4. तप रे !

तप रे !
तप रे मधुर मधुर मन !

विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल, औ' कोमल,
तप रे मधुर मधुर मन !

अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन !

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गंध हीन तु; गंध युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन !
मूर्तिमान बन, निर्धन !

गल रे गल निष्ठुर मन !

['पंत ग्रन्थावली' से]

5. धेनुएँ

ओ रँभाती नदियो !
बेसुध
कहाँ भागी जाती हो ?
वंशी रव
तुम्हारे ही भीतर है !

ओ फेन गुच्छ
लहरों की पूँछ उठाये
दौड़ती नदियो

इस पार उस पार भी देखो
जहाँ फूलों के कूल
सुनहले धान के खेत हैं

कल-कल छल-छल
अपनी ही विरह-व्यथा
प्रीति कथा कहते
मत चली जाओ !

सागर ही तुम्हारा सत्य नहीं
वह तो गतिमय स्रोत की तरह
गतिहीन स्थिति भर है

तुम्हारा सत्य तुम्हारे ही भीतर है !
राशि का ही अनन्त
अनन्त नहीं
गुण का अनन्त
बूँद-बूँद में है !

जो दुध धार टपकाती
शुभ्र प्रेरणा धेनुओ !
तुम जिस वत्स के लिए
व्याकुल हा
वह मैं ही हूँ ।

मुझे अपना धारोष्ण प्रकाश
अनामय अमृत पिलाओ
अपनी शक्ति
अपना जव दो !

मुझे उस पार खड़ी
मानवता के लिए
सत्य का वोहित्थ
खेना है ।

ओ तट की सीमा में बहने वाली
सीमाहीन स्वोतस्विनियो !
मैं जल से ही
स्थल पर आया हूँ ।

['पंत ग्रंथावली' से]

महादेवी वर्मा

1. मैं नीर भरी दुख की बदली

मैं नीर भरी दुःख की बदली !
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !

मेरा पग—पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नव रंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली।

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन-अंकुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद—चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

[सांध्य गीत]

2. पंथ होने दो अपरिचित

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !
घेर ले छाया अमा बन,

आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन,
और होंगे नयन सूखे
तिल बुझे औ पलक रूखे,
आर्द्र चितवन में यहाँ
शत विद्युतों में दीप खेला !

अन्य होंगे चरण हारे,
और है जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे ;
दुखव्रती निर्माण उन्मद
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक-संसृति-
से तिमिर में स्वर्ण वेला !

दूसरी होगी कहानी
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी ;
आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट औ''
चिनगारियों का एक मेला !

हास का मधु-दूत भेजो,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो !
ले मिलेगा उर अचंचल,
वेदना-जल, स्वप्न-शतदल,
जान लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला !
पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला ।

[दीपशिखा]

3. मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा धुल रे मृदुमन !
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल !
पुलक पुलक मेरे दीपक जल !
सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला-कण ;
विश्वशलभ सिर धुन कहता मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल !'
सिहर-सिहर मेरे दीपक जल !
जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक;
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल !
विहँस-विहँस मेरे दीपक जल !
द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम;
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल !
बिखर बिखर मेरे दीपक जल !
मेरे निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;
मैं अंचल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल !
सहज-सहज मेरे दीपक जल !
सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल !

सजल सजल मेरे दीपक जल !
तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरन्तर,
तम के अणु-अणु में विद्युत सा—
अमिट चित्र अंकित करता चल !
सरल सरल मेरे दीपक जल !
तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुलखिल !
मदिर मदिर मेरे दीपक जल !
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

4. हे चिर महान् !

हे चिर महान् !
यह स्वर्णरश्मि छू श्वेत—भाल,
बरसा जाती रंगीन हास,
सेली बनता है इन्द्र धनुष,
परिमल मल मल जाता बतास !
पर रागहीन तू हिमनिधान।
नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिये है दीन क्षार,
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार !
कितने मृदु कितने कठिन प्राण !
टूटी है कब तेरी समाधि,
झंझा लौटे शत हार-हार,
बह चला दृगों से किन्तु नीर,
सुन कर जलते कण की पुकार !
सुख से विरक्त दुःख में समान !
मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप,

तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप !
उर में पावस दृग में विहान !

[सांध्यगीत]

5. कन-कन में जब छाई थी

कन-कन में जब छाई थी
वह नव यौवन की लाली,
मैं निर्धन तब आई ले,
सपनों से भर कर डाली।
जिन चरणों की नख-आभा—
ने हीरक-जाल लजाए
उन पर मैंने धुँधले से
आँसू दो-चार बहाए !
इन ललचायी पलकों पर
पहरा जब था व्रीडा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।
उन सोने के सपने को,
देखे कितने दिन बीते,
आँखों के कोष हुए हैं।
मोती बरसा कर रीते ॥
अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों का दीप जलाकार
करती रहती दीवाली।
मेरी आँहें सोती हैं
इन ओठों की ओटों में
मेरा सर्वस्व छिपा है,
इन दीवानी चोटों में,
चिन्ता क्या है हे निर्मम !
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अंधेरा ॥

रामधारी सिंह दिनकर

1. जनतंत्र का जन्म (26 जनवरी, 1950 ई०)

सदियों की ठंडी-बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है ;
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

जनता ? हाँ, मिट्टी की अबोध मूरतें वही,
जाड़े—पाले की कसक सदा सहने वाली,
जब अंग-अंग में लगे साँप हों चूस रहे,
तब भी न कभी मुँह खोल दर्द कहने वाली ।

जनता ? हाँ, लम्बी-बड़ी जीभ की वही कसम,
"जनता, सचमुच ही, बड़ी वेदना सहती है ।"
"सो ठीक, मगर, आखिर, इस पर जनमत क्या है ?"
"है प्रश्न गूढ़; जनता इस पर क्या कहती है ?"

मानो, जनता हो फूल जिसे एहसास नहीं,
जब चाहो, तभी उतार सजा लो दोनों में;
अथवा कोई दुधमुँही जिसे बहलाने के,
जंतर-मंतर सीमित हों चार खिलौनों में ।

लेकिन, होता भूडोल, बवण्डर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है;
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती,
साँसों के बल से ताज हवा में उड़ता है;
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ ?
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है ।

अब्दों, शताब्दियों सहस्राब्द का अन्धकार,
बीता; गवाक्ष अंबर के दहके जाते हैं;
यह और नहीं कोई, जनता के स्वप्न अजय,
चीरते तिमिर का वक्ष उमड़ते आते हैं।

सबसे विराट् जनतन्त्र जगत् का आ पहुँचा,
तैंतीस कोटि-हित सिंहासन तैयार करो ;
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो।

आरती लिए तू किसे ढूँढ़ता है मूरख,
मन्दिरों, राजप्रासादों, में, तहखानों में ?
देवता कहीं सड़कों पर मिट्टी तोड़ रहे,
देवता मिलेंगे खेतों में, खलिहानों में।

फावड़े और हल राजदण्ड बनने को है,
धूसरता सोने से शृंगार सजाती है,
दो राह समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

[नीलकुसुम]

2. अभिनव मनुष्य

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।
भोग-लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,
बह रही असहाय नर की भावना निष्काम।

भीष्म हों अथवा युधिष्ठिर, या कि हों भगवान,
बुद्ध हों कि अशोक, गांधी हों कि ईसु महान,
सिर झुका सबको, सभी को श्रेष्ठ निज से मान
मात्र, वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान,
दुग्ध कर पर को, स्वयं भी भोगता दुख-दाह,
जा रहा मानव चला अब भी पुरानी राह।

आज की दुनिया विचित्र, नवीन;
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन।

हैं बंधे नर के करों में वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढ़ता-उतरता है पवन का ताप।
हैं नहीं बाकी कहीं व्यवधान,
लाँघ सकता नर सरित, गिरि, सिन्धु एक समान।
शीश पर आदेश कर अवधार्य,
प्रकृति के सब तत्व करते हैं मनुज के कार्य।
मानते हैं हुक्म मानव का महा वरुणेश,
और करता शब्दगुण अम्बर वहन संदेश।
नव्य नर की मुष्टि में विकराल,
हैं सिमटते जा रहे प्रत्येक क्षण दिक्काल,
यह मनुज,
जिसका गगन में जा रहा है यान,
काँपते जिसके करों को देखकर परमाणु।
खोलकर अपना हृदयगिरि, सिन्धु, भू, आकाश,
हैं सुना जिसको चुके निज गुह्यतम इतिहास।
खुल गये परदे, रहा अब क्या यहाँ अज्ञेय ?
किन्तु नर को चाहिए नित विघ्न कुछ दुर्जेय;
सोचने को और करने को नया संघर्ष;
नव्य जय का क्षेत्र, पाने को नया उत्कर्ष।
पर, धरा सुपरीक्षिता, विश्लिष्ट स्वादविहीन,
यह पढ़ी पोथी न दे सकती प्रवेग नवीन।
एक लघु हस्तामलक यह भूमि-मंडल गोल,
मानवों ने पढ़ लिये सब पृष्ठ जिसके खोल।
किन्तु, नर-प्रज्ञा सदा गतिशालिनी, उद्दाम,
ले नहीं सकती कहीं रुख एक पल विश्राम।
यह परीक्षित भूमि, यह पोथी पठित, प्राचीन,
सोचने को दे उसे अब बात कौन नवीन ?
यह लघुग्रह भूमिमण्डल, व्योम यह संकीर्ण,
चाहिए नर को नया कुछ और जग विस्तीर्ण।
यह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।
यह मनुज, जिसकी शिखा उद्दाम,
कर रहे जिसको चराचर भक्तियुक्त प्रणाम।

यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार,
ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।
व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय,
पर न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।
श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत,
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत,
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान
तोड़ दे जो, बस, वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही।
सावधान मनुष्य, यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तजकर मोह, स्मृति पार।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी अज्ञान,
फूल कांटों की तुझे कुछ भी नहीं पहिचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।

[कुरुक्षेत्र]

3. पुरुरवा

कौन है अंकुश, इसे मैं भी नहीं पहचानता हूँ।
पर, सरोवर के किनारे कंठ में जो जल रही है,
उस तृषा, उस वेदना को जानता हूँ।
सिंधु-सा उद्दाम, अपरंपार मेरा बल कहाँ है?
गूंजता जिस शक्ति का सर्वत्र जय-जयकार,
उस अटल संकल्प का संबल कहाँ है?
यह शिला-सा वृक्ष, ये चट्टान-सी मेरी भुजाएँ
सूर्य के आलोक से दीपित, समुन्नत भाल,
मेरे प्राण का सागर अगम, उत्ताल, उच्छल है।
सामने टिकते नहीं वनराज, पर्वत डोलते हैं,
कांपता है कुंडली मारे समय का व्याल,
मेरी बाँह में मारुत, गरुड़, गजराज, का बल है।
मर्त्य मानव की विजय का सूर्य हूँ मैं,
उर्वशी ! अपने समय का तूर्य हूँ मैं।
अन्ध तम के भाल पर पावक जलाता हूँ,
बादलों के सीस पर स्पन्दन चलाता हूँ।

पर, न जानें, बात क्या है !
इन्द्र का आयुध पुरुष जो झेल सकता है,
सिंह से बाँहें मिला कर खेल सकता है,
फूल के आगे वही असहाय हो जाता,
शक्ति के रहते हुए निरुपाय हो जाता।
बिद्ध हो जाता सहज बंकिम नयन के बाण से,
जीत लेती रूपसी नारी उसे मुसकान से।

[उर्वशी]

4. उर्वशी

पर, क्या बोलूँ ? क्या कहूँ
भ्रान्ति यह देह-भाव।
मैं मनोदेश की वायु व्यग्र, व्याकुल चंचल;
अवचेत प्राण की प्रभा चेतना के जल में
मैं रूप-रंग-रस-गंध-पूर्ण साकार कमल।
मैं नहीं सिन्धु की सुता;
तलातल-अतल-वितल-पाताल छोड़,
नीले समुद्र को फोड़ शुभ्र, झलमल फेनांशुक में प्रदीप्त
नाचती ऊर्मियों के सिर पर
मैं नहीं महातल से निकली।
मैं नही गगन की लता
तारकों में पुलकित फूलती हुई,
मैं नहीं व्योमपुर की बाला,
विधु की तनया, चन्द्रिका-संग,
पूर्णिमा सिन्धु की परमोज्ज्वल आभा-तरंग,
मैं नहीं किरण के तारों पल झूमती हुई भू पर उतरी।
मैं नाम-गोत्र से रहित पुष्प,
अम्बर से उड़ती हुई मुक्त आनन्द-शिखा
इति वृत्त हीन,
सौन्दर्य-चेतना की तरंग;
सुर-नर-किन्नर-गन्धर्व नहीं,
प्रिय। मैं केवल अप्सरा
विश्वनर के अतृप्त इच्छा-सागर से समुद्भूत।

जन-जन के मन की मधुर वह्नि, प्रत्येक हृदय की उजियाली,
नारी की मैं कल्पना चरम नर के मन में बसने वाली।

विषधर मैं फण पर अमृतवर्ति,
उद्धत, अदम्य बर्बर बल पर
रूपांकुश, क्षीण मृणाल-तार।

मेरे सम्मुख नत हो रहते गजराज मत्त;
केशरी, शरभ, शार्दुल भूल निज हिंस्र भाव
गृह-मृग समान निर्विष, अहिंस्र बनकर जीते।

मेरी भ्रू-स्मिति को देख चकित, विस्मित, विभोर
शूरमा निमिष खोले अवाक् रह जाते हैं;
श्लथ हो जाता स्वयमेव शिंजिनी का कसाव,
संत्रस्त करों से धनुष-बाण गिर जाते हैं।

कामना-वह्नि की शिखा मुक्त मैं अनवरुद्ध,
मैं अप्रतिहत, मैं दुर्निवार,

मैं सदा घूमती-फिरती हूँ
पवनान्दोलित वारिद-तरंग पर समासीन
नीहार-आवरण के अम्बर के आर-पार;
उड़ते मेघों को छोड़ बाहुओं में भरती,
स्वप्नों की प्रतिमाओं का आलिंगन करती।

विस्तीर्ण सिंधु के बीच शून्य, एकान्त द्विप,

यह मेरा उर।
देवालय में देवता नहीं, केवल मैं हूँ।
मेरी प्रतिमा को घेर उठ रही अगुरु-गन्ध,
बज रहा अर्चना में मेरी मेरा नूपुर।

भू-नभ का सब संगीत नाद मेरे निस्सीम प्रणय का है,
सारी कविता जयगान एक मेरी त्रयलोक-विजय का है।

[उर्वशी]

5. परिचय

सलिल-कण हूँ कि पारावार हूँ मैं ?
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूँ मैं।
बँधा हूँ, स्वप्न है, लघु वृत्त में हूँ,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूँ मैं।

समाना चाहती जो बीन-उर में,
विकल वह शून्य की झंकार हूँ मैं।
झटकता, खोजता हूँ ज्योति मन में,
सुना है, ज्योति का आगार हूँ मैं।

जिसे निशि खोजती तारे जलाकर,
उसी का कर रहा अभिसार हूँ मैं।
जनमकर मर चुका सौ बार लेकिन
अगम का पा सका क्या पार हूँ मैं ?

कली की पंखड़ी पर ओस-कण में
रंगीले स्वप्न का संसार हूँ मैं;
मुझे क्या आज ही या कल झड़ूँ मैं ?
सुमन हूँ, एक लघु उपहार हूँ मैं।

जलन हूँ, दर्द हूँ, दिल की कसक हूँ,
किसी का हाय, खोया प्यार हूँ मैं।
गिरा हूँ भूमि पर नन्दन-विपिन से,
अमर-तरु का सुमन सुकुमार हूँ मैं।

मधुर जीवन हुआ कुछ प्राण ! जब से,
लगा ढोने व्यथा का भार हूँ मैं।
रुदन ही एक पथ प्रिय का, इसी से,
पिरोता आँसुओं का हार हूँ मैं।

मुझे क्या गर्व हो अपनी विभा का ?
चिता का धूलि-कण हूँ, क्षार हूँ मैं।
पता मेरा तुम्हें मिट्टी कहेगी,
समा जिस में चुका सौ बार हूँ मैं।

न देखे विश्व, पर, मुझ को घृणा से,
मनुज हूँ, सृष्टि का शृंगार हूँ मैं।
पुजारिन ! धूलि से मुझ को उठा लो,
तुम्हारे देवता का हार हूँ मैं।

सुनूँ क्या सिन्धु ! मैं गर्जन तुम्हारा ?
स्वयं युग-धर्म का हुँकार हूँ मैं।
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनि का,
प्रलय-गाण्डीव की टंकार हूँ मैं।

दबी-सी आग हूँ भीषण क्षुधा की,
दलित का मौन हाहाकार हूँ मैं।
सजग संसार, तू निज को सँभाले,
प्रलय का क्षुब्ध पारावार हूँ मैं।

बँधा तूफान हूँ, चलना मना है,
बँधी उद्दाम निर्झर-धार हूँ मैं।
कहूँ क्या, कौन हूँ ? क्या आग मेरी ?
बँधी है लेखनी, लाचार हूँ मैं।

हरिवंश राय 'बचचन'

(1) जुगनू

अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है !

उठी ऐसी घटा नभ में
छिपे सब चाँद औ'' तारे,
उठा तूफान वह नभ में
गये बुझ दीप भी सारे,

मगर इस रात में भी लौ
लगाये कौन बैठा है !
अँधेरी रात में दीपक
जलाये कौन बैठा है !

गगन में गर्व से उठ-उठ,
गगन में गर्व से घिर-घिर,
गरज कहती घटाएँ हैं,
नहीं होगा उजाला फिर;

मगर चिर ज्योति में निष्ठा
जमाये कौन बैठा है !
अँधेरी रात मे दीपक
जलाये कौन बैठा है !

तिमिर के राज का ऐसा
कठिन आतक छाया है,
उठा जो शीश सकते थे
उन्होंने सिर झुकाया है,

मगर विद्रोह की ज्वाला
जलाये कौन बैठा है !
अँधेरी रात में दीपक
जलाये कौन बैठा है !

प्रलय का सब समाँ बाँधे
प्रलय की रात है छायी,
विनाशक शक्तियों की इस
तिमिर के बीच बन आयी,

मगर निर्माण में आशा
दृढ़ाये कौन बैठा है !
अँधेरी रात में दीपक
जलाये कौन बैठा है !

प्रभंजन मेघ, दामिन ने
न क्या तोड़ा, न क्या फोड़ा,
धरा के और नभ के बीच
कुछ साबित नहीं छोड़ा,

मगर विश्वास को अपने
बचाये कौन बैठा है !
अँधेरी रात में दीपक
जलाये कौन बैठा है !

प्रलय की रात में सोचे
प्रणय की बात क्या कोई,
मगर पड़ प्रेम-बन्धन में
समझ किसने नहीं खोई,

किसी के पन्थ में पलकें
बिछाये कौन बैठा है ।
अँधेरी रात में दीपक
जलाये कौन बैठा है !

[सतरंगिनी]

(2) पथ की पहचान

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले ।

पुस्तकों में है नहीं
छापी गई इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता
है न औरों की जबानी,

अनगिनत राही गए इस
राह से, उनका पता क्या,
पर गए कुछ लोग इस पर
छोड़ पैरों की निशानी
यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ, पंथी,
पंथ का अनुमान करले,
पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान करले।
यह बुरा है या कि अच्छा
व्यर्थ दिन इस पर बिताना,
जब असंभव छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना
तू इसे अच्छा समझ
यात्रा सरल इससे बनेगी,
सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना,
हर सफल पंथी यही
विश्वास ले इस पर बढ़ा है,
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान करले।
पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान करले।
है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे,
है अनिश्चित किस जगह पर
बाग, वन सुन्दर मिलेंगे,
किस जगह यात्रा खत्म हो
जायगी यह भी अनिश्चित,
है अनिश्चित, कब सुमन, कब
कंटकों के शर मिलेंगे,
कौन सहसा छूट जायेंगे
मिलेंगे कौन सहसा,
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न, ऐसी आन करले,

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले ।

कौन कहता है कि स्वप्नों
को न आने दे हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें
अपनी उमर, अपने समय में,

और तू कर यत्न भी तो
मिल नहीं सकती सफलता,

ये उदय होते लिये कुछ
ध्येय नयनों के निलय में,

किन्तु जग के पंथ पर यदि
स्वप्न दो तो सत्य दो सौ,
स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो,
सत्य का भी ज्ञान करले,

पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान करले ।

स्वप्न आता स्वर्ग का, दृग,
कोरकों में दीप्ति आती,
पंख लग जाते पगों को,
ललकती उन्मुक्त छाती,

रास्ते का एक काँटा
पाँव का दिल चीर देता,

रक्त की दो बूँद गिरती
एक दुनिया डूब जाती,

आँख में हो स्वर्ग लेकिन
पाँव पृथ्वी पर टिके हों,
कंटकों की इस अनोखी
सीख का सम्मान करले ।

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले ।

[सतरंगिनी से]

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

1. हिरोशिमा

एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नहीं,
नगर के चौक :
धूप बरसी
पर अन्तरिक्ष से नहीं
फटी मिट्टी से ।
छायाएँ मानव-जन की
दिशाहीन
सब ओर पड़ी-वह सूरज
नहीं उगा था पूरब में, वह
बरसा सहसा
बीचों-बीच नगर के :
काल-सूर्य के रथ के
पहियों के ज्यों अरे टूट कर
बिखर गये हों
दसों दिशा में !
कुछ क्षण का वह उदय-अस्त !
केवल एक प्रज्वलित क्षण की
दृश्य सोख लेनेवाली दोपहरी
फिर ?
छायाएँ मानव-जन की
नहीं मिटीं लम्बी हो-हो कर :
मानव ही सब भाप हो गये ।
छायाएँ तो अभी लिखी हैं,
झुलसे हुए पत्थरों पर
उजड़ी सड़कों की गच पर ।

मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बना कर सोख गया
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है ।

[सुनहले शैवाल]

2. कलगी बाजरे की

हरी बिछली घास ।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की ।
अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हायी कुँई,
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है ।
या कि मेरा प्यार मैला है ।
बल्कि केवल यही :
ये उपमान मैले हो गये हैं ।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच ।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है ।
मगर क्या तुम
नहीं पहचान पाओगी :
तुम्हारे रूप के—
तुम हो, निकट हो, इसी जादू के—
निजी किस सहज, गहरे बोध से,
किस प्यार से मैं कह रहा हूँ—
अगर मैं यह कहूँ—
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की ?
आज हम शहरातियों को
पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से

सृष्टि के विस्तार का ऐश्वर्य का—
औदार्य का—
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा
एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली बाजरे की।
और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है—
और मैं एकान्त होता हूँ
समर्पित।

शब्द जादू हैं—
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है?

[सर्जना के क्षण]

3. यह दीप अकेला

यह दीप, अकेला, स्नेह-भरा
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो।

यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा?
पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा?
यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।
यह अद्वितीय यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित :
यह दीप, अकेला, स्नेह-भरा,
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो।

यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग-संचय,
यह गोरस : जीवन-कामधेनु का अमृत-पूत पय,
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयम्भू, ब्रह्म, अयुत :
इस को शक्ति को दे दो।
यह दीप, अकेला, स्नेह-भरा,
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो।

यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
वह पीड़ा, जिस की गहराई को स्वयं उसी से नापा
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुंधुआते कड़वे तम में

यह सदा-द्रवित, चिर-जागरूक, अनुरक्त-नेत्र,
उल्लम्ब-बाहु यह चिर-अखंड अपनापा ।

जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय
इस को भी पंक्ति को दे दो :
यह दीप, अकेला, स्नेह-भरा
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इस को भी पंक्ति को दे दो ।

[सर्जना के क्षण]

4. नन्दादेवी

वहाँ दूर शहर में
बड़ी भारी सरकार है,
कल की समृद्धि की योजना का
फैला कारोबार है,

और यहाँ
इस पर्वती गाँव में
छोटी-से-छोटी चीज की भी दरकार है,
आज की भूख बेबसी की
बेमुरब्वत मार है ।

कल के लिए हमें
नाज का वायदा है—
आज ठेकेदार को
हमारे पेड़ काट ले जाने दो ;
कल हाकिम
भेड़ों के आयात की

योजना सुनाने आवेंगे—
आज बच्चों को
भूखा ही सो जाने दो।
जहाँ तक दीठ जाती है
फैली हैं नंगी तलैटियाँ—
एक-एक कर सूख गये हैं
नाले, नौले और सोते।
कुछ भूख, कुछ अज्ञान, कुछ लोभ में
अपनी सम्पदा हम रहे हैं खोते।
जिन्दगी में जो रहा नहीं
याद उसकी
बिसूरते लोक-गीतों में
कहाँ तक रहेंगे संजोते।

भवानी प्रसाद मिश्र

1. होना तो उनका है

होना तो उनका है
जो चुप हैं
जैसे बीज
माटी के भीतर का
सन्नाटा
किसी अद्‌भुत क्षण में
वन का
तल्लीन हो रहना
मन का
चिन्ताहीन किसी उन्मुखता में
होने को हम भी हैं
मगर फूट चुके हैं
अंकुर बन कर
हरहरा रहे हैं
अभी झुककर
अभी तन कर
और मुखर हैं
अपने ही बारे में ऐसे
'जैसे सब कुछ जानते हों !

['अक्षरा 2' दिसम्बर 82]

2. ग़ीत-फ़रोश

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं क़िसिम-क़िसिम के गीत बेचता हूँ।

जी, माल देखिए, दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं हैं, काम बताऊँगा,
कुछ गीत लिखे हैं, मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे हैं, पस्ती में मैंने
यह गीत सख़्त सर-दर्द भुलाएगा,
यह गीत पिया को पास बुलाएगा,

जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको;
पर बाद-बाद में अक्ल जगी मुझको,
जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान,
जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान,
मैं सोच-समझ कर आखिर,
अपने गीत बेचता हूँ,
जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं क़िसिम-क़िसिम के गीत बेचता हूँ,

यह गीत सुबह का है, गा कर देखें,
यह गीत ग़ज़ब का है, ढा कर देखें,
यह गीत ज़रा सूने में लिक्खा था,
यह गीत वहाँ पूने में लिक्खा था,
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है,
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है !

यह गीत भूख और प्यास भगाता है,
जी, यह मसान में भूख जगाता है,
यह गीत भुवाली की है हवा हुजूर,
यह गीत तपेदिक़ की है दवा हुजूर,
जी, और गीत भी हैं, दिखलाता हूँ,
जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूँ।

जी, छंद और बेछंद पसंद करें,
जी अमर गीत और वे जो तुरत मरें।
ना, बुरा मानने की इसमें बात,
मैं ले आता हूँ कलम और दावात,
इनमें से भाए नहीं, नए लिख दूं,
जी, नए चाहिए नहीं, गए लिख दूं।
मैं नए; पुराने सभी तरह के
गीत बेचता हूँ,
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ।
मैं क़िसिम क़िसिम के गीत बेचता हूँ!
जी, गीत जनम का लिखूं मरण का लिखूं,
जी, गीत जीत का लिखूं शरण का लिखूं,
यह गीत रेशमी है, यह खादी का,
यह गीत पित्त का है, यह बादी का!
कुछ और डिजायन भी है, यह इल्गी,
यह लीजे चलती चीज, नयी फिल्मी,
यह सोच-सोच कर मर जाने का गीत,
यह दुकान से घर जाने का गीत!
जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात,
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन-रात,
तो तरह-तरह के बन जाते हैं गीत,
जी रूठ-रूठ कर मन जाते हैं गीत!
जी, बहुत ढेर लग गया, हटाता हूँ,
गाहक की मर्जी, अच्छा जाता हूँ,
या भीतर जाकर पूछ आइए आप,
है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप,
क्या करूं मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूँ!
जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ!
मैं क़िसिम-क़िसम के गीत बेचता हूँ!

['गीत-फरोश : 1956' से]

3. अज्ञात पंछी

उस निराली रात में जब चाँद तारों से घिरा था,
जब सुरभि के बीच पल कर फूल डाली पर गिरा था,
नीलिमा आकाश की जब वायुमंडल में भिदी थी,
जब घनी छाया उतर कर पेड़ से जी में छिदी थी,
बाँस के घन कुंज में पड़ कर किरन धँस जा रही थी,
और कँटीली झाड़ियों में दृष्टि फँस जा रही थी,
दो तटों में बँध गयी रेवा हृदय खोले हुए-सी,
व्योम को लहरें उठा कर आप में घोले हुए-सी,
बह रही थी,
मैं प्रकृति-सी प्राणदा से तेज खींचे जा रहा था,
दूर पर उड़ता हुआ पंछी अकेला गा रहा था।
लघु कंठ के उस गान में आश्वास लोरी का नहीं था,
किन्तु उसको सुन रहा मैं आपको खोए कहीं था,
कौन-सा स्वर वेदना का बज उठा था उस हृदय में,
अन्य अपने साथियों-सा क्यों नहीं था वह निलय में,
क्या उसे वह चाँद, वे तारे, तरंगों की रवानी,
वायु की हलचल, सुरभि की गति, सघन वन की कहानी,
मुझ सरीखी खींच कर आकाश में पागल किए थी,
क्या मुझी-सी आँख उसकी प्यार को बेबस पिए थी,
है सुना मधुमास वाली कोकिला का गीत मैंने,
और देखी है कलापी की जगत पर जीत मैंने,
फूल छाती से लगाए बुलबुलों को जानता हूँ,
टिटहरी की दुःख-भरी आवाज को मैं मानता हूँ।
किन्तु इस अज्ञात पंछी के गले का पूर क्या है !
छा रहा हर ओर उसको पास क्या है दूर क्या है।
दुःख क्या कोई जगत को जान कर जतला सका है,
दर्द क्या कोई कभी भी बोल कर बतला सका है,
मैं कि पीड़ा दीन की कहता रहा है काम मेरा,
और दुखियों से सदा घिर कर रहा है धाम मेरा,
पुत्र शोकातुर पिता की आह के बीचों पला हूँ,
मैं स्वयं भी दुःख कन्धों पर उठा कितना चला हूँ !
ये कि रमणी का हुआ सिन्दूर बिन जब भाल सूना,
चूड़ियों के टूटने का स्वर कि हाहाकार दूना

आँख में आँसू कि जिनका स्वर सहज, भर्रा गया है,
और वे कंकाल जिनका बोल नभ थर्रा गया है,
जो हृदय को चीर डाले झोंपड़ो की वह कहानी,
लाख बहलावों में पड़ कर जो नहीं होती पुरानी,
हूबहू अंकित है जी पर, आँख में तस्वीर जिनकी,
खींच शब्दों में नहीं पाया कभी भी पीर उनकी।
हाय रे अज्ञात पंछी पास तेरा स्वर नहीं है,
उड़ सकूं आकाश में ऐसा मुझे तो वर नहीं है,
लेखनी की नोक पर वर दे कि उतरें गीत तेरे,
भर चलें जग छोर ऐसे उड़ चलें ये मीत मेरे।
दुःख हो ले दूर ऐसी दर्द की तस्वीर खींचूं,
और पत्थर का हृदय पिघले कि उससे नीर सींचूं ?
एक कण भी दुःख का यदि मैं जगत से खो सका रे
एक क्षण भी यदि किसी की सान्त्वना मैं हो सका रे,
तो सफल यह रात यह तारे तरंगों की रवानी,
वायु की हलचल सुरभि की गति सघन वन की कहानी,
तो सफर तब गीत पीड़ामय सकल अस्तित्व मेरा,
जा रहा हूँ स्वर भरो तुम, मैं लिखूंगा गीत तेरा।

['गीत-फरोश : 1956' से]

4. अभिव्यक्ति

अभिव्यक्ति तो होती ही रहती है,
मैं उसके ढंग नहीं सोचता !

सोची हुई अभिव्यक्ति ने
मुझे कभी व्यक्त नहीं किया;
छुपता ही हूँ मैं उससे,
अभिव्यक्ति तो होती ही रहती है,
मैं उसके ढंग नहीं सोचता।

सोच कर नहीं रोया मेरा लड़का
और रोते ने उसे अभिव्यक्त किया।
तौल कर नहीं हँसी मेरी लड़की
और हँसने ने उसे अभिव्यक्त किया।

तुमने जमुहाई ली,
सोच कर ली थी ? नहीं,
इसलिए उसने तुम्हारी समूची थकान को
बोला !
मछली को पकड़ो
तो वह पानी के लिए तड़पती है;
हम आफ़त में पड़ जायें
एक-दूसरे से सलाह लेते हैं;

शेर गोली खा के
चट्टानें चबा जाता है ।
अभिव्यक्ति तो
होती ही रहती है,
मैं उसके ढंग नहीं सोचता ।

पहाड़ की ढलान पर
किसी ने मुझे धक्का दे दिया
और मेरी जिन्दगी ही बदल गयी !
मेरी टाँग टूट गयी
और मैं लँगड़ाकर चलने लगा !

अभिव्यक्ति अब
थोड़ी कोशिश से हुआ करेगी,
मगर मैं
उस कोशिश का
ढंग नहीं सोचता !

नागार्जुन

1. प्रेत का बयान

"ओ रे प्रेत"—
कड़ककर बोले नरक के मालिक यमराज
"सच-सच बतला !
कैसे मरा तू ?
भूख से, अकाल से ?
बुखार कालजार से ?
पेचिश, बदहजमी, प्लेग, महामारी से ?
कैसे मरा तू, सच-सच बतला !"
खड़ खड़ खड़ खड़ हड़ हड़ हड़ हड़
काँपा कुछ हाड़ों का मानवीय ढाँचा
नचाकर लम्बा चमचों-सा पचँगुरा हाथ
रूखी-पतली किट-किट आवाज में
प्रेत ने जबाब दिया :

"महाराज !
सच-सच कहूँगा
झूठ नहीं बोलूँगा
अब हम गुलाम नहीं
नागरिक हैं हम स्वाधीन भारत के
पूर्णिया जिला है सूबा बिहार के सिवान पर
थाना धमदाहा
बस्ती रूपउली
जात का कायथ
उमर कुछ अधिक पचपन साल की
पेशा से प्राइमरी स्कूल का मास्टर था
तनखा थी तीस रुपैया, सो भी नहीं मिली
मुश्किल से काटे हैं
एक नहीं दो नहीं नौ-नौ महीने

घरनी थी, माँ थी बच्चे थे चार
आ चुके हैं वे भी दयासागर, करुणा के अवतार !
आप ही की छाया में
मैं ही बाकी
क्योंकि करमों की पत्तियाँ अभी कुछ शेष थीं
हमारे अपने पुश्तैनी पोखरे में
मनोबल शेष था सूखे शरीर में.......
"अरे वाह........"
भभाकर हँस पड़ा नरक का राजा
दमक उठीं झालरें कम्पमान सिर के मुकुट की
फर्श पर ठोककर सुनहला लौह-दंड
अविश्वास की हँसी हँसा दंडपाणि महाकाल
"बड़े अच्छे मास्टर हो !
आए हो मुझको पढ़ाने।
मैं भी बच्चा हूँ.......
वाह भाई, वाह !
तो तुम भूख से नहीं मरे ?"
हद से ज्यादा डालकर जोर
होकर कठोर
प्रेत फिर बोला—
"अचरज की बात है
यकीन नहीं करते आप क्यों मेरा
कीजिए न कीजिए आप चाहे विश्वास
साक्षी है धरती, साक्षी है आकाश
और और और और और भले
नाना प्रकार की व्याधियाँ हों भारत में
किन्तु—"
उठाकर दोनों बाँहें
किट किट करने लगा प्रेत
"किन्तु
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज,
नाम नहीं लीजिएगा।
हमारे समक्ष फिर कभी भूख का !"

निकल गया भाप आवेश का
तदनन्तर शांत-स्तिमित स्वर में प्रेत बोला
"जहाँ तक मेरा अपना सम्बन्ध है
सुनिए महाराज,
तनिक भी पीर नहीं
दुख नहीं, दुविधा नहीं,
सरलतापूर्वक निकले ये प्राण
सह न सकी आँत जब पेचिश का हमला।"
सुनकर दहाड़
स्वाधीन भारत के
भुखमरे, स्वाभिमानी, सुशिक्षक प्रेत की
रह गये निरुत्तर,
महामहिम नरकेश्वर।

[प्रेत का बयान]

2. बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुस्कान
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
बहुत दिनों के बाद

अबकी मैंने जी भर सूंघे
मौलसिरी के ढेर-ढेर से ताजे-टटके फूल
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैं जी भर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैंने जी भर तालमखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ साथ इस भूपर
बहुत दिनों के बाद।

[युगधारा]

3. गीत

नभ में चौकड़ियाँ भरें भले
शिशु घन-कुरंग
खिलवाड़ देर तक करें भले
शिशु घन-कुरंग
लो, आपस में गुँथ गये खूब
शिशु घन-कुरंग
लो, घटा-जाल में गये डूब
शिशु घन-कुरंग
लो, बूंदें पड़ने लगीं, वाह
शिशु घन-कुरंग
लो, कब की सुधियाँ जगीं, आह
शिशु घन-कुरंग
पुरवा सिही, फिर दीख गए
शिशु घन-कुरंग
शशि से शरमाना सीख गए
शिशु घन-कुरंग

शमशेर बहादुर सिंह

1. अम्न का राग

सच्चाइयाँ
जो गंगा के गोमुख में मोती की तरह बिखरती रहती हैं
हिमालय की बर्फीली चोटी पर चाँदी के उन्मुक्त नाचते
परों में झिलमिलाती रहती हैं
जो एक हजार रंगों के मोतियों का खिलखिलाता समंदर है
उमंगों से भरी फूलों की जवान कश्तियाँ
कि बसंत के नए प्रभात सागर में छोड़ दी गई हैं।
ये पूरब पच्छिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी किरनों को अपनी दिशाओं के गिर्द लपेट लिया
और मैं योरप और अमरीका की नर्म आँच की धूप-छाँव पर
बहुत हौले-हौले नाच रहा हूँ
सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शांति का राग हूँ
बहुत आदिम, बहुत अभिनव।
हम एक साथ उषा के मधुर अधर बन उठे
सुलग उठे हैं
सब एक साथ ढाई अरब धड़कनों में बज उठे हैं
सिम्फ़ोनिक आनंद की तरह
यह हमारी गाती हुई एकता
संसार के पंचपरमेश्वर का मुकुट पहन
अमरता के सिंहासन पर आज हमारा अखिल लोक-प्रेसिडेंट
बन उठी है।
देखो न हकीकत हमारे समय की कि जिसमें
होमर एक हिंदी कवि सरदार जाफ़री को
इशारे से अपने करीब बुला रहा है
कि जिसमें
फ़ैयाज खाँ बिटाफ़ेन के कान में कुछ कह रहा है
मैंने समझा कि संगीत की कोई अमर लता हिल उठी

मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में
झलकता हुआ देख रहा हूँ
और कालिदास को वैमर के कुंजों में विहार करते
और आज तो मेरा टैगोर मेरा हाफ़िज मेरा तुलसी मेरा ग़ालिब
एक-एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का कुशल आपरेटर है।
आज सब तुम्हारे लिए शांति का युग चाहते हैं
मेरी कुटूबुटू
तुम्हारे ही लिए मेरे प्रतिभाशाली भाई तेजबहादुर
मेरे गुलाब की कलियों से हँसते-खेलते बच्चों
तुम्हारे ही लिए, तुम्हारे ही लिए
मेरे दोस्तो, जिनसे जिन्दगी में मानी पैदा होते हैं
और उस निश्छल प्रेम के लिए
जो माँ की मूर्ति है
और उस अमर परमशक्ति के लिए जो पिता का रूप है।
हर घर में सुख
शांति का युग
हर छोटा-बड़ा हर नया-पुराना हर आज-कल-परसों के
आगे और पीछे का युग
शांति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
क्योंकि इस कला का नाम जीवन की भरी-पूरी गति है।
मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टैचू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लालतारा
और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गीय महल
मक्का-मदीना से कम पवित्र नहीं
मैं काशी में उन कार्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो बोल्गा से आए
मेरी देहली में प्रह्लाद की तपस्याएँ दोनों दुनियाओं की चौखट पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं।
यह कौन मेरी धरती की शांति की आत्मा पर कुरबान हो गया है
अभी सत्य की खोज तो बाक़ी ही थी
यह एक विशाल अनुभव की चीनी दीवार
उठती ही बढ़ती आ रही है
उसकी ईंटें धड़कते हुए सुर्ख दिल हैं
यह सच्चाइयाँ बहुत गहरी नीवों में जाग रही हैं

वह इतिहास की अनुभूतियाँ हैं
मैंने सोवियत यूसुफ़ के सीने पर कान रखकर सुना है।
आज मैंने गोर्की को होरी के आँगन में देखा
और ताज के साये में राजर्षि कुंग को पाया
लिंकन के हाथ में हाथ दिये हुए
और ताल्स्ताय मेरे देहाती यूपियन होंठों से बोल उठा
और अरागों की आँखों में नया इतिहास
मेरे दिल की कहानी की सुर्खी बन गया
मैं जोश की वह मस्ती हूँ जो नेरुदा की भवों से
जाम की तरह टकराती है
वह मेरा नेरुदा जो दुनिया के शांति पोस्ट आफ़िस का
प्यारा और सच्चा क़ासिद
वह मेरा जोश कि दुनिया का मस्त आशिक़
मैं पंत के कुमार छायावादी सावन-भादों की चोट हूँ
हिलोर लेते वर्ष पर
मैं निराला के राम का एक आँसू
जो तीसरे महायुद्ध के कठिन लौह पर्दों को
एटमी सुई-सा पार कर गया पाताल तक
और वहीं उसको रोक दिया
मैं सिर्फ़ एक महान विजय का इंदीवर जनता की आँख में
जो शांति की पवित्रतम आत्मा है।
पच्छिम में काल और सफ़ेद फूल हैं और पूरब में पीले और लाल
उत्तर में नीले कई रंग के और हमारे यहाँ चम्पई साँवले
और दुनिया में हरियाली कहाँ नहीं
जहाँ भी आसमान बादलों से जरा भी पीछे जाते हों
और आज गुलदस्तों में रंग-रंग के फूल सजे हुए हैं
और आसमान इन खुशियों का आईना है
आज न्यूयार्क के स्काईस्क्रेपरों पर
शांति के "डवों" और उनके राजहंसों ने
एक मीठे उजले सुख का हलका सा अँधेरा और शोर पैदा कर दिया है
और अब वो आर्जन्टीना की सिम्त अतलांतिक को पार कर रहे हैं
पाल राब्सन ने नई दिल्ली से नये अमरीका की
एक विशाल सिम्फ़नी ब्राडकास्ट की है
और उदयशंकर ने दक्षिणी अफ्रीका में नयी अजंता को
स्टेज पर उतारा है

यह महान नृत्य यह महान स्वर कला और संगीत
मेरा है यानी हर अदना से अदना इंसान का
बिलकुल अपना निजी।

युद्ध ने नक्शों को क़ैंची से काटकर कोरियायी बच्चों ने
झिलमिली फूलपत्तों की रौशन फ़ानूसें बनाली हैं
और हथियारों का स्टील और लोहा हज़ारों
देशों को एक-दूसरे से मिलाने वाली रेलों के जाल में बिछ गया है
और ये बच्चे उन दौड़ती हुई रेलों के डिब्बों की खिड़कियों से

हमारी ओर झांक रहे हैं
वह फ़ौलाद और लोहा खिलौनों मिठाइयों और किताबों
से लदे स्टीमरों के रूप में

नदियों की सार्थक सजावट बना गया है
या विशाल ट्रैक्टर-कम्बाइन और फ़ैक्टरी-मशीनों के हृदय में
नवीन छन्द और लय का प्रयोग कर रहा है।
यह सुख का भविष्य शांति की आंखों में ही वर्तमान है
इन आँखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आँखें सेंक रहे हैं
ये आँखें हमारे दिल में रौशन और हमारी पूजा का फूल हैं
ये आँखें हमारे कानून का सही चमकता हुआ मतलब
और हमारे अधिकारों की ज्योति से भरी शक्ति हैं
ये आँखें हमारे माता-पिता की आत्मा और हमारे बच्चों का दिल हैं

ये आँखें हमारे इतिहास की वाणी
और हमारी कला का सच्चा सपना हैं
ये आँखें हमारा अपना नूर और पवित्रता हैं
ये आँखें ही अमर सपनों की हक़ीक़त और
हक़ीक़त का अमर सपना हैं

इनको देख पाना ही अपने-आपको देख पाना है, समझ पाना है
हम जानते हैं कि हमारे नेता इनको देख रहे हों। [1952]

2. एक पीली शाम

एक पीली शाम
        पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
शान्त
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कृश म्लान हारा-सा
        (कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं ?)
वासना डूबी
शिथिल पल में
स्नेह काजल में
लिये अद्भुत रूप-कोमलता
अब गिरा, अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सान्ध्य तारक-सा
        अतल में ।

[कुछ कविताएँ]

3. धूप कोठरी के आइने में खड़ी

धूप कोठरी के आइने में खड़ी
हँस रही है
पारदर्शी धूप के पर्दे
मुस्कराते
मौन आँगन में
मोम-सा पीला
द्रुत कोमल नभ
एक मधुमक्खी हिलाकर फूल को
बहुत नन्हा फूल
उड़ गयी
आज बचपन का
उदास माँ का मुख
याद आता है ।

गजानन माधव मुक्तिबोध

1. (ब्रह्मराक्षस)

शहर के उस ओर खण्डहर की तरफ़
परित्यक्त सूनी बावड़ी
के भीतरी
ठंडे अँधेरे में
बसी गहराइयाँ जल की............
सीढ़ियाँ, डूबीं अनेकों
उस पुराने घिरे पानी में........
समझ में आ न सकता हो
कि जैसे बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो।

बावड़ी को घेर
डालें खूब उलझी हैं,
खड़े हैं मौन औदुम्बर।
व शाखों पर
लटकते घुग्घुओं के घोंसले
परित्यक्त, भूरे, गोल।

विगत शत पुण्य का आभास
जंगली हरी कच्ची गन्ध में बस कर
हवा में तैर
बनता है गहन संदेह
अनजानी किसी बीती हुई उस श्रेष्ठता का जो कि
दिल में एक खटके सी लगी रहती।

बावड़ी की इन मुंडेरों पर
मनोहर हरी कुहनी टेक
बैठी है टगर
ले पुष्प-तारे-श्वेत

उसके पास
लाल फूलों का लहकता झौंर—
मेरी वह कन्हेर………
वह बुलाती एक खतरे की तरफ़ जिस ओर
अँधियारा खुला मुँह बावड़ी का
शून्य अम्बर ताकता है
बावड़ी की उन घनी गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है,
व भीतर से उमड़ती गूँज की भी गूँज,
बड़बड़ाहट शब्द पागल से ।
गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने के लिए, दिन-रात
स्वच्छ करने—
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे, बराबर,
बाँह-छाती-मुँह छपाछप
खूब करते साफ़,
फिर भी मैल
फिर भी मैल !!
औ…होठों से
अनोखा स्तोत्र, कोई क्रुद्ध मन्त्रोच्चार,
अथवा शुद्ध संस्कृत गालियों का ज्वार,
मस्तक की लकीरें
बुन रहीं
आलोचनाओं के चमकते तार !!
उस अखण्ड स्नान का पागल प्रवाह……
प्राण में संवेदना है स्याह !!
किन्तु, गहरी बावड़ी
की भीतरी दीवार पर
तिरछी गिरी रवि-रश्मि
के उड़ते हुए परमाणु, जब

तल तक पहुँचते हैं कभी
तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने
झुक कर 'नमस्ते' कर दिया।
पथ भूलकर जब चाँदनी
की किरन टकराये
कहीं दीवार पर,
तब ब्रह्मराक्षस समझता है
वन्दना की चाँदनी ने
ज्ञान-गुरु माना उसे।
अति-प्रफुल्लित कण्टकित तन-मन वही
करता रहा अनुभव कि नभ ने भी
विनत हो मानली है श्रेष्ठता उस की !!
और, तब दुगुने भयानक ओज से
पहचान वाला मन
सुमेरी बैबिलोनी जन-कथाओं से
मधुर वैदिक ऋचाओं तक
व तब से आज तक के सूत्र
छन्दस्, मंत्र, थियोरम,
सब प्रमेयों तक
कि मार्क्स, ऐंजेल्स, रसेल, टॉएन्बी
कि हीडेग्गर व स्पेंग्लर, सार्त्र, गाँधी भी
सभी के सिद्ध-अन्तों का
नया व्याख्यान करता वह
नहाता ब्रह्मराक्षस श्याम
प्राक्तन बावड़ी की
उन घनी गहराइयों में शून्य।
....ये गरजती, गूँजती, आन्दोलिता
गहराइयों से उठ रहीं ध्वनियाँ, अतः
उद्भ्रान्त शब्दों के नये आवर्त में
हर शब्द निज प्रति-शब्द को भी काटता,
वह रूप अपने बिम्ब से ही जूझ
विकृताकार-कृति
है बन रहा
ध्वनि लड़ रही अपनी प्रतिध्वनि से यहाँ

बावड़ी की उन मुँडेरों पर
मनोहर हरी कुहनी टेक सुनते हैं
टगर के पुष्प-तारे श्वेत
वे ध्वनियाँ !
सुनते हैं करौंदी के सुकोमल फूल
सुनता है उन्हें प्राचीन औदुम्बर
सुन रहा हूँ मैं वही
पागल प्रतीकों में कहीं जाती हुई
वह ट्रैजिडी
जो बावड़ी में अड़ गयी ।
खूब ऊँचा एक जीना साँवला
उसकी अँधेरी सीढ़ियाँ........
वे एक आभ्यन्तर निराले लोक की ।
एक चढ़ना औ" उतरना,
पुन: चढ़ना औ" लुढ़कना,
मोच पैरों में
व छाती पर अनेकों घाव ।
बुरे-अच्छे-बीच के संघर्ष
से भी उग्रतर
अच्छे व उससे अधिक अच्छे बीच का संगर
गहन किंचित् सफलता,
अति भव्य असफलता !!
....अतिरेकवादी पूर्णता
की ये व्यथाएँ बहुत प्यारी हैं.......
ज्यामितिक संगति-गणित
की दृष्टि से कृत
भव्य नैतिक मान
आत्मचेतन सूक्ष्म नैतिक भान.......
....अतिरेकवादी पूर्णता की तुष्टि करना
कब रहा आसान
मानवी अन्तर्कथाएँ बहुत प्यारी हैं !!
रवि निकलता
लाल चिन्ता की रुधिर-सरिता
प्रवाहित कर, दिवालों पर,

उदित होता चन्द्र
व्रण पर बांध देता
श्वेत-धौली पट्टियाँ
उद्विग्न भालों पर
सितारे आसमानी छोर पर फैले हुए
अनगिन दशमलव से
दशमलव-बिन्दुओं के सर्वतः
पसरे हुए उलझे गणित मैदान में
मारा गया, वह काम आया,
और वह पसरा पड़ा है....
वक्ष-बाँहें खुली फैलीं
एक शोधक की।

व्यक्तित्व वह कोमल स्फटिक-प्रासाद-सा,
प्रासाद में ज़ीना
व ज़ीने की अकेली सीढ़ियाँ
चढ़ना बहुत मुश्किल रहा।
वे भाव-संगत तर्क-संगत
कार्य सामंजस्य-योजित
समीकरणों के गणित की सीढ़ियाँ
हम छोड़ दें उसके लिए।
उस भाव तर्क-व-कार्य सामंजस्य-योजना-
शोध में
सब पण्डितों, सब चिन्तकों के पास
वह गुरु प्राप्त करने के लिए
भटका ! !

किन्तु-युग बदला व आया कीर्ति-व्यवसायी,
....लाभकारी कार्य में से धन,
व धन में से हृदय-मन,
और, धन-अभिभूत अन्तःकरण में से
सत्य की झाई
निरन्तर चिलचिलाती थी।

आत्म चेतस् किन्तु इस
व्यक्तित्व में थी प्राणमय अनबन....
विश्वचेतस् बे-बनाव ! !

महत्ता के चरण में था
विषादाकुल मन।
मेरा उसी से उन दिनों होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वयं जीकर
बताता मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य
उसकी महत्ता !
वह उस महत्ता का
हम सरीखों के लिए उपयोग,
उस आन्तरिकता का बताता मैं म[illegible] !

पिस गया वह भीतरी
औ' बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रैजिडी है नीच !!

बावड़ी में वह स्वयं
पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा
वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
औ' मर गया........
वह सघन झाड़ी के कँटीले
तम-विवर में
मरे पक्षी सा
विदा ही हो गया
वह ज्योति अनजानी सदा को सो गयी
यह क्यों हुआ !
क्यों यह हुआ !!
मैं ब्रह्मराक्षस का सजल-उर-शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य,
उसकी वेदना का स्रोत
संगत, पूर्ण निष्कर्षों तलक
पहुँचा सकूँ।

2. पूँजीवादी समाज के प्रति

इतने प्राण, इतने हाथ, इतनी बुद्धि,
इतना ज्ञान, संस्कृति और अन्तःशुद्धि
इतना दिव्य, इतना भव्य, इतनी शक्ति
यह सौन्दर्य, वह वैचित्र्य, ईश्वर भक्ति,
इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छन्द—
जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बन्ध;
इतना गूढ़, इतना गाढ़, सुन्दर जाल—
केवल एक जलता सत्य देने टाल।
छोड़ो हाय, केवल घृणा औ" दुर्गन्ध
तेरी रेशमी वह शब्द-संस्कृति अन्ध
देती क्रोध मुझ को, खूब जलता क्रोध
तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझ को देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि हैं उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चलें अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ........
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

[मुक्तिबोध रचनावली]

केदारनाथ अग्रवाल

1. बसन्ती हवा

हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ।

वही, हाँ वही, जो
युगों से गगन को
बिना कष्ट-श्रम के
सम्हाले हुए हूँ,
हवा हूँ हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ
वही, हाँ वही, जो
धरा का बसन्ती
सुसंगीत मीठा
गुंजाती फिरी हूँ,
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ !

वही, हाँ वही, जो
सभी प्राणियों को
पिला प्रेम-आसव
जिलाये हुए हूँ।
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ !

क़सम रूप की है !
क़सम प्रेम की है !
क़सम इस हृदय की
सुनो बात मेरी—
अनोखी हवा हूँ :
बड़ी बावली हूँ,
बड़ी मस्त मौला :
नहीं कुछ फिक्र है,
बड़ी ही निडर हूँ,
जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ,
मुसाफिर अजब हूँ !

न घर-बार मेरा,
न उद्देश्य मेरा,
न इच्छा किसी की,
न आशा किसी की,
न प्रेमी, न दुश्मन,
जिधर चाहती हूँ—
उधर घूमती हूँ !
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ !

जहाँ से चली मैं
जहाँ को गयी मैं—
शहर, गाँव, बस्ती,
नदी, रेत, निर्जन,
हरे खेत, पोखर,
झुलाती चली मैं।
हवा हूँ हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ !

चढ़ पेड़ महुआ,
थपाथप मचाया,
गिरी धम्म से फिर,
चढ़ी आम ऊपर,
उसे भी झकोरा,
किया कान में "कू",
उतर कर भगी मैं,
हरे खेत पहुँची—
वहाँ गेहुओं में
लहर खूब मारी,
पहर-दो-पहर क्या
अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं !
खड़ी देख अलसी
लिये शीश कलसी,
मुझे खूब सूझी—
हिलाया-झुलाया
गिरी पर न कलसी !
इसी हार को पा,
हिलायी न सरसों,
झुलायी न सरसों,
मजा आ गया तब,
न सुध-बुध रही कुछ,
बसन्ती नवेली
भरे गात में थी ।
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ ।

मुझे देखते ही
अरहरी लजायी,
मनाया-बनाया,
न मानी-न मानी,
उसे भी न छोड़ा—
पथिक आ रहा था,
उसी पर ढकेला,
लगी जा हृदय से,
कमर से चिपक कर,
हँसी जोर से मैं,
हँसी सब दिशाएँ;
हँसे लहलहाते
हरे खेत सारे,
हँसी चमचमाती
भरी धूप प्यारी,
बसन्ती हवा में
हँसी सृष्टि सारी !
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ !!

[युग की गंगा]

2. जीवन से

ऐसे आओ
जैसे गिरि के शृंग शीश पर
रंग-रूप का क्रीट लगाये
बादल आये,
हंस-माल-माला लहराये,
और शिला तन—
कान्ति निकेतन-तन बन जाये ।
तब मेरा मन
तुम्हें प्राप्त कर—
आतमसात् कर—
स्वयं तुम्हारी आकांक्षा का
बन जायेगा छवि का सागर,
जिसके तट पर,
शंख-सीप-लहरों के मणिधर—
आयेंगे-खेलेंगे मनहर,
और हँसेगा दिव्य दिवाकर ।

गिरिजाकुमार माथुर

1. बसन्त की रात

आज हैं केसर रंग रंगे वन,
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली-सी
केसर के बसनों में छिपा तन,
सोने की छाँह-सा,
बोलती आँखों में
पहिले बसन्त के फूल का रंग है।
गोरे कपोलों पै हौले से आ जाती,
पहिले ही पहिले के,
रंगीन चुम्बन की-सी ललाई।
आज हैं केसर रंग रंगे—
गृह, द्वार, नगर, वन
जिनके विभिन्न रंगों में है रंग गई
पूनौ की चंदन चाँदनी।
जीवन में लौटी फिर मिठास है,
गीत की आखिरी मीठी लकीर-सी
प्यार भी डूबेगा गोरी-सी बाँहों में,
ओठों में, आँखों में,
फूलों में डूबे ज्यों
फूल की रेशमी-रेशमी छाहें।

2. कौन थकान हरे जीवन की

कौन थकान हरे जीवन की ।
बीत गया संगीत प्यार का,
रूँठ गई कविता भी मन की ।
वंशी में अब नींद भरी है ।
स्वर पर पीत सांझ उतरी है ।
बुझती जाती गूँज आखिरी—
इस उदास वन-पथ के ऊपर
पतझर की छाया गहरी है,
अब सपनों में शेष रह गई,
सुधिया उस चन्दन के वन की ।
रात हुई पंछी घर आए,
पथ के सारे स्वर सकुचाए
म्लान दिया-बत्ती की बेला—
थके प्रवासी की आँखों में
आँसू आ-आकर कुम्हलाए,

कहीं बहुत ही दूर उनींदी
झांझ बज रही है पूजन की ।
कौन थकान हरे जीवन की ।

[नाश और निर्माण]

3. बुद्ध

आज लौटती आती है पद-चाप युगों की,
सदियों पहिले का शिव-सुन्दर मूर्तिमान हो
चलता जाता है बोझीले इतिहासों पर,
श्वेत हिमालय की लकीर-सा ।

प्रतिमाओं से धुंधले बीते वर्ष आ रहे
जिनमें डूबी-डूबी दिखती,
ध्यान-मग्न तसवीर बोधितरु के नीचे की ।
जिसे समय का हिम न प्रलय तक गला सकेगा,

देश-देश से अन्तहीन वह छाया लौटी ।
और लौटते आते हैं वे मठ, बिहार सब,
कपिलवस्तु के भवनों की वह कांचन-माला
जब सागर, वन की सीमाएँ लाँघ गये थे,
कुटियों में संदेश प्यार के,
महलों का जब स्वप्न अधूरा,
पूर्ण हुआ था शीतल मिट्टी के स्तूपों की छाया में ।
वैभव की वे शिला-लेख-सी-यादें आतीं,
एक चाँदनी भरी रात उस राजनगर की,
रनिवासों की नंगी बाहें-सी रंगीनी,
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की,
फीकी पड़ती गयी अचानक,
जाने कैसे मिटे नयन-डोरों के बन्धन,
मोह-पाश रोमान प्यार के,
गोपा के सोते मुख की तस्वीर सलोनी,
गौतम बनने के पहिले किस तरह मिटी थी,
तीस वर्ष तक रची राज-मदिरा की लाली—
आलिंगन में बँधा स्वप्न अब
सिन्धु और आकाश हो गया,
महागमन की जिस वैराग्य भरी बेला में,
तप की पहली भोर बना था
सेज और सिंहासन की मधुरात अखीरी ।
देख रहे संपाति-नयन शिव की सीमा पर,
वे शताब्दियों तले दूर देशान्तर फैले,
बाल्मीकि से कच्चे मंदिर चैत्य, पैगोडा
जिनसे शीतलता का कन लन आते थे
रानी-राजपुत्र भिक्षुक बन ।
फैल गई थीं मिट्टी के अन्तर की बाहें,
सत्य और सुन्दरता के अविरल संघों से
स्याम, ब्रह्म, जापान, चीन गांधार, मलय तक
दीर्घ विदेशों के अशोक-साम्राज्यों ऊपर ।
नहीं रहे वे महावंश अब,
वे कनिष्क से, शिलादित्य से नाम हजारों,
किन्तु तक्षिला, साँची, सारनाथ के मंदिर,

और जोति स्तम्भ के बोल रहे हैं ।
जिस सीमा पर पहुँच न पाई हुई पराजित
कुफ़ तोड़ने की, क्रूसेडों की तलवारें
वहाँ विश्व-जय हुई प्यार के एक घूंट से ।

[नाश और निर्माण]

4. गीत

छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन
जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छवियों की चित्र-गन्ध फैली मनभावनी
तन सुगन्ध शेष रही बीत गयी यामिनी
कुन्तल के फूलों की याद बनी चाँदनी
भूली सी एक छुवन
बनता हर जीवित क्षण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन
यश है, न वैभव है, मान है, न सरमाया
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया
प्रभुता का शरण-विम्ब केवल मृग तृष्णा है
हर चँदिरा में छिपी एक रात कृष्णा है ।
जो है यथार्थ कठिन
उसका तू कर पूजन
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन
द्विविधाहत साहस है दिखता है पन्थ नहीं
देह सुखी हो पर मन के दुःख का अन्त नहीं
दुख है न चांद खिला शरद रात आने पर
क्या हुआ जो खिला फूल रस-बसन्त जाने पर
जो न मिला भूल उसे
कर तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

[धूप के धान]

धर्मवीर भारती

1. टूटा पहिया

मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत।

क्या जाने कब
इस दुरुह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय !

अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी
बड़े-बड़े महारथी
अकेली निहत्थी आवाज को
अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें

तब मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया
उसके हाथों में
ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ !
मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ

लेकिन मुझे फेंको मत,
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले !

[सात गीत-वर्ष]

2. कस्बे की शाम

झुरमुट में दुपहरिया कुम्हलायी
खेतों पर अन्हियारी घिर आयी
पश्चिम की सुनहरियाँ धुंधरायी

टीलों पर, तालों पर
इक्के-दुक्के अपने घर पर जाने वालों पर
धीरे-धीरे उतरी शाम !

आँचल से छु तुलसी की थाली
दीदी ने घर की ढिबरी वाली
जमुहाई ले-लेकर उजियाली,

जा बैठी ताखों में
घर-भर के बच्चों की आँखों में
धीरे-धीरे उतरी शाम !

इस अधकच्चे-से घर के आँगन
में जाने क्यों इतना आश्वासन
पाता है यह मेरा टूटा मन
लगता है इन पिछले वर्षों में
सच्चे-झूठे, मीठे-कड़वे संघर्षों में
इस घर की छाया थी छूट गयी अनजाने
जो अब झुककर मेरे सिरहाने—
कहती है :
"भटको बेबात कहीं !
लौटोगे अपनी हर यात्रा के बाद यहीं !"
धीरे-धीरे उतरी शाम !

[सात गीत-वर्ष]

---

3. पराजित पीढ़ी का गीत

हम सबके दामन पर दाग़
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ।

हम थे सैनिक अपराजेय
पर हम थे बेबस लाचार
यह था कठपुतलों का खेल
ऊपर थी कलई पर लकड़ी के थे सब हथियार !

हम सबके थे अपने गीत
आखिर तक गाने की शर्त
पर जाने कैसे ऐसे बदले बोल—
हमने गाया कुछ, पर कुछ निकला अर्थ !

तुम क्या जानोगे ओ प्रभु !
उसके मन का कटु विक्षोभ
जिसकी निष्ठा के आगे
गर्हित था छोटे से छोटे समझौते का लोभ !

तुमने कब झेली संक्रान्ति
तुम क्या समझोगे ओ प्रभु !
इन गत्यवरोधों का दर्द—
कैसे तरुणाई में ही
घुट मर जाते हैं विश्वास
प्राणों की समिधाएँ जम कर हो जाती हैं सर्द !

फिर भी यदि तुमको मंजूर
हमको भटकाओ कुछ और
यदि तुमको फिर भी मंजूर
सच्चाई की बाँहों में हम सब पायें मत ठौर,

तो कम से कम करुणामय
इतना तो दो ही वरदान

दो हमको फिर झूठे लक्ष्य
दो हमको फिर झूठे युद्धों का झूठा मैदान !

तुम क्या जानोगे ओ प्रभु
संघर्षों के ही अभ्यासी ये प्राण
हो जाते कितने बेचैन
छिन जाते हमसे जब शस्त्र, छिन जाते ईमान !

दो हमको फिर झूठे युद्ध
दो हमको फिर झूठे ध्येय
हारेंगे फिर यह है तय
फिर उसको मानेंगे हम प्रभु की हार
अपने को मानेंगे फिर अपराजेय !

हम सबके दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ !
हम सब सैनिक अपराजेय !

[सात गीत वर्ष]

4. बोआई का गीत

(कोरस-नृत्य)

गोरी-गोरी सोंधी धरती—कारे-कारे बीज
बदरा, पानी दे !
क्यारी-क्यारी गूंज उठा संगीत
बोने वालो ! नयी फ़सल में बोओगे क्या चीज ?
बदरा, पानी दे !
मैं बोऊँगा बीर बहूटी, इन्द्रधनुष सतरंग
नये सितारे, नयी पीढ़ियाँ, नये धान का रंग
हम बोयेंगी हरी चुनरियाँ, कजरी, मेंहदी—
राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीज !
बदरा, पानी दे !

रघुवीर सहाय

1. धूप

देख रहा हूँ
लंबी खिड़की पर रखे पौधे
धूप की ओर बाहर झुके जा रहे हैं
हर साल की तरह गौरैया
अब की भी कार्निस पर ला-ला के धरने लगी है तिनके
हालांकि यह वह गौरैया नहीं
यह वह मकान भी नहीं
ये वे गमले भी नहीं, यह वह खिड़की भी नहीं
कितनी सही है मेरी पहचान इस धूप की ।

कितने सही हैं ये गुलाब
कुछ कसे हुए और कुछ झरने-झरने को
और हल्की-सी हवा में और भी, जोखम से
निखर गया है उनका रूप जो झरने को है ।

और वे पौधे बाहर को झुके जा रहे हैं
जैसे उधर से धूप इन्हें खींचे लिए ले रही है
और बरामदे में धूप होना मालूम होता है
जैसे ये पौधे बरामदे में धूप-सा कुछ ले आए हों ।

और तिनका लेने फुर्र से उड़ जाती है चिड़िया
हवा का एक डोलना है : जिसमें अचानक
कसे हुए गुलाब की गमक है और गर्मियाँ आ रही हैं,
हालांकि अभी बहुत दिन हैं—
कितनी सही है मेरी पहचान इस धूप की ।

और इस गौरैया के घोंसले की कई कहानियाँ हैं
पिछले साल की अलग और उसके पिछले साल की अलग

एक सुगंध है
बल्कि सुगंध नहीं एक धूप है
बल्कि धूप नहीं एक स्मृति है।
बल्कि ऊष्मा है, बल्कि ऊष्मा नहीं
सिर्फ एक पहचान है
हल्की-सी हवा है और एक बहुत बड़ा आसमान है
और वह नीला है और उसमें धुआँ नहीं है
न किसी तरह का बादल है
और एक हल्की-सी हवा है और रोशनी है
और यह धूप है, जिसे मैंने पहचान लिया है
और इस धूप से भरा हुआ एक बहुत बड़ा
नीला आसमान है
और इस बरामदे में धूप और हल्की-सी हवा और एक बसंत।

[सीढ़ियों पर धूप]

2. रामदास

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता, यह दिया गया था, उसकी हत्या होगी।

धीरे-धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह, उस दिन उसकी हत्या होगी।

खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रख करके आए
लोग सिमट कर आँख गड़ाए
लगे देखने उसको, जिसकी तय था हत्या होगी।

निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी ?

भीड़ ठेल कर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
"देखो देखो" बार बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें, जिन्हें संशय था हत्या होगी ।

[हँसो हँसो जल्दी हँसो]

धूमिल

मोचीराम

राँपी से उठी हुई आँखों ने मुझे
क्षण भर टटोला
और फिर
जैसे पतियाए हुए स्वर में
वह हँसते हुए बोला—
बाबूजी ! सच कहूँ—मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है

और असल बात तो यह है
कि वह चाहे जो है
जैसा है, जहाँ कहीं है
आजकल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है
फिर भी मुझे ख्याल रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं,
जो जूते से झाँकती हुई अंगुली की चोट छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है

यहाँ तरह-तरह के जूते आते हैं
और आदमी की अलग-अलग "नवैयत"
बतलाते हैं

सबकी अपनी-अपनी शक्ल है
अपनी-अपनी शैली है
मसलन एक जूता है :
जूता क्या है—चकतियों की थैली है
इसे एक चेहरा पहनता है
जिसे चेचक ने चुग लिया है
उस पर उम्मीद को तरस देती हुई हँसी है
जैसे "टेलीफून" के खंभे पर
कोई पतंग फँसी है
और खड़खड़ा रही है
"बाबूजी ! इस पर पैसा
क्यों फूंकते हो ?"
मैं कहना चाहता हूँ
मगर मेरी आवाज लड़खड़ा रही है
मैं महसूस करता हूँ—भीतर से
एक आवाज आती है—"कैसे आदमी हो,
अपनी जाति पर थूकते हो ।"
आप यकीन करें, उस समय
मैं चकतियों की जगह आँखें टाँकता हूँ
और पेशे में पड़े हुए आदमी को
बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ
एक जूता और है जिससे पैर को
"नाध कर" एक आदमी निकलता है
सैर को
न वह अकलमन्द है
न वक्त का पाबन्द है
उसकी आँखों में लालच है
हाथ में घड़ी है
उसे कहीं जाना नहीं है
मगर चेहरे पर
बड़ी हड़बड़ी है
वह कोई बनिया है
या बिसाती है
मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती है

"इशे बांद्धो, उसे काट्टो, हियाँ ठोठ्क्को, वहाँ पीट्टो
घिश्शा दो, अइशा चमकाओ, जुत्ते को ऐना बनाओ
.........ओफ़्फ़ ! बड़ी गर्मी है" रुमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर विसूरता है
सड़क पर "आतियों-जातियों" को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घण्टे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ "नट" जाता है
"शरीफों को लूटते हो" वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है
अचानक पहुँचकर सड़क से उछलता है
और पटरी पर चढ़ जाता है

चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कहीं न कही एक चोर कील
दबी रह जाती है
जो मौका पाकर उभरती है
और अंगुली में गड़ती है

मगर इसका मतलब यह नहीं है
कि मुझे कोई ग़लतफ़हमी है
मुझे हर वक्त यह ख्याल रहता है कि जूते
और पेशे के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झांकती हुई अंगुली की चोट
छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है
और बाबूजी ! असल बात तो यह है कि जिन्दा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रण्डियों की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है

और यही वह जगह है जहाँ हर आदमी
अपने पेशे से छूटकर
भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है
सभी लोगों की तरह
भाषा उसे काटती है
मौसम सताता है
अब आप इस बसंत को ही लो,
यह दिन तो ताँत की तरह तानता है
पेड़ों पर लाल-लाल पत्तों के हजारों सुखतल्ले
धूप में, सीझने के लिए
लटकाता है
सच कहता हूँ—उस समय
राँपी की मूठ को हाथ में सँभालना
मुश्किल हो जाता है
आँख कहीं जाती है
हाथ कहीं जाता है
मन किसी झुंझलाए हुए बच्चे-सा
काम पर आने से बार-बार इनकार करता है
लगता है कि चमड़े की शराफ़त के पीछे
कोई जंगल है जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है
और यह चौंकने की नहीं, सोचने की बात है
मगर जो जिन्दगी को किताब से नापता है
जो असलियत और अनुभव के बीच
खून के किसी कमजात मौके पर कायर है
वह बड़ी आसानी से कह सकता है
कि यार ! तू मोची नहीं, शायर है
असल में वह दिलचस्प ग़लतफ़हमी का
शिकार है
जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है
और भाषा पर
आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है
जबकि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती है सच्चाई

सबसे होकर गुजरती है
कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं
कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अंधे हैं
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं
जबकि मैं जानता हूँ कि "इनकार से भरी हुई एक चीख"
और "एक समझदार चुप"
दोनों का मतलब एक है—
भविष्य गढ़ने में, "चुप" और "चीख"
अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना-अपना फ़र्ज अदा करते हैं।

[सड़क तक]

———

परिशिष्ट

[कवि परिचय, शब्दार्थ, आवश्यक सन्दर्भ और अन्तःकथाएँ]

1. कबीर

"कबीर का व्यक्तित्व न केवल हिंदी सन्त कवियों में अपितु पूरे हिंदी साहित्य में बेजोड़ है। हिन्दी-साहित्य के लगभग बारह सौ वर्षों के इतिहास में तुलसीदास को छोड़कर, इतना प्रभावशाली और महिमा मंडित व्यक्तित्व दूसरे कवि का नहीं है। वह हिन्दुओं के लिए "वैष्णव भक्त", मुसलमानों के लिए "पीर", सिक्खों के लिए "भगत", कबीर पंथियों के लिए "अवतार", आधुनिक राष्ट्रवादियों के लिए "हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यविधायक", नव-वेदान्तियों के लिए "विश्व-धर्म या मानव धर्म प्रवर्तक", प्रगतिशील तत्वों की दृष्टि में "समाज-सुधारक" जातिगत श्रेष्ठता के विरोधी, सामाजिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के पक्षधर, क्रान्तिकारी और क्षमता, बन्धुत्व-भावना, न्याय तथा एकता के प्रतिपादक के रूप में मान्य हैं।"[1]

कबीर हिन्दी साहित्य के सन्त शिरोमणि हैं। मध्ययुग में पण्डितों और मुल्लाओं के धार्मिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध सर्वहारा सन्तों ने जो प्रबल साहित्यिक क्रान्ति की थी, उसका नेतृत्व और स्वर-वहन कबीर ने किया था। उन निर्धन, निर-क्षर, पर क्रान्तिकारी सन्तों ने हिंदूओं और मुसलमानों के साम्प्रदायिक भेदभाव को निरर्थक बतलाकर मानव-समाज की सांस्कृतिक एकता की जो आवाज लगाई थी, उसमें कबीर का स्वर सबसे ऊँचा था।

कबीर का जन्म सं० 1445 (1398 ई०) में हुआ। उनके सम्बन्ध में जनश्रुति है कि वे ज्योति-रूप में काशी के लहरतारा-तालाब से अवतीर्ण हुए थे। नीरू नामक जुलाहा अपनी नीमा का गौना करा कर उधर से जा रहा था। उन लोगों ने उस बालक को उठा लिया और घर पर पाला-पोसा। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार बंगाल में हिन्दुओं और मुसलमानों के मेल से एक जाति बनी थी, जिसका नाम था "जोगी"। यह जाति न अपने को हिन्दू कहती थी, न मुसलमान। इसी गाँव में कबीर का जन्म हुआ होगा। एक दूसरे मत के अनुसार रामानन्द ने एक ब्राह्मणी पर प्रसन्न होकर, यह न जानते हुए कि वह विधवा है, उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया। उसी के गर्भ से कबीर उत्पन्न हुए। पुत्र होने पर लोक-भय

---

(1) कबीर वाणी पीयूष—डॉ० जयदेव सिंह, डॉ० वासुदेव सिंह

से वह ब्राह्मणी लहरतारा पर उसे फेंक आई और नीरू-नीमा ने उसे उठा लिया। जुलाहा माता-पिता ने उस बच्चे का नामकरण काजी से कराना चाहा। काजी ने किताब से जो नाम निकाला, तो चार नाम निकले—कबीर, अकबर, कुबरा और कुबरिया। काजी झुंझला उठा; क्योंकि इतने बड़े-बड़े नाम जुलाहे के बेटे को नहीं मिल सकते थे। पर इतने में वह बालक कह उठा कि हम "आतम रूप और शब्दप्रकाशी" हैं। काजी ने उसे कबीर नाम दे दिया। जब कबीर पाँच साल के बच्चे थे, तभी हर घड़ी खेलते-खाते "राम-राम" जपा करते थे। लोग उन्हें चिढ़ाते और "निगुरा" कहते। इससे कबीर को बड़ा दुःख हुआ। स्वामी रामानन्द जी ब्रह्मवेला में रोज गंगा-स्नान करते थे। अतः एक दिन कबीर उनके स्नान कर लौटने से पहले अंधेरे में जाकर घाट की सीढ़ियों पर लेट गये। रामानन्द जब स्नान करके लौटे तो उनका पाँव कबीर के शरीर पर पड़ गया और सहासा उनके मुँह से "राम-राम" निकल पड़ा। बस, कबीर ने रामानन्द को अपना गुरु और "राम-राम" को गुरुमन्त्र मान लिया। यह भी कहा जाता है कि कबीर पण्डितों और मुल्लाओं के वाह्याडम्बरों की निन्दा किया करते थे। इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों उनसे चिढ़े हुए थे। अतः, जब सिकन्दर लोदी बादशाह काशी पहुँचे, तब लोगों ने उनसे कबीर की शिकायत की। सिकन्दर लोदी की आज्ञा से कबीर को जंजीरों में बाँधकर गंगा में फेंक दिया गया। मगर, थोड़ी ही देर बाद वे गंगा की धारा पर आसन जमाये बैठे दिखाई पड़े। मृत्यु के सम्बन्ध में जो जनश्रुति है, उसके अनुसार मरने के पहले कबीर मगहर[2] च... गये। वहाँ कबीर के हिन्दू और मुसलमान दोनों शिष्य पहुँचे। हिन्दू शिष्य वीरसिंह बघेला और मुसलमान शिष्य नवाब बिजली खाँ दोनों कबीर का शव लेना चाहते थे। वीरसिंह उनके शव को जलाना चाहते थे और बिजली खाँ कब्र में दफनाना। कबीर ने दोनों को समझाया कि मेरे शव के लिए झगड़ा न करना और कुछ कमल के फूल और चादर लेकर एक कोठरी में बन्द हो गये। थोड़ी देर में एक आवाज हुई और कोठरी खोली गई। मगर यहाँ कबीर का शव न था, थीं वे ही दो चादरें और फूल। अतः आधे फूलों को वीरसिंह ने जलाया और आधे को बिजली खाँ ने दफनाया।

कबीर की रचनाओं के अन्तःसाक्ष्य पर अर्थात् कबीर के पदों में आई हुई बातों के आधार पर जो कुछ कहा जा सकता है, वह संक्षेप में यह है—

1. कबीर जाति के जुलाहा थे और कपड़े बुनने का उद्यम करते थे।
2. कबीर का जन्म और निवास स्थान काशी था।

---

2. मगहर—बस्ती जिले का एक कस्बा, गोरखपुर से साढ़े तेरह मील की दूरी पर स्थित। इस नगर के पूर्व में आमी नदी के तट पर नवाब बिजली खाँ ने कबीर की समाधि बनवायी थी। वहाँ हिन्दू-मुस्लिम दोनों जाते हैं। उसी के निकट कबीर की दूसरी समाधि है, जहाँ केवल हिन्दू जाते हैं।

3. रामानन्द उनके गुरु थे।

4. कबीर के पिता का नाम नीरू (या नूरी), माता का नाम नीमा, पत्नी का नाम लोई, पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। चूंकि कबीर भक्ति-भजन में ही लगे रहते थे, इसलिए कपड़े बुनने का काम ठीक से नहीं चलता था। फलत: उनके बाल-बच्चों को खाने-पीने की बहुत तकलीफ होती थी। उनकी माता इस कारण बहुत दुखी रहती थी और कबीर उसे बराबर भगवान का भरोसा दिलाते रहते थे—

तनना बुनना तज्या कबीर रामनाम लिखि लिया सरीर।
ठाढ़ी रोवै कबीर की माई। ऐ उरिका क्यूं जीवै खुदाई।
कहहिं कबीर सुनहूँ री माई। पूरनहारा त्रिभुवन राई।।

5. कबीर एक अक्खड़ सन्त थे, एक बेलौस आदमी थे, एक स्पष्टवादी व्यक्ति थे।

कबीरा खड़ा बाजार में सबकी माँगे खैर।
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।।

6. मृत्यु के समय वे काशी से मगहर चले गये थे—

का कासी का मगहर ऊसर हृदय राम बस मोरा।
जो कासी तन तजइ कबीरा रामहिं कौन निहोरा।।

कबीर की मृत्यु सं० 1575 (1518 ई०) में हुई। उन्होंने स्वत: कोई पंथ नहीं चलाया। उनकी मृत्यु के बाद उनके नाम पर एक सम्प्रदाय चला, जिसका नाम "कबीर पंथ" है। कबीर का प्रसिद्ध ग्रन्थ है "बीजक", जिसके तीन भाग हैं—साखी, सबद और रमैनी।

कबीर का प्रथम दार्शनिक सिद्धान्त है कि ईश्वर एक है और वह सर्वव्यापक एवं निर्गुण है। इस दृष्टि से कबीर एकेश्वरवादी हैं। वे मानते हैं कि भगवान् एक है। अलग-अलग सम्प्रदायों का अलग-अलग भगवान् नहीं हो सकता।

दुई जगदीश कहाँ ते आये, कहु कोन भरमाया।
अल्ला राम करीमा केसो हरि हजरत नाम धराया।।

भगवान् एक है, चाहे उसे जो कह लो, जो नाम दे दो। गहने चाहे अलग-अलग हों, पर सबमें सोना तो एक ही रहता है।

वस्तुत: कबीर का एकेश्वरवाद भारतीय ब्रह्मवाद के निकट है जिसका विवेचन करते हुए "उपनिषद्" में कहा है—एकोहम् बहुस्याम (अनेक रूपों में मैं एक ही हूँ)।

कबीर मानते हैं कि भगवान् सर्वव्यापक है, घट-घटवासी है। कोई पदार्थ, कोई स्थान ऐसा नहीं है, जिसमें भगवान् रमा हुआ न हो।

सब घट मेरा साइयाँ सूनी सेज न कोय।

भगवान् का यह सर्वव्यापक रूप निर्गुण ही हो सकता है, सगुण नहीं। कबीर मानते हैं कि भगवान् अत्यन्त सूक्ष्म और निर्गुण सत्ता है। भगवान् नाम, रूप और गुणों से अतीत है—

सतगुन राजस तसमस तीन्यू ये सब तेरी माया।
चौथे पद को जो जन चीन्हें तिनहि परम पद पाया॥

ऐसा भगवान् मन के भीतर रहता है—मन्दिर-मस्जिद में नहीं। अत: कबीर का दूसरा सिद्धान्त है कि अवतारवाद, पैगम्बरबाद, बहुदेवतावाद सब मिथ्या है। मूर्ति-पूजा निरर्थक है। मन्दिर-मस्जिद झूठे हैं। तीर्थ, उपवास, नमाज सब ढोंग हैं। कबीर भगवान् की ओर से कहते हैं—

ना मैं मन्दिर ना मैं मस्जिद ना छुरी गरास में।
मुझको कहाँ ढूँढ़े वन्दे मैं तो तेरे पास में॥

वे बार-बार यह सन्देश देते हैं कि भगवान् मन के भीतर हैं। मन पर अज्ञान का घूंघट पड़ा है, इसलिए वह नहीं दीखता। अज्ञान का पर्दा उठाकर उसे देखा जा सकता है—

तो को पीव मिलेंगे घूंघट के पट खोल रे।
घट-घट में वह साँई रहता, कटुक वचन मत बोल रे।

कबीर का तीसरा सिद्धान्त है कि जीव, जगत् और ब्रह्म तत्वतः अभिन्न हैं। इस दृष्टि से वे अद्वैतवादी हैं। वे मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा अभिन्न हैं। दोनों में अन्तर तभी तक मालूम होता है, जब तक सत्य और ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। ज्ञान मिल जाने पर जीव और ब्रह्म का भेद मिट जाता है।

जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु तब मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, तामे दो न समाहिं॥

इसलिए कबीर ने कभी मुक्ति के लिये संन्यास लेने की आवश्यकता ही नहीं समझी। उन्होंने गृहस्थी की चादर कभी उतारी ही नहीं। वे जीवन-भर अपना

धन्धा करते रहे। कबीर जीवन में ही जीवन-मुक्त हो गये थे। गृहस्थी के भीतर ही उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति कर ली थी। वह सच्चे सन्त थे।

कबीर का चौथा सिद्धान्त है कि भगवान् की प्राप्ति प्रेममय ज्ञान से होती है, अहंकारमय ज्ञान से नहीं। इसलिए उन्होंने किताबी ज्ञान को अज्ञान माना है; क्योंकि ऐसे ज्ञान से अहंकार उत्पन्न होता है और अहंकार अन्धकार है, अज्ञान है, बन्धन है, वह आदमी को भगवान् से दूर ले जाता है। इसलिए कबीर ने कहा है कि सच्चा तत्वदर्शी वह नहीं है, जो शास्त्रों के अनुशीलन में लगा रहता है, किन्तु आत्मानुभूति नहीं करता। सच्चा मंत्रदृष्टा वह है, जो अपनी आत्मा में सहज अनुभूति अर्जित करता है और प्रेम के ढाई अक्षर अक्षत लेकर भगवान के सम्मुख उपस्थित होता है—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर भाषा के "बादशाह" थे। उनकी भाषा को प्रायः "सधुक्कड़ी" भाषा कहकर टाल दिया जाता है। "सधुक्कड़ी" का मतलब है रमते साधुओं की भाषा, जिसमें विभिन्न जातियों और प्रदेशों के शब्द मिले रहते हैं। कबीर की भाषा खड़ी बोली है, पर उसमें ब्रजभाषा, अवधी, मगही, भोजपुरी, बुन्देलखंडी, राजस्थानी, पंजाबी, आदि का मेल है। किन्तु, इतना कह देने से उनकी भाषा की आलोचना पूरी नहीं हो जाती। कबीर की भाषा कबीर की आत्मा में गढ़ी गई है। भाषा उनकी बाँदी है। वे अपनी इच्छा के अनुसार भाषा को जहाँ से चाहते हैं, इस प्रकार मोड़ लेते हैं कि भाव अपने चरम रूप में प्रकाशित हो उठता है, जैसे सलाई की काठी रगड़ खाकर जल उठती है।

इस सधुक्कड़ी भाषा में बनी कबीर की कविता उस अनगढ़ ढेले के समान है, जो इसी रूप में रहने के कारण अधिक चोट करती है। उनकी भाषा की विशेषता है, चरम स्पष्टवादिता और उनकी कविता की विशेषता है, चरम प्राणस्पर्शिता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ठीक ही कबीर आदि सन्तों को "मर्मी कवि" कहा है। भाव के मर्म की ऐसी दृढ़ पकड़ और उसका ऐसा खुलासा और कहाँ है?

कबीर की भाषा के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"वे साधना के क्षेत्र में युग-गुरू थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य स्रष्टा। संस्कृत के 'कूप-जल' को छुड़ाकर उन्होंने भाषा के बहते नीर' में सरस्वती को स्नान कराया। उनकी भाषा में बहुत-सी बोलियों का मिश्रण है, क्योंकि भाषा उनका लक्ष्य नहीं था और अनजान में वे भाषा की सृष्टि कर रहे थे।"[3]

---

3. हिन्दी साहित्य की भूमिका : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

[पद]

[प्रारंभिक सात पद "कबीर वाणी" (संपादक : आचार्य क्षितिमोहन सेन) से लिए हैं]

पद—1

शब्दार्थ

गहि=	रोककर, पकड़कर, थामकर
गुरु=	ब्रह्मा, गुरू, आचार्य
शिष्य=	चेला, अनुयायी
वेद=	वेद शब्द "विद्" धातु से बना है। इसका अर्थ ज्ञान है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व-वेद।
पुरान=	पुराण, प्राचीन, पुराना, जीर्ण-शीर्ण, प्राचीन वृतांत, सृष्टि, लय, मन्वंतरों तथा प्राचीन ऋषियों मुनियों और राजाओं के वंशों तथा चरितों के वर्णन से युक्त प्रसिद्ध हिन्दू धर्मग्रन्थ (जो अठारह हैं—विष्णु, पद्म-ब्रह्म, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्मांड और भविष्य)
सुर=	देवता
अनुरागी=	प्रेमी, श्रद्धा रखने वाला भक्त
वैरागी=	विरक्त व्यक्ति, रामानुज के अनुयायी उदासीन वैष्णव
षट-दर्शन=	भारतीय आचार्यों के छह दर्शन या शास्त्र—सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग और वेदान्त
काया=	शरीर
केरि=	की

पद—2

शब्दार्थ

देश विराना=	दूसरे का देश, अज्ञात देश
संसार=	दुनिया, आवागमन, जन्म-मरण, मायाजाल,
बाड़ी=	बाड़, घेरा
बरि जाना=	जल जाना (जलना)

पद—3

शब्दार्थ

माया=	धन-संपत्ति, सांसारिकता
ठगिनी=	ठग का स्त्रीलिंग रूप, धोखा देकर धन हरण करने वाली

तिरगुन फांस= तीन गुणों का फंदा। सत, रज और तम तीन गुण हैं।
कर= हाथ
केसव= केशव, विष्णु
कंवला= कमला, लक्ष्मी
भवानी= पार्वती
पंडा= मठाधीस
जोगिन= चेली
कौड़ी= एक समुद्री कीड़े का अस्थिकोष,
काहू के कौड़ी= कानी "कानी (राजस्थानी-काणी) कौड़ी न होना" मुहावरे का प्रयोग निर्धनता (दरिद्रता) के संदर्भ में होता है। कबीर युग में भी कौड़ी—का प्रयोग मुद्रा के रूप में होता था।
साहब का बंदा= स्वामी का सेवक

पद—4

शब्दार्थ

बौराना= पागल हो जाना
पतियाना= विश्वास करता है।
रहमाना (अरबी)=दयालु
मरम= भेद
धर्मी= धर्म का पालन करने वाला
आतम= अपना, निजी,
पषाने= पत्थर को
थोथा= खाली, खोखला
डिंभ= दम्भ, आडम्बर
गुमान (फारसी)=अभिमान
पीर (फारसी)= धर्मगुरु
औलिया (अरबी)=संत
मुरीद (अरबी)= शिष्य
मेहर= दया
स्याना= (1) चतुर, बुद्धिमान, (2) चालाक, धूर्त

पद—5

शब्दार्थ

सांई= स्वामी, मालिक
कटुक वचन= बुरे शब्द, कटुवचन
दियना= दीपक

जोगजुगत= योग की क्रिया

अनहद= योग का एक साधन जिसमें हाथ के अंगूठों से कान बन्द करके शब्द विशेष सुनते हैं।

पद—6

शब्दार्थ

बिर= बीर, भाई

हंस= प्राण, जीवनी शक्ति

तिरिया= स्त्री

लाह= लाख, चपड़ा

पद—7

शब्दार्थ

दरपन= दर्पण, शीशा

कोइलिया= कोयल

सुवना= सुक, तोता

पाथर= पत्थर

छन= क्षण

रन= रण, युद्ध

पाग= पगड़ी

पद—8

शब्दार्थ

बाद बदै= शास्त्रार्थ करे।

गति पावै= मोक्ष प्राप्त करे।

दाझै= दग्ध होना।

त्रिखा= तृषा।

सुरति= स्मरण; याद, स्मृति।

जाती= जायगा।

साखी

अनुभूति से साक्षात्कृत सत्य को प्रकट करने वाली उक्ति को साखी कहते हैं। "साखी" शब्द "साक्षी" से बना है जिसका अर्थ है "प्रत्यक्ष ज्ञान"। "साखी" में शिक्षा या उपदेश का भाव भी निहित है। इन साखियों में गुरु शिष्य को जीवन के तत्व ज्ञान की शिक्षा देता है।

शब्दार्थ

2—कुंडलि= नाभि में।

3—पहुप= फूल।

पातरा= पतला।

4—बृच्छ= वृक्ष।

5—सूप= छाजड़ा, अनाज साफ करने का पात्र।
6—धका= धक्का, झोंका :
7—गो=गाय। गज=हाथी। बाजि=घोड़ा।

2. मलिक मुहम्मद जायसी

हिन्दी की सूफी काव्य-परम्परा में जायसी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। जायसी का जन्म सन् 1492 ई० में जायस (अमेठी) में हुआ था, इसी से उनका नाम जायसी पड़ा। कुछ विद्वान गाजीपुर को भी जायसी का जन्मस्थान मानते हैं। पर निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि जायसी के जीवन का अधिकांश समय जायस में ही बीता था।

"जायसी का असली नाम मुहम्मद था। उनके नाम के साथ मलिक लगा हुआ है। इससे बहुत लोगों ने अनुमान लगाया है कि उनके पूर्वज अरब के थे और किसी समय आकर भारत में बस गए थे। कहते हैं कि इनके पिता का नाम मालिक शेख ममरेज था, लेकिन इनकी माता का नाम मालूम नहीं है। कहते हैं कि इनके माता-पिता जायस नगर के कंचाने मुहल्ले में रहते थे। सैयद कल्बे मुस्तफा के अनुसार इनके नाना का नाम शेख अलदाद था और कहा जाता है कि जायसी का बाल्यकाल उन्हीं के साथ बीता। इनकी ननिहाल मानकपुर में थी।"

"सैयद कल्बे मुस्तफा का कहना है कि जायसी लूले और कुबड़े थे इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन जायसी ने अपने संबंध में जो लिखा है, उससे इस बात का पता अवश्य चल जाता है कि वह कुरूप थे और उनकी बायीं आँख और बायाँ कान किसी कारण नहीं रहे।"[1]

जायसी सूफी संत थे। शरीर से कुरूप थे, पर हृदय उदार और निर्मल था। मानव मात्र के प्रति सहृदयता और प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हो जायसी ने मानव-हृदय की उस अवस्था के दर्शन कराये, जहाँ सभी धर्मों और सम्प्रदायों के भेदभाव तिरोहित हो जाते हैं और मनुष्य ऐक्य, प्रेम एवं सहानुभूति का अनुभव करता है।

उन की कुरूपता और बायीं आँख और कान के जाते रहने के सम्बन्ध में यह बात प्रचलित हो गई है कि बाल्यकाल में उन पर शीतला का प्रकोप हुआ था।

---

1. जायसी—डॉ० रामपूजन तिवारी

जायसी के जीवन से संबद्ध कई किंवदन्तियाँ जुड़ी हुई हैं। कहते हैं कि एक बार जायसी शेरशाह के दरबार में गये और उनके चेहरे को देखकर शेरशाह हँस पड़ा। साथ ही दरबारी भी हँस पड़े। जायसी शांत बने रहे और बोले "मोहिं काँ हँससि कि कोहरहिं"—अर्थात् तुम मुझ पर हँसे या मेरे बनाने वाले कुम्हार पर ? शेरशाह यह सुनकर अत्यन्त लज्जित हुआ और समझ गया कि वह एक सिद्ध पुरुष हैं। उसने जायसी से क्षमा माँगी। इस घटना का वर्णन "रमूजे-उर-आरफीन"—(मीर हसन देहलवी) में मिलता है।

जायसी एक सिद्ध फकीर थे और उनके बहुत से शिष्य थे। हिन्दू तथा मुसलमान सभी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे

जायसी की मृत्यु सन् 1542 ई० में अमेठी में हुई थी। उनकी कब्र अमेठी के राजा के कोट से पौन मील की दूरी पर है।

अभी तक जायसी की छह रचनाएँ प्रकाश में आई हैं—(1) "पद्मावत", (2) "अखरावट" ; (3) "आखिरी कलाम" ; (4) "चित्ररे" ; (5) "मसला" ; (6) "कहरनामा"।

पद्मावत जायसी की सर्वोत्कृष्ट रचना है। यही ग्रन्थ जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार भी है।

जायसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और उसकी प्राप्ति के लिए "प्रेम" की साधना में विश्वास रखते थे। इस प्रेम मार्ग में उन्होंने विरह पर सर्वाधिक बल दिया है। अपने प्रिय (ईश्वर) से वियोग की तीव्र अनुभूति भक्त को साधना-पथ पर अग्रसर होने को प्रेरित करती है। अपनी इसी भक्ति-भावना को उन्होंने "पद्मावत" में व्यक्त किया है।

जायसी ने "पद्मावत" में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमकथा का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। एक ओर तो इतिहास और कल्पना के सुन्दर संयोग से यह एक उत्कृष्ट प्रेमगाथा है, और दूसरी ओर इसमें आध्यात्मिक प्रेम की भी अत्यन्त भावमयी अभिव्यंजना है। इस प्रकार की रचनाओं को हमारे यहाँ "प्रेमाख्यान" कहा गया है। निश्चय ही जायसी का "पद्मावत" हिन्दी का श्रेष्ठ प्रेमाख्यान काव्य-ग्रन्थ है।

जायसी का विरह-वर्णन अत्यन्त विशद एवं मर्मस्पर्शी है। संयोग-काल की रूपगर्विता नागमती विरह में अत्यन्त सामान्य नारी बन जाती है। वह अपने हृदय की विरह-व्यथा की व्यंजना रानी के रूप में नहीं, अपितु नारी-जीवन की सर्वमान्य अनुभूतियों के माध्यम से करती है। नागमती प्रकृति और जगत की प्रत्येक क्रिया को सजग होकर देखती है। बाहरी जगत का उल्लास उसे अपनी संयोगावस्था की

याद दिलाता है तथा वियोग-व्यथा को और भी तीव्र कर देता है। "षट्ऋतु वर्णन" और "बारहमासा" जायसी के संयोग एवं विरह वर्णन के अत्यन्त मार्मिक स्थल हैं। जायसी रहस्यवादी कवि हैं, उन्होंने ईश्वर और जीव के पारस्परिक प्रेम की व्यंजना दाम्पत्य-भाव के रूप में की है। रत्नसेन जीवन है तथा पद्मावती परमात्मा। यह सूफी पद्धति है। "पद्मावत" में पुरुष (रत्नसेन) प्रियतमा (पद्मावती) की खोज में निकलता है। जायसी ने इस प्रेम की अनुभूति की व्यंजना रूपक के आवरण में की है। इन्होंने साधनात्मक रहस्यवाद का चित्रण भी किया है, जिसकी प्रधानता कबीर में दिखायी देती है। जायसी ने सम्पूर्ण प्रकृति में पद्मावती के सौन्दर्य को देखा है तथा प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को उस परम सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए आतुर और प्रयत्नशील दिखाया है। यह प्रकृति का रहस्यवाद कहलाता है। जायसी की भाँति कबीर में हमें यह भावात्मक प्रकृतिमूलक रहस्यवाद देखने को नहीं मिलता।

"पद्मावत" महाकाव्य विरहानुभूति के मार्मिक वर्णन और अलौकिक सौन्दर्य की उत्कृष्ट अभिव्यंजना के कारण अत्यन्त भावपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी हो गया है। जीवन के विविध पक्षों का व्यापक चित्रण जायसी के काव्य में हुआ है। पद्मावत के रूप-सौन्दर्य का मर्मस्पर्शी वर्णन नख-सिख-वर्णन पद्धति पर हुआ है। श्रृंगार के संयोग एवं वियोग पक्ष के हृदयहारी एवं मार्मिक चित्र पद्मावत में देखे जा सकते हैं। गोरा-बादल के युद्ध वाले प्रसंग में वीर, रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रसों की सुन्दर व्यंजना हुई है। आध्यात्मिकता की गंगा में नहायी यह प्रेम-कथा शान्त रस की दिव्य अनुभूति में पाठक को निमग्न कर देती है। इस प्रकार सौन्दर्य, प्रेम, रहस्यानुभूति, भक्ति आदि की अभिव्यंजना से पुष्ट जायसी के काव्य का भावपक्ष बड़ा सबल है।

जायसी की भाषा अवधी है। उसमें बोलचाल की लोकभाषा का उत्कृष्ट भावाभिव्यंजक रूप देखा जा सकता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से उसमें प्राणप्रतिष्ठा हुई है। अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक है। केवल चमत्कारपूर्ण कथन की प्रवृत्ति जायसी में नहीं है। मसनवी शैली पर लिखित "पद्मावत" में प्रबंध काव्योचित सौष्ठव विद्यमान है। दोहा और चौपाई जायसी के प्रधान छन्द हैं।

नागमती वियोग वर्णन

या

बारहमासा

विरह वर्णन के प्रसंग में ऋतु वर्णन की सामान्यतः दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं: षट्ऋतु वर्णन या बारहमासा। षट्ऋतु वर्णन संस्कृत महाकाव्यों का अनिवार्य अंग रहा है। अपभ्रंश और हिंदी में बारहमासा को स्थान मिला है जिसके मूल में लोक

साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है। लोक-साहित्य में प्रचलित बारहमासा प्राय: आषाढ़ से आरंभ होकर जेष्ठ में समाप्त होता है। यही पद्धति जायसी ने भी अपनाई है।

यह खण्ड बारहमासा की पद्धति में परम्परागत प्रेम की विरह-भावना का मर्मस्पर्शी चित्र है। इसमें प्रकृति और नागमती में कहीं तो बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है, कहीं प्रकृति में नागमती के साथ सहानुभूति है और कुछ स्थलों में प्रकृति की तटस्थता और उदासीनता के कारण विरहिणी की असहाय अवस्था की मर्मभेदिनी व्यंजना है।

शब्दार्थ—(1) चितउर=चित्तौड़। बर=वरन, बल्कि, आनंद=आनंद, प्रसन्नता। खगि=मादा सारस। अकरूर=अक्रूर। बियाघा=बधिक, शिकारी।

(2) बाउर=बावला। दाधे=जलता है। विरहवान=वियोग के वाण अर्थात् अत्यन्त विरह-पीड़ा। भाखा=वचन। आति=आकर।

(3) गाजा=गरजने लगा। खरग बीज=विजली रूपी खड्ग। अद्रा=आर्द्रा नक्षत्र। भुई=भूमि। आने=झुक गई। बेझ=बेधना। पुख=पुष्य नक्षत्र। नाह=नाथ, स्वामी। गारौ=अभिमान, गौरव।

(4) अतिवानी=अत्यधिक। भरनि=मूसलाधार वर्षा, खेत में पानी भर जाना। पुनर्बसु=आसाढ़ शुक्ल में लगभग पाँच जुलाई को यह नक्षत्र लगता है। सरेखा=चतुर। भंमीरा=एक प्रकार का पतिगा जो चक्कर लगाकर उड़ता रहता है। ढंख=ढाख, वृक्ष।

(5) भरों=पूरी करूँ। अनैत=अन्यत्र। भै=हो गई। धै धै=दौड़-दौड़ कर। तरासा=त्रास देते हैं, डराते हैं। गरासा=ग्रस लेता है। ओरी=ओलती, औलानी, छप्पर से चूने वाली पानी की बूंदें। पुहुमि=पृथ्वी। झूरी=सूख गए हैं। औगाह=अगाध।

(6) परभूमिलटा=परदेश में लिप्त रहने वाला। पलुहै=पल्लवित होना। तुरय=तुरंग, घोड़ा। पलान=जीन। चित्रा मित मीन घर आवा=चित्रा नक्षत्र का मित्र चन्द्रमा है। इस पंक्ति का दूसरा अर्थ भी स्पष्ट है—हे मेरे चित्त के मित्र, मीन राशि में तो तुम घर आ जाओ। अवगास=अवकाश, जगह, मैदान। बाजहु=पहुँचो। गाजहु=गर्जना करो। होई सुदूर=शार्दूल (शेर) बन कर, भाव यह है कि रत्नसेन रूपी शेर की गर्जना से विरह रूपी हाथी दूर भाग जाएगा।

(7) करा=कला। अगिडाह=अग्निदाह। मुनिवरा=सप्तर्षि, सौभाग्यवती स्त्रियाँ कार्तिक की पूर्णिमा को सप्तर्षियों की पूजा करती हैं। सवति=सौत। झूमक=विशेष प्रकार का लोकगीत।

(8) सीऊ=सीत। चीर रचे=चीरों का रंग लिया है। सियरी=सीरी, शीतल। संदेसरा=संदेशा, "ड़ा" प्रत्यय में प्रेम की व्यंजना। धनि=स्त्री। बहुरा=लौटकर।

(9) सुरुज=सूरज। लंक दिसि=लंका की दिशा, दक्षिण दिशा। सौर सुपेती=जाड़े के ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र, बुनकर द्वारा बनाई गई खोर (खोड़) की बनी हुई बिना रंगी हुई रजाई को सौर कहते है। हिवंचल=हिम, बरफ। सचान=बाज पक्षी। चांडा=प्रचंड। ररि=रट-रटकर।

(10) माह=माघ मास। पहल पहल=तह पर तह। झाँपे=छिपाना या ढँकना। हहलि हहलि=हहर हहरकर। रसमूल=मूल रस (शृंगार रस)। माँहुट=महावट, माघ मास की वर्षा। झोला=झोंका। पटीरा=रेशमी वस्त्र। गिय=ग्रीवा, गर्दन। हरुई=हलकी पड़ गई। मकु=संभवतः। तिनुवर=तिनकों का ढेर। झोल=भस्म या गरम राख।

(11) सीउ=शीत। किमि=कैसे। पियर=पीला। झोरा=झोरना, पेड़ से पत्ते गिराना। करि—हाथी। बनाफति—वनस्पति। चाँचरि=एक शृंगार प्रधान गीत या नृत्य जो फागुन में गाया जाता है, होली का स्वाँग, हुड़दंग।

(12) धमारी=धमार, होली का एक राग। संसार उजारी=संसार उजाड़ा है। मजीठ=एक लता जिसके गोल-गोल पत्तों से लाल रंग तैयार किया जाता है। मोरे=मेरे। संवरि=स्मरण करके। नारंग=नारंगी स्तन। सोवा=सुग्गा, सुआ। घिरिनि परेवा=पटेवा अर्थात् एक प्रकार का कबूतर (लोटन कबूतर)।

(13) बजागि=वज्राग्नि। सूरज······हांका=जलते हुए सूर्य ने हिमालय की उत्तर दिशा पकड़ ली है। इस स्थिति में विरह वज्राग्नि बनकर सामने रथ लेकर आ रहा है। बिहराना=टूट जाना। भारु=भाड़। दवंगरा=दौंगरा, अषाढ़ की पहली वर्षा। मेरवहु=मिलाओ।

(14) लुवारा=तप्त वायु। चारिहु पवन=पुरवैया, पछिहवाँ, उतराहा, दखिनाहा। मंदी=मंदी आँच। दुख बाँधी=दुख की ऐंठन।

(15) छाजनि=त्वचा का एक रोग।

अन्तःकथा

(1) **गोपीचंद**—गोपीचन्द बंगाल के राजा माणिकचन्द्र और उनकी रानी मैनावती के पुत्र कहे जाते हैं। माता मैनावती ने पुत्र को गुरु जालंधरनाथ (जिनका नाम हाड़ीपा भी था) से दीक्षा दिलवा कर योगमार्ग में प्रवृत्त किया। गोपीचन्द के

अनेक गान बंगला में एवं देश्य भाषाओं में प्रचलित हैं। हिन्दी में भी लक्ष्मणदास का बनाया एक गोपीचन्द गान है (शशिभूषणदास गुप्त, अप्रसिद्ध धार्मिक सम्प्रदाय (अंग्रेजी ग्रन्थ, पृ० 433)।[1]

(2) **जालंधर जोगी**—जालंधरनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के गुरु भाई थे, और मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ के गुरु थे। बंगाल में ये जाति के हाड़ी या हलालखोर माने गए हैं। ये बहुत बड़े सिद्ध और योगमार्ग की कापालिक शाखा के प्रवर्तक थे।[2]

जालंधरनाथ के विषय में कहा जाता है कि वे गोपीचन्द की माता मैनावती के भी गुरु थे। वे ही गोपीचन्द को पत्नियों से विरक्त करके अपने साथ ले गये थे।

(3) **वामन**—वामन भगवान विष्णु के अवतार हैं। उनका शरीर बावन अंगुल का था। उन्होंने राजा बलि से तीन पग धरती मांगी थी। उन्होंने तीन पगों से सम्पूर्ण धरती और बलि का शरीर भी नाप लिया था।

(4) **कर्ण**—कर्ण कुन्ती के पुत्र थे और अपनी दानवीरता के लिए प्रसिद्ध थे। इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धर कर कर्ण से उनके कवच और कुण्डल दान में ले लिये थे। इससे वे शक्तिहीन हो गये थे।

(5) **अक्रूर**—यादववंशी कृष्णकालीन एक मान्य व्यक्ति थे। ये सात्वत वंश में उत्पन्न वृष्णि के पौत्र थे। इनके पिता का नाम श्वफल्क था जिनके साथ काशी के राजा ने अपनी पुत्री गांदिनी का विवाह किया था। इन्हीं दोनों की सन्तान होने से अक्रूर 'श्वफल्कि' तथा 'गांदिननंदन' के नाम से भी प्रसिद्ध थे। मथुरा के राजा कंस की सलाह पर ये बलराम तथा कृष्ण को वृन्दावन से मथुरा लाए (भागवत 10/40)।

स्यमंतक मणि से भी इनका बहुत संबंध था। अक्रूर तथा कृतवर्मा द्वारा प्रोत्साहित होने पर शतधन्वा ने कृष्ण के श्वसुर तथा सत्यभामा के पिता सत्राजित का वध कर दिया, फलतः क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण ने शतधन्वा को मिथिला तक पीछा कर मार डाला, पर मणि उसके पास नहीं निकली। वह मणि अक्रूर के ही पास थी जो डर कर द्वारिका से बाहर चले गए थे। उन्हें मनाकर कृष्ण मथुरा लाए तथा अपने बंधुवर्गों में बढ़ने वाले कलह को उन्होंने शांत किया (भागवत 10/57)।

---

1. पद्मावत—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
2. नाथसम्प्रदाय—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

3. सूरदास

सूरदास कृष्णकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। हिंदी-साहित्याकाश में यदि तुलसी चन्द्रमा हैं, तो सूरदास सूर्य—"सूर सूर तुलसी ससी....." सूरदास हिंदी के उन विरल कवियों में हैं, जिनके गीत महाकाव्य बन गये। हिंदी में विरह और बालसाहित्य के अद्वितीय विधाता सूरदास ही हैं।

सूरदास का जन्म सं० 1535 (कुछ विद्वानों के अनुसार सं० 1540) में दिल्ली के निकट सीही नामक गाँव में बसने वाले एक गरीब ब्राह्मण-परिवार में हुआ। सूरदास जन्मान्ध थे या बाद में अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि मिल्टन की तरह अन्धे हुए—इस बात को लेकर बड़ा विवाद है। लेकिन, सूरदास ने बार-बार पदों में अपने को अन्धा कहा है—"सूर कहा कहौं द्विविध आँधुरो।"

शायद माता-पिता की निर्धनता और अपनी जन्मान्धता के कारण उन्हें परिवार का स्नेह नहीं मिल सका और वे बचपन में ही विरक्त होकर घर से निकल पड़े। अठारह वर्षों तक अपने गाँव के पास ही एक कुटिया में रहे। यहाँ उन्होंने संगीत और ज्योतिष का अच्छा अभ्यास किया, किन्तु इन्हीं के कारण उन्हें वह स्थान छोड़ना भी पड़ा, क्योंकि उनके चारों ओर गान सुनने वालों और शकुन जानने या भविष्य पूछने वालों की भीड़ लगी रहती। भक्त को आराधना का समय नहीं मिलता। फलस्वरूप गऊघाट रुनकता (मथुरा और आगरा के बीच यमुना नदी के तीर पर बसा एक स्थल) चले गये। 31 वर्ष की अवस्था तक यहीं रहे। यहाँ उन्हें संगीत, काव्य और शास्त्र के अध्ययन का अवसर मिला। ये इन विधाओं में निपुण हो गये। उनके पद उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य के परिचायक हैं। गऊघाट पर वे वैराग्य भाव से विनय के पद रचते और उन्हें गा कर भक्तों के हृदय को आनन्दविभोर कर देते थे। उनके दीन-भाव से भरे भक्ति के पद यहीं लिखे गये थे। तब उनके जीवन में एक महान घटना घटी। सं० 1567 में बल्लभाचार्यजी ब्रज जाते हुए गऊघाट पर एक बार रुक गए, सूरदास ने उन्हें विनय के पद सुनाए। बल्लभाचार्य मोहित हो गये और उधर सूरदास बल्लभाचार्य जैसे गुरू को प्राप्त कर कृतकृत्य हो उठे। सूरदासजी इसके बाद बल्लभाचार्य के साथ ब्रज गये और गोवर्धन के पास पारसौली नामक जगह को अपना स्थायी निवास स्थान बनाया और मृत्यु तक वहीं रहे।

सूरदास बल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टि सम्प्रदाय (वैष्णवभक्ति की एक शाखा, जिसमें भगवान की कृपा को सब कुछ माना जाता है और भगवान को सखा-भाव से भजा जाता है) के सर्वश्रेष्ठ कवि भक्त थे। अतः उक्त सम्प्रदाय में उनका बड़ा सम्मान था। बल्लभाचार्य जी के बाद उनके सुपुत्र विट्ठलनाथजी ने पुष्टि-

सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ आठ कवियों की एक मण्डली बनायी जो "अष्टछाप" के नाम से प्रसिद्ध है। सूरदास "अष्टछाप" के सर्वाधिक महत्वपूर्ण सदस्य थे।

कहा जाता है कि एक बार तानसेन ने अकबर के दरबार में सूरदास का एक पद सुनाया। उसे सुनकर अकबर बहुत प्रभावित हुए और सूरदास से मिलने मथुरा चले आए। अकबर के आग्रह पर सूरदास ने "मन रे तू कर माधो से प्रीति" नामक भजन गाया। अकबर बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्नता के आवेश में सूरदास से बोले कि कुछ मेरा यश-वर्णन कीजिए। लेकिन क्या यह सम्भव था? भक्त सूरदास ने गाया—

"नाहिन रह्यौ मन में ठौर।
नन्द नन्दन अछत कैसे अनिए उर और ?"

(अर्थात् हे अकबर, मेरे मन में अब दूसरों की प्रशंसा के लिए अवसर और स्थान नहीं है। भला कृष्ण के रहते किसी दूसरे को हृदय में जगह कैसे मिल सकती है ?)

भक्त की इस निष्ठा ने अकबर को चुप कर दिया।

सूरदास की मृत्यु सं० 1640 में हुई।

सूरदास जी के रचे 25 ग्रंथ कहे जाते हैं, पर इनमें से अनेक प्रामाणिक सिद्ध नहीं होते और कुछ "सूरसागर" के ही अंश-मात्र हैं। उनकी प्रामाणिक रचनाएँ हैं— 1. सूरसागर, 2. सूर-सारावली, 3. साहित्य-लहरी, 4. सूर-पच्चीसी, 5. सूर साठी, 6. सेवा-फल, और 7. सूरदास के विनय के पद।

इन ग्रंथों में सर्वमान्य और सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ "सूरसागर" ही है और वही सूरदासजी के यश का मूल आधार भी है। वैसे "सूर-सारावली" और "साहित्य-लहरी" का भी अपना महत्व है।

सूरदास जी वैष्णव भक्तों की परम्परा में उत्पन्न हुए थे। वैष्णव सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त है, भक्ति। इस सिद्धान्त के अनुसार भगवान एक है। वह संसार के कल्याण के लिए अवतार ग्रहण करता है। उस भगवान की प्राप्ति ज्ञान से नहीं, भक्ति से हो सकती है। सूरदास वैष्णव मत के इन सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं। भक्ति ही उनका पौरुष है—

तुम्हारी भक्ति हमारे प्राण।

यदि भगवान जहाज हैं, तो सूरदास का मन समुद्र का वह पक्षी है, जिसे जहाज को छोड़कर और कहीं शरण नहीं मिलती।

"मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै

जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै ।

सूरदास मानते हैं कि भगवान् मूलरूप में निर्गुण हैं, किन्तु भक्तों के लिए सगुण रूप भी ग्रहण करते हैं। चूँकि यह सगुण रूप सर्वसुलभ है इसलिए वे सगुण रूप को ही श्रेयस्कर मानते हैं—

"अविगत गति कछु कहत न आवे ।

ज्यों गूँगा मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै ।।

रूप रेख गुण जाति जुगति बिनु निरालम्ब मन चक्रित धावै ।

सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै ।।"

सगुण की श्रेष्ठता सूरदास जी ने "भ्रमरगीत" में बड़े विस्तार से प्रतिपादित की है और उतने ही विस्तार और विशदता से यह सिद्ध किया है कि भगवान की प्राप्ति के लिए ज्ञान की अपेक्षा शुद्ध भक्ति की आवश्यकता है।

सूरदासजी वात्सल्य-रस के आचार्य हैं। उन जैसा वात्सल्य-स्नेह का भावुक कवि शायद ही कहीं मिले। उन्होंने राधा और कृष्ण के बालपन के असंख्य मनोहर चित्र रचे हैं। सूर साहित्य में कृष्ण का पालने पर झूलना घुटने के बल चलना, चाँद के लिए मचलना, नहाते समय रूठ जाना, मक्खन चोरी करना, मिट्टी खाना, आदि के अतिरिक्त गोचारण, दान-लीला, मान-लीला के असंख्य रसपूर्ण चित्र हैं। सूरदासजी ने अपनी बन्द आँखों से वात्सल्य के क्षेत्र का जितना उद्घाटन किया है, उतना आँख वाले कवि भी नहीं कर सके। फिर सूरदासजी जिस परिस्थिति का चित्रण करते हैं, उसमें डूब जाते हैं। ऐसा लगता है कि सूरदासजी बालक कृष्ण के हृदय में उतरकर उनकी मनोदशाओं का चित्रण कर रहे हैं। जब कृष्ण बोलते हैं, तो लगता है कि बालक ही बोलता है, सूरदास कवि नहीं। फिर सूरदास ने बालकों के अनुरूप सीधी-सादी देशज शब्दों से भरी हुई भाषा का प्रयोग किया है। अत: उनके वर्णन में सर्वत्र स्वाभाविकता है। इस प्रकार वे वात्सल्य-रस के भावुक कवि हैं।

भ्रमरगीत "सूरसागर" का सर्वश्रेष्ठ प्रसंग है। भ्रमरगीत सूर-साहित्य का "मुकुट-मणि" है।

भाव-व्यंजना और रूप चित्रण का यही औचित्य सूरदास के भ्रमर-गीत को अमर काव्य बना गया है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने ठीक ही कहा है कि "सूरदास ने मनो ैज्ञानिकता के साथ रस का पूर्ण सामंजस्य किया है।"

सूरदास की गोपियों के विरह में व्यापकता के साथ इतनी तन्मयता है कि लगता है; यह केवल गोपियों का विरह नहीं है, बल्कि विश्व-विरहिणी का अनन्त काल से चलने वाला विश्वजनीन विरह है।

भ्रमरगीत के विरह-वर्णन में जो प्रभावोत्पादकता है, उसका एक और कारण है। भ्रमरगीत का विरह एकांगी नहीं है। यदि एक ओर गोप-गोपी, यमुना और मधुवन कृष्ण के लिए रो रहे हैं तो दूसरी ओर कृष्ण भी उनके लिए विकल हैं। कृष्ण बड़ी बेबसी से उद्धव से कहते हैं—

"ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।

हंससुता की सुन्दरि कगरी, अरु कुंजन की छाँही।

उपालम्भ-काव्य की दृष्टि से तो भ्रमरगीत की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। शुक्लजी के शब्दों में, "श्रृंगार-रस का ऐसा सुन्दर उपालम्भ काव्य दूसरा नहीं है।" उद्धव जब ज्ञान उपदेश देते हैं, तब गोपियाँ बड़ा मधुर व्यंग्य करती हैं।

किन्तु, खूबी यह है कि कहीं भी उद्धव के प्रति गोपियों का व्यंग्य या मजाक उद्‌दण्ड नहीं हो पाया है। सर्वत्र एक मर्यादा के भीतर रहने के कारण भ्रमरगीत का व्यंग्य परम आस्वादनीय और मधुर है। भ्रमरगीत का व्यंग्य एक "मीठी छुरी" है।

उपालम्भ-काव्य की प्रकृति हास्यरस की होती है। सूरदास के भ्रमर-गीत की विशेषता यह है कि इसका हास्य कहीं भी अशिष्ट अट्‌टहास नहीं हुआ है। इसमें गोपियों की मर्यादा के अनुकूल सर्वत्र मधुर स्मिृति की व्यवस्था हुई है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार "वे बालक का हृदय लेकर पैदा हुए थे और अन्त तक बालक का हृदय लिए हुए ही संसार-यात्रा निबाह गये। बल्लभाचार्य के संग में आने पर उन्होंने लीला-गान करने की दीक्षा ली और सरल हृदय बालक की भाँति इस नई चीज को पाकर पुरानी का मोह एकदम त्याग दिया।.... बाल-स्वभाव के वर्णन में सूरदास बेजोड़ समझे जाते हैं। वे स्वयं वय प्राप्त बालक थे। बाल स्वभाव के चित्रण में वे एक तरह का अपनापा अनुभव करते जान पड़ते हैं और ठीक उसी प्रकार मातृहृदय का मर्म भी समझ लेते हैं।....सूरदास जब अपने विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकारशास्त्र हाथ जोड़ कर उनके पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ सी आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगतीं है। संगीत प्रवाह में कवि स्वयं बह जाता है।"[1]

(क) विनय

शब्दार्थ—(1) द्रुम डरिया=पेड़ की डाल या शाखा। पारधि=शिकारी, बहेलिया। ढुक्यौ=घात में बैठा, छिपा था, टूट पड़ा। सचान=बाज पक्षी। उबारै=उद्धार करें, बचाएँ। संधान=धनुष पर वाण लगाकर निशाना लगाने की क्रिया

---

1. हिन्दी साहित्य की भूमिका—ह० प्र० द्विवेदी

प्रसंग—विनय-वर्ग का यह पद 'विनती' उपशीर्षक के अन्तर्गत है। इसमें सूर ने पक्षी, बहेलिया और बाज के घटना प्रसंग की उद्‌भावना करके अपने आराध्य कृष्ण की कृपालुता का गौरवगान किया है।

केन्द्रीय भाव—इस पद में सूर ने अपने माध्यम से जीवात्मा को पक्षी के रूप में प्रस्तुत किया है, जो संसाररूपी वृक्ष पर असहाय बैठा हुआ है। आसक्ति और मृत्यु भय क्रमशः बहेलिया और बाज पक्षी के रूप में उसे अपना शिकार बनाना चाहते हैं निर्वेद अथवा अनासक्ति ही सर्प है जो मोह के व्याध को डँस लेता है और जिसके फलस्वरूप उसका तीर लक्ष्य भ्रष्ट होकर मरणांतक रूपी सचान को नष्ट कर देता है। सूर का मन्तव्य यह है कि प्रभु के स्मरण से मोह की निवृत्ति हो जाती है और माया व मृत्यु के संत्रास से मुक्ति मिल जाती है।

काव्य-सौन्दर्य—प्रस्तुत पद में रूपकातिशियोक्ति अलंकार को आधार बनाया गया है। केवल उपमानों के द्वारा उपमेय को चमत्कारपूर्ण ढंग से संकेतित कर दिया गया है। अत्युक्ति के तत्व की अल्पता के कारण इसे अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार के भी वर्ग में रखा जा सकता है। प्रसंगबद्धता इस पद का विशेष आकर्षण है। प्रसंगानुरूप दैन्यभाव की मार्मिक निवृत्ति हुई है।

विशेष—जीव को पक्षी के रूप में कल्पित करने की परम्परा का मूल उपनिषदों में पाया जाता है। मुण्डकोपनिषद् में "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" (3.1.1) तथा "समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो" (3.1.2) उक्तियाँ इसी कल्पना को प्रस्तुत करती हैं। सूर का वैशिष्ट्य इस कल्पना-सूत्र के सम्प्रसारण और प्रसंगानुबन्धन में है।

शब्दार्थ—(2) टीकौ=अगुआ, शिरोमणि। सूल=बरछा, भाला। लीकौं=लकीर, रेखा। खैंचि कहत हौं लीकौं=निश्चय या प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ।

भावार्थ—हे प्रभु मैं पतितों में श्रेष्ठ हूँ। और सभी पतित तो चार दिन के हैं, लेकिन मैं तो जन्म से ही पतित हूँ। व्याध, अजामिल, गणिका तथा पूतना का आपने उद्धार किया। मुझे छोड़ आपने सबका उद्धार किया। मेरे मन की कसक क्योंकर मिटे? मेरे जैसा पाप करने वाला कोई नहीं है यह मैं दृढ़ता से कह सकता हूँ। सूर पतितों के बीच यह सोचकर शर्म से मरा जा रहा है कि उससे अधिक पतित कौन है।

शब्दार्थ—(3) चोलना=ढीला-ढाला कुरता। काछि=बन-ठन कर, साज सँवर कर। पखावज=परवावज नामक बाजा। घट=घड़ा, शरीर, मन, हृदय। फेंटा=कमर बन्द, पटुका।

प्रसंग—यह पद 'सूरसागर' के प्रथम स्कन्ध के अन्तर्गत 'विनती' उपशीर्षक का है। इसे सूरदासजी ने सर्वप्रथम विट्ठलनाथ जी के मंदिर में गाया था। इसमें सूरदासजी ने विषयी जीव और नर्तक का रूपक बाँधा है और कृष्ण से अपनी अर्थात् जीव की अविद्या दूर करने के लिए मार्मिक प्रार्थना की है।

केन्द्रीय भाव—सूर श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—मैंने जीव के रूप में अनेक नाच नाचे हैं। काम क्रोध के वस्त्र, विषयों की माला, परनिन्दा रूपी झंकार उत्पन्न करने वाले मोहरूपी नूपुर, लोभरूपी तिलक और मायारूपी कमरबन्द से सज्जित होकर अपने भ्रमित मन-मृदग की ताल पर तृष्णा की अन्तध्वनि को मुखरित करते हुए मैंने जाने कितने अविद्यारूप अभिनय किए हैं। अब मैं नाचते-नाचते थक गया हूँ। आप मेरी अविद्या दूर करके लौकिक आसक्ति एवं आवागमन के दुश्चक्र से मुक्त करने की कृपा करें।

काव्य-सौन्दर्य—यह सूर के श्रेष्ठतम पदों में से एक है। सांगरूपक के निर्वाह का कौशल इसमें पूरे सौष्ठव के साथ प्रकट हुआ है। 'नाचना' शब्द की लाक्षणिक भंगिमा (भ्रान्त होना, परेशान होना) को आधार बनाकर नर्तक के साथ विषयासक्त जीव की पूरी-पूरी संगति बिठा देना सूर के वाग्वैदग्ध का अनूठा प्रमाण है। हठयौगिक प्रतीक 'घट' का प्रयोग भी बड़े सहज रूप में हुआ है।

शब्दार्थ—(4) अनत=दूसरी जगह, अन्य स्थान पर। दुरमति=खल दुष्ट। खनावै=खोदवाता है। अंबुज=जल से उत्पन्न वस्तु, कमल। करील=झाड़ी के रूप में उगने वाला एक कँटीला और पत्रहीन फूल। छेरी=बकरी।

प्रसंग—यह पद आत्मानुभूति प्रधान है। इसमें उन्होंने कृष्ण-भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए अपनी अनन्य भक्ति-भावना का परिचय दिया है। सूर का मन कृष्ण के चरणकमलों में ऐसा लीन हो चुका है कि उनको सुख-प्राप्ति का न तो कोई अन्य आधार ही दिखाई देता है और न किसी अन्य की वे कामना करते हैं।

केन्द्रीय भाव—सूर का भक्ति-विह्वल हृदय अपने प्रभु के श्रीचरणों में ही सुख का अनुभव करता है, अन्यत्र कहीं भी नहीं। उनकी स्थिति जलयान पर बैठे हुए उस पक्षी के समान है, जो अपार जलराशि के ऊपर कभी-कभी कुछ देर उड़ लेने के बाद पुनः उसी पर आकर बैठ जाता है, क्योंकि उसका एकमात्र और अन्तिम आश्रय वहीं है। सूर का कहना है कि कृष्णभक्ति का परित्याग करके जो किसी अन्य की उपासना करता है, वह नाहक कष्ट सहता है। वास्तविकता यह है कि जिसे इस भक्ति का रसास्वाद मिल जाता है, उसे इसके अतिरिक्त और कुछ अच्छा ही नहीं लगता।

काव्य-सौन्दर्य—दूसरी पंक्ति में उपमा है और अंतिम तीन पंक्तियों में दृष्टान्त।

पद—5

शब्दार्थ—**समदरसी**=समदर्शी, सबको बराबर या समान समझने या मानने वाला। **बधिक**=वध करने वाला, बहेलिया। **नार**=नाला। **पार**=निर्वाह। **निरधार**=निश्चय करने का कार्य, निश्चय करने का भाव।

भावार्थ—हे प्रभु! मेरे अवगुणों पर ध्यान मत दीजिये। आपका नाम तो समदर्शी है, उसका निर्वाह कीजिए। एक लोहा पूजा में रखा जाता है एक बधिक (कसाव या कसाई) के घर पर रहता है। परन्तु पारस पत्थर इस भेद को न मानते हुए दोनों को सोना बना देता है। एक नदी कहलाती है, एक नाला कहलाता है, जिसमें गंदा पानी रहता है, परन्तु ये जब मिल जाते हैं तब एक ही वर्ण होकर गंगाजी बन जाते हैं। इसी प्रकार यह शरीर और माया है। यह ब्रह्म शक्ति कहलाती है जिस पर मिलकर यह जीव सूर बिगड़ गया है। सूरदास कहते हैं, हे प्रभु! अब या तो इन्हें पृथक् कीजिये या फिर आपका प्रण टला जाता है।

(ख) भ्रमरगीत

पद—6

शब्दार्थ—**दाख**=द्राक्षा, अंगूर। **विषकीरा**=विष में उत्पन्न होने वाला। **मधुप**=भौंरा, भ्रमर। **बन्धन**=समीप। **पतंग**=रोशनी के आस-पास उड़ने वाला कीड़ा, शलभ।

प्रसंग—'भ्रमरगीत' प्रसंग के इस पद में गोपिकाएँ कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा को अनेक दृष्टान्तों से पुष्ट करती हैं।

केन्द्रीय भाव—उद्धव, प्रेम-सम्बन्ध तो मन की रुचि का विषय है जिसका मन जिसमें रमता है, वही उसे प्रिय लगता है। विष-कीट अंगूर, छुहारा आदि सुस्वाद फल छोड़कर विष खाना ही पसन्द करता है। चकोर क्या अंगार के स्थान पर कपूर से तृप्त हो सकेगा? भौंरा नये काठ में छिद्र कर लेता है। किन्तु कमल के सम्पुट में स्वेच्छा से बन्द हो जाता है। शलभ को दीपक की ज्वाला में जल मरने में ही सुख मिलता है। सारी प्रियता मन के मान लेने पर निर्भर है।

काव्य सौंदर्य—पूरे पद में दृष्टान्तमाला अलंकार है। 'ज्यों····अघात, में वक्रोक्ति। तुलनीय—

मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय। —बिहारी

पद—7

शब्दार्थ—**हंसा**=सूर्य की पुत्री (यमुना)। **कगरी**=किनारा, किनारों के बीच की हरी-भरी घाटियाँ। **सुरभि**=गाय। **खरिक**=गायों का बाड़ा। **जसुदानंद**=श्रीकृष्ण। **मुक्ताहल**=मोती।

प्रसंग—उद्धव के वापस लौटने पर श्रीकृष्ण ब्रज-जीवन का स्मरण कर दुखी हो रहे हैं।

पद—8

शब्दार्थ—**स्वासा अटकि रही आसा लगि आसा लागि रहति तन स्वासा**=जब तक शरीर में सांस है, तब तक हम आशा करती रहेंगी। **बरीस**=वर्ष। **सकलजोग के ईस**=सब प्रकार से योग साधना में निपुण।

पद--9

शब्दार्थ—**पुंजै**=समूह, ढेर। **घनसार**=कपूर। **अलि**=भौंरा, भ्रमर। **मदन**=कामदेव। **सजीवन**=सजीवनी नामक बूटी जो मरे हुए को भी जिलाने वाली कही जाती है। **दधिसुत**=चन्द्रमा। **भुंजै**=तपाती है, जलाती है। **छुंजै**=छीण होना।

पद—10

शब्दार्थ—**मधुकर**=भौंरा। **सौंह**=सौगन्ध, शपथ। **हांसी**=विनोद। **जनक**=पिता। **बरन**=वर्ण, रंग। **अभिलाषी**=रमने वाले। **गांसी**=कपट, छल। **नासी**=नष्ट हो गयी।

प्रसंग—'भ्रमर-गीत' के इस पद में गोपिकाओं द्वारा उद्धव की खिल्ली उड़ायी गयी है। निर्गुण ब्रह्म का अता-पता पूछते हुए वे उद्धव को निरुत्तर कर देती हैं। सूर की वाग्विदग्धता का इसमें अच्छा परिचय मिलता है। उद्धव के प्रति उक्ति।

केन्द्रीय भाव—उद्धव, हमारे प्रश्नों को समझकर उत्तर दो। हम शपथ-पूर्वक कहती हैं कि हम सचमुच जानना चाहती हैं, हँसी नहीं करतीं। तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म किस भूमिभाग का निवासी है? उसके माता-पिता कौन हैं? उसकी पत्नी कौन है? उसकी दासी का क्या नाम है? रँग-रूप, वेशभूषा और उसकी रुचियों के विषय में बताओ। यदि हमसे छल करोगे तो अपने किए का फल भुगतोगे। गोपिकाओं की

चतुरता से भरी व्यंग्योक्तियाँ सुनकर उद्धव दिङ् मूढ़ से होकर चुप रह गये और उनकी सारी तर्क बुद्धि नष्ट हो गई।

विशेष—गोपिकाओं की तरल किन्तु व्यावहारिक तर्कशीलता बड़ी स्वाभाविक एवं मनोरंजक है। जाहिर है कि उद्धव के पास इनका कोई उत्तर नहीं। नारी-वर्ग की लोक-मति के अनुरूप ही व्यंग्यात्मक और मर्मान्तिक चोट करने वाली शब्दावली का प्रयोग किया गया है। 'बूझति साँच न हाँसी' में उनकी वाक्-प्रगल्भता का वास्तविक और जीवन्त परिचय मिलता है।

पद—11

शब्दार्थ—**हारिल**=एक पक्षी जो हर समय अपने पंजे में एक लकड़ी दबाए रखता है। **क्रम**=कर्म। **जकरी**=कस कर पकड़ना, जकड़ना। **करुई**=जिसका स्वाद कड़ुआपन लिए हुए हो। **व्याधि**=रोग। **चकरी**=चकित, भ्रमित (एक प्रकार का छोटा खिलौना जो धुरी पर चाक की भाँति घूमता है।)

भावार्थ—गोपियों के लिए कृष्ण हारिल की लकड़ी हैं। (हारिल पक्षी एक तिनका या लकड़ी का टुकड़ा पैर से पकड़े रहता है और समझता है कि वह सदा डाल ही पर बैठा हुआ है?) उन्हें वह मन-वचन-कर्म से पकड़े रहती हैं—रात-दिन कान्ह से जुड़ी रहती हैं। निर्गुण शब्द ही कड़वी ककड़ी की तरह लगता है। गोपियों के लिए तो वह व्याधि है। कृपा कर आप निर्गुण को उन्हें दें—जिनका मन स्थिर न हो—आगे-पीछे करता हो। यहाँ स्थैर्य है।

काव्य सौन्दर्य—इस पद में गोपियों के माध्यम से सूर ने योग का खण्डन किया है। उसे एक बीमारी बताया है और उसे ऐसे लोगों के लिए उपयुक्त बताया है, जिनका दिमाग खराब है। इस पद में अनुप्रास, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, उदाहरण आदि अलंकारों का कुशल उपयोग हुआ है।

पद—12

शब्दार्थ—**स्रवत**=वहना, चूना, टपकना। **अनल**=अग्नि, आग।

पद—13

शब्दार्थ—**चितवनि**=ताकने का भाव या ढंग, दृष्टि, कटाक्ष, **नटवर**=नाट्यकला में बहुत दक्ष, श्रीकृष्ण। **आवनि**=आने की क्रिया, आगमन।

4. गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म सं० 1589 में भाद्र-शुक्ला एकादशी, मंगलवार[1] को हुआ।

तुलसीदास का मृत्यु-संवत् एक प्रकार से निश्चित-सा हो चुका है। उनका देहान्त, गंगा के तीर पर संवत् 1680, श्रावण-शुक्ल सप्तमी को हुआ, जिसका प्रमाण निम्नलिखित दोहा उपस्थित करता है—

संवत् सोरह सो असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।

तुलसीदास जी के जन्म-स्थान के संबंध में भी विवाद चलता रहता है। "घट-रामायण" के अनुसार उनका जन्म यमुना के तीर पर बसे राजापुर ग्राम में हुआ। इधर हाल में सोरों में बहुत-सी सामग्री मिली है। वहाँ कुछ ऐसे ग्रंथ मिले हैं, जिनसे तुलसीदासजी के आरम्भिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। सोरों के एक मुहल्ले में एक पुराना मकान भी मिला है, जिसे गोस्वामी का जन्मस्थान कहा जाता है। वहाँ नरसिंह जी महाराज का मन्दिर भी है, जिससे गोस्वामी के गुरु नरहरि जी का संबंध जोड़ा जाता है। अतः, अब का परिवर्तित विचार यह है कि तुलसीदासजी का जन्म सोरों में हुआ।

तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम था। प्रसिद्ध भक्त कवि नन्ददास जी इनके चचेरे भाई थे। इनकी माता का नाम हुलसी था। उन्होंने अपने ग्रन्थों में कहीं भी अपने माता-पिता का उल्लेख नहीं किया है। हाँ, "हुलसी" शब्द अनेक स्थानों पर आया है।

तुलसी-जैसे असाधारण कवि थे, वैसी ही असाधारण घड़ी में उनका जन्म भी हुआ था। शायद ही कोई ऐसा पुत्र भारतवर्ष में जन्मा हो, जिनके जन्म-दिवस के अवसर पर थाली न बजी होगी, खुशियाँ न मनाई गई होंगी। पर जब तुलसीदास का जन्म हुआ, तब घर में मातम छा गया। माता-पिता को परिताप हुआ। कहा जाता है कि तुलसीदास का जन्म अभुक्त-मूल में हुआ था, इसलिए माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। माता-पिता द्वारा परित्यक्त होने की चर्चा गोस्वामीजी ने बार-बार की है। यह भी अनुमान किया जाता है कि गोस्वामीजी के माता-पिता का देहान्त उनके बचपन में ही हो गया था और इसलिए शैशवकाल में ही वे अनाथ हो गये थे। जो भी हो, माता-पिता से परित्यक्त होने के कारण उनका बचपन बड़े कष्ट से

---

1. घटरामायण।

बीता। न खाने को मुट्ठी-भर अन्न और न तन ढकने को गज-भर कपड़ा। बालक तुलसी गलियों की खाक छानता रहता और रात को कहीं देवालय इत्यादि में सो रहता। यदि कहीं उसे चने के चार दाने मिल जाते, तो वह समझता कि धर्म-अर्थ काम-मोक्ष चारों फल मिल गये।

कहा जाता है कि जन्म लेते ही तुलसीदास ने रामनाम का उच्चारण किया और इसलिए आप "रामबोला" नाम से पुकारे जाने लगे। इनका नाम "रामबोला" भी था, ऐसा उन्होंने स्वयं विनय-पत्रिका इत्यादि में लिखा है।

तुलसीदास के गुरु श्री नरहरि दास थे। इन्होंने ही दीक्षा दी और रामकथा सुनाई।

तुलसीदास का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ। एक बार जब इनकी पत्नी नैहर गई, तब आप बिना बुलाये ही भीषण रात्रि में वहाँ जा धमके। इस पर उनकी पत्नी ने उन्हें मर्मभेदी वचन कहे। यह सुनकर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई और वे वैरागी हो गये।

नागरी प्रचारणी सभा की खोज रिपोर्ट से तुलसीदास के सैंतीस ग्रन्थों का पता चला है। इनमें प्रमुख हैं—रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, दोहावली, बरवै रामायण, रघुवरशलाका, जानकी-मंगल, श्रीरामलला-नहछू श्री पार्वती-मंगल और विनय-पत्रिका।

हिंदी साहित्य में तुलसीदास का स्थान सर्वोपरि है। हिंदी साहित्य के चारों कालों (वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल) में भक्तिकाल सर्वश्रेष्ठ काल है। वह हिंदी-साहित्य का स्वर्ण युग है। उस काल में हिंदी के दो अमर कलाकार पैदा हुए—एक सूर और दूसरे तुलसी। दोनों महान हैं और दोनों की रचनाएँ (खासकर सूरसागर और रामचरितमानस) हिंदी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। पर तुलना की दृष्टि से तुलसी का व्यक्तित्व महानतर लगता है। सूरदास ने केवल गीत लिखे, तुलसीदास ने गीतों (गीतावली इत्यादि) के साथ प्रबन्धकाव्य (रामचरितमानस) भी लिखा। इस प्रकार सूरदास में जहाँ केवल गीत प्रतिभा का परिचय मिलता है, वहाँ तुलसीदास में गीत और प्रबन्ध दोनों की प्रतिभा उपलब्ध है। फिर सूरदास ने कृष्ण के केवल बाल और किशोर रूपों का चित्रण किया है, उनके समग्र जीवन का नहीं। अतः उनकी कला समस्त जीवन-व्यापिनी कला नहीं है। यह सही है कि अपने क्षेत्र में अर्थात् वात्सल्य और शृंगार वर्णन में सूरदास अप्रतिभ हैं, पर दूसरी ओर तुलसीदास ने राम के जीवन में सम्पूर्ण मानव-जीवन को उपस्थित किया है। उनकी भावुकता जीवन का कोना-कोना झाँक आई है, उनके मानस में जीवन का कोई पक्ष, मानव के चरित्र का कोई पहलू अछूता नहीं रहा है।

तुलसीदास की पहुँच झोंपड़ी से महल तक है। उनका "रामचरितमानस" जनता का कंठहार है। एक ओर अपढ़-गँवार व्यक्ति भी उसकी पंक्तियों से रस निचोड़ लेता है। गांव के अक्षर-ज्ञान-हीन आदमी भी उठते-जागते तुलसीदास के वाक्यों का अनजाने ही प्रयोग किया करते हैं। ऐसे वाक्य गाँवों में लोकोक्ति और मुहावरे बन गये हैं—

(क) का बरखा जब कृषि सुखानी।
समय चूकि पुनि का पछतानी॥

(ख) दुहुँन एक संग होंहि भुआलू।
हँसब ठठाई फुलाइब गालू॥

दूसरी ओर, तुलसीदास की पंक्तियों का गूढ़ार्थ लगाने में बड़े-बड़े विद्वान् भी चक्कर खा जाते हैं। उनके एक-एक वाक्य के असंख्य अर्थ लगाये गए हैं और तब भी विद्वानों को संतोष नहीं होता। यह कथन उचित ही है कि बालकांड का आरम्भ, अयोध्या का मध्य और उत्तर का अंत अथाह है। उसकी थाह लेना किसी भी पंडित के लिए सम्भव नहीं। वस्तुतः कवि की वाणी सत्य है कि—

राम चरित जे पढ़त अघाहीं।
रस विशेष जाना तिन नाहीं॥

यदि हम केवल छंदों को ही लें, जिनकी चर्चा भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक रही है, तो भी तुलसी ही बाजी मार लेंगे। चन्दबरदाई छप्पय के उस्ताद थे, सूर पदों के, नन्द रोला के, भूषण घनाक्षरी के, रसखान सवैया-कवित्त के और विहारी दोहों के। पर, तुलसीदास? उसका अधिकार तो इन सभी छन्दों पर समान है। शायद ही उनसे अपने समय का कोई प्रचलित छन्द छूटा हो। और, खूबी तो यह है कि बड़े सधे हाथों से उन्होंने इन छन्दों को पकड़ा है, ढीले हाथों से नहीं।

छंदों की चुस्ती के साथ अलंकारों की उपयुक्तता भी हमारे देश में कविता की कसौटी रही है। इस कसौटी पर तुलसीदास ही सबसे अधिक खरे उतरेंगे। जिस तरह संस्कृत में "उपमाकालिदासस्य" कहा जाता है, इसी तरह हिंदी में उपमा "तुलसीदास" कहना चाहिए और यह उक्ति गलत नहीं होगी।

रामचरित मानस

हिंदी के महाकाव्यों में सभी दृष्टियों से सर्वोत्तम इस प्रबंध-काव्य का प्रारंभ सं० 1631 में अयोध्या में हुआ। रचनाकाल के संदर्भ में कवि ने स्वयं लिखा है—

"संवत् सोरह सौ एकतीसा, करौं कथा हरि पद धरि सीसा।"

इस ग्रन्थ में कवि न स'त सोपानों में रामकथा विस्तारपूर्वक लिखी है। इसमें वर्णिक और मात्रिक—दोनों छन्दों का प्रयोग किया गया है। "रामचरित मानस" अवधी में लिखा गया है और वि ाव की प्राय: सभी सम्पन्न भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। "रामचरित मान॰" भाषा, भार, उद्देश्य, कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, प्रकृति-वर्णन सभी दृष्टियों से हिन्दी साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। इसमें तुलसी के भक्त-रूप और कवि-रूप का चरम उत्कर्ष है।

(क) भरत महिमा (रामचरित मानस)

शब्दार्थ—**भायप**=भाईपन। **तरुन तरनिहि**=मध्याह्न का सूर्य। **घटजोनी** घड़े से पैदा होने वाले अगस्त्य जी। **छोनी**=पृथ्वी। **मसक**=मच्छर। **परपंचु**= संसार, जगत। **पय**=दूध। **बिजुध**=देवता। **नियोगा**=आज्ञा। **अनत**=दूसरी जगह। **अध**=पाप। **भाजन**=पात्र। **गुनत**=सोचते हुए। **कुतखोरी**=की हुई गलती। **उताइल**=उतावली से, जल्दी-जल्दी। **पाऊ**=चरण। **इति**=खेती को हानि पहुँचाने वाले छ: प्रकार के उपद्रव—अति वृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहा, पक्षी तथा अन्य राजा की चढ़ाई। **भीति**=भय, डर। **त्रिविध ताप**=आध्यात्मिक, आधि-दैविक और अधिभौतिक ताप। **भ्राजा**=सुशोभित। **नियम**=योग के आठ नियमों में एक शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—इनका निर्वाह या पालन नियम कहा जाता है।, बंधा हुआ क्रम या विधान। **चाऊ**=चाव, उत्साह, आनन्द। **भुआलु**=राजा। **खगहा**=गैंडा। **करि**=हाथी। **हरि**=सिंह। **बराहा** =सुअर। **महिस**=भैंसा। **निसान**=नगाड़े। **सुक**=तोता। **पिकगन**=कोयलों के समूह। **जंबु**—जामुन का वृक्ष या फल। **रसाल**=आम। **पल्लव**=पत्ते। **अबिरल**= (1) जो भिन्न न हो, सटा हुआ, (2) घना, सघन। **आगम-निगम**=शास्त्र और वेद **सारद**=सरस्वती। **अचर**=जड़। **सचर**=चेतन। **मंदरु बिरहु**=विरह मंदराचल पर्वत है। **दाहा**=जलन। **पाहिनाथ**=हे नाथ रक्षा कीजिए। **गुबरन**=छोड़ते या उपेक्षा करते। **चंगखेलारू**=पतंग उड़ाने वाला। **निषंग**=तरकस। **गाँडर**=मूंज की तरह की एक घास जिसकी पत्ती पतली और लंबी होती है। इसी की जड़ को रास कहते हैं। **भूरिभायें**=बड़े ही प्रेम से।

(ख) कवितावली

कवितावली में तुलसी के जीवन में विभिन्न समयों पर रचे पद हैं। कविता-वली में बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंका-

काण्ड और उत्तरकाण्ड—ये सात काण्ड हैं। बालकाण्ड में बाल-रूप की झांकी, बाल-लीला, धनुष-यज्ञ, परशुराम-लक्ष्मण-संवाद हैं। अयोध्याकाण्ड में वन-गमन, केवट का पाद-प्रक्षालन, वन में राम-यात्रा का वर्णन, अरण्य-निवास है। अरण्यकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड में केवल एक-एक पद "मरीचानुधावन", "हनुमानजी का समुद्र-लंघन" है। सुन्दरकाण्ड में अशोकवन, लंका-दहन, अशोक-वाटिका से हनुमान की विदाई है। लंका-काण्ड में राक्षसों की चिन्ता, त्रिजटा का आश्वासन, समुद्र पार करना, अंगद का दूत-कर्म, मन्दोदरी-रावण संवाद, राक्षस-बन्दर संग्राम, लक्ष्मण-मूर्छा, राम-रावण युद्ध का अन्त वर्णित है। उत्तरकाण्ड में विनय, उद्‌बोधन, राम-महिमा, नाम-महिमा नाम-विश्वास, कलि-वर्णन, राम-कीर्तिगान, चित्रकूट वर्णन, प्रयाग-सुषमा वर्णन और काशी में महामारी का वर्णन आदि हैं। कवितावली में कुल 425 पद हैं।

"कवितावली तुलसीदास की ऐसी कृति है जिसमें उनका व्यक्तित्व राममहिमा के साथ देश-काल से तादात्म्य करता हुआ एक संघर्षशील सर्जनात्मक, लोकमंगला-कांक्षी भक्त के रूप में प्रकट होता है। इस काव्य में रामचरित और उनसे सम्बद्ध चरित्रों की तथा उनके चरित्र की महिमा का आख्यान तो है ही, इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन स्थानों, उन तत्वों के भी संबंध में तुलसीदास स्पष्ट प्रकट होते हैं जो उनके जीवन में गुण-धर्म के समान समा गए हैं और जो उनके व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं।"[1]

बालकाण्ड

(1) अवधेस के द्वारे..............सरोरुह से बिकसे ॥

शब्दार्थ— **सकारे**=प्रातःकाल। **कै लै**=में लेकर। **हौं**=मैं। **सोच बिमोचन**=शोक से मुक्त करने वाले। **ठगि सी रही**=चकित हो गई। **से**=वे (उनको)। **बालक**=बच्चा। **सजनी**=सखी। **समसील**=समान गुण-धर्म वाले। **उभै**=दोनों। **सरोरुह**=कमल।

विशेष—स्वजन पक्षी के बच्चे की आंखों की पलकें काली होती हैं, विशालता और चंचलता तो इतर विशेषताएँ हैं ही। चन्द्रमा वस्तुतः मुख के लिए प्रयुक्त हुआ है। कमल के प्रतीक में पुण्यता का भी बोध है।

(1) पग नूपुर औ पहुँची..............फल कौन जिये ॥

---

1. **कवितावली**—सं० सुधाकर पाण्डेय

शब्दार्थ—मंजु=मनोहर, सुन्दर। **नूपुर**=घुंघरू। **कलेवर**=शरीर, देह। **अरविंद**=नीलकमल, कमल। **आनन**=मुख, मुँह। **मरंद**=मकरंद, पराग। **भृंग**=भौंरे।

विशेष—विद्वानों की मान्यता है कि यह पद अन्नप्राशन के दिन से सम्बद्ध है :

(3) कबहुँ ससि माँगत.......... तुलसी-मन मन्दिर में बिहरैं॥

शब्दार्थ—आरि करैं=हठ करते हैं। **प्रतिबिम्ब**=परछाईं। **मोद**=प्रसन्नता।

(4) एहि घाट तें.... .. .. नाव चढ़ाइहौं जू॥

शब्दार्थ—थोरिक=थोड़ी ही। **अहैं**=हैं। **लौं**=तक। **परसे**=स्पर्श करने से। **तरनी**=नौका। **घरनी**=पत्नी। **अवलंब**=आश्रय, सहारा। **लरिका**=बाल-बच्चे। **जिआइहौं**=जिलाऊँगा। **बरु**=बल्कि, भले ही।

(5) रावरे दोष न पायँन......... जानकी ओर हहा है।

टिप्पणी--रावरे=आपके। **बन**=जल। **बन-बाहन**=नाव। **जल खाइ रहा है**=जल में निरन्तर रहने से और कोमल हो गई है। **पावन**=पवित्र। **पखारि कै**=धोकर। **बैन**=वचन।

विशेष—इस छन्द में राम का जानकी की ओर देखकर हँसना काव्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, इसे उपचार वक्रता कहा जा सकता है।

(ग) विनय-पत्रिका

'विनयपत्रिका' का अर्थ है—प्रार्थना-पत्र, अरजी। यह अरजी तुलसी ने भगवान् राम की सेवा में भेजी है। उनके राम सम्राटों के भी सम्राट हैं। अतएव उनके दरबार में अरजी पेश करने का तौर-तरीका भी उनकी लोकोत्तर गरिमा के अनुरूप है। तुलसी के सामने मुगल-सम्राटों का आदर्श था। अपने युग के आधार पर तुलसी ने विनयपत्रिका का रूपक बाँधा है। सात ड्योढ़ियों को पार कर, और राज-चक्र को साधकर, अन्त में उन्होंने रघुनाथ की 'सही' प्राप्त की है :

'मुदित माथ नावत बनी
तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है।

राम के ईश्वरीय स्वरूप और विनय-पत्रिका के वर्ण्य-विषय से स्पष्ट है कि वह पत्रिका भौतिक नहीं है; आध्यात्मिक है; व्यक्ति देश और काल की सीमा से परे हैं।

विनयपत्रिका भक्तिरस का असाधारण काव्य है। दार्शनिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से वह तुलसी की बहुत ही प्रौढ़ एवं उत्कृष्ट कृति है। विनय-काव्य के रूप में वह अन्यतम है; उसकी एकतान भक्तिरसमयता और संगीतात्मकता मानस से भी बढ़कर है। उसके आध्यात्मिक आत्मनिवेदन में काव्यतत्वों का मंजुल संनिवेश है। उसकी साहित्यिक ब्रजभाषा प्रौढ़, प्रांजल, सुव्यवस्थित, अर्थगौरवसम्पन्न है। शब्द-भण्डार समृद्ध है। भाषा पर कवि का निर्बाध अधिकार है। समर्थ वाग्धारा कहीं अवरुद्ध नहीं होती।

विनयपत्रिका तुलसी भक्ति भावना की परम परिणति है। अतएव भक्त-जन उसे तुलसी के भक्तिसिद्धान्त का ब्रह्मसूत्र मानते हैं। आत्मनिवेदन की जो तन्मयता, प्रपत्त्यात्मक दैन्य की जो पराकाष्ठा उसमें दिखाई देती है वह अतुल्य है। भक्त के सामयिक कार्पण्य और भगवान् के मानातीत ऐश्वर्य का जो विशद चित्र जिस उदात्तता एवं उत्कृष्टता की भव्य पटभूमि पर उसमें अंकित हुआ है वह अपनी महिमा और लालित्य में अनूठा है।

(1) **शब्दार्थ—भवनिसा**=संसार रूपी रात्रि। **न डसैहों**=माया का बिछौना नहीं बिछाऊँगा अर्थात् अब असार माया के बन्धन में नहीं बँधूंगा। **चिन्तामनि**= चिन्तामणि; समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली एक विशिष्ट मणि। **उर कर**= हृदय रूपी हाथ से। **खसैहों**=गिराऊँगा। **कसौटी**=एक विशेष काले पत्थर का नाम है, जिस पर सोना कसकर शुद्धता की परीक्षा की जाती है। **कसैहों**=कसकर निर्विकार विशुद्ध बनाऊँगा। पन=प्राण। **बसैहों**=बसने के लिए बाध्य कर दूंगा।

भावार्थ—गोस्वामी तुलसीदास अपने विगत जीवन के प्रति पश्चाताप करते हुए कहते हैं—अब तक अर्थात् अपनी इतनी आयु तो मैंने (भगवान का भजन न कर और संसार में लिप्त रह) बर्बाद कर डाली, परन्तु अब उसे अधिक नहीं बिगड़ने दूंगा। राम की कृपा से मेरी संसार-रूपी रात्रि बिगड़ गई है, अर्थात् संसार के प्रति मेरी आसक्ति समाप्त हो गई है। अब मैं जाग गया हूँ, इसलिए अब फिर कभी बिस्तर बिछाकर सोने की तैयारी नहीं करूँगा। अर्थात् सांसारिक माया-मोह में नहीं फँसूंगा। अब मैंने राम-नाम रूपी सुन्दर चिन्तामणि (मनचाहा वरदान देने वाली मणि) प्राप्त कर ली है। उसे अपने हृदय-रूपी हाथ से कभी नहीं गिरने दूंगा, हृदय से कभी दूर नहीं करूँगा। मैं भगवान राम के सुन्दर श्याम रूप को ही कसौटी बना कर अपने चित्तरूपी स्वर्ण को उस पर कसूंगा, उसकी परीक्षा लेता रहूँगा। जब मैं अपनी इन इन्द्रयों के वश में था, तब ये इन्द्रियाँ मुझे अपने वश में जानकर मुझ पर हँसा करती थीं कि इसे अच्छा नाच नचा रही हैं। परन्तु अब मैं इन इन्द्रियों को अपने वश में कर इन्हें और अधिक अपनी हँसी नहीं उड़ाने दूंगा, इन्हें अपने वश में रखूंगा

अब मैं प्रतिज्ञा ठान कर अपने मन-रूपी भ्रमर को राम के चरण-कमलों में बसा दूंगा, एकाग्र निष्ठापूर्वक वहीं रमा दूंगा, भटकने नहीं दूंगा।

(क) इस पद में आत्म-निवेदन, एकनिष्ठा और विरक्ति-भावना की मार्मिक अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है।

(ख) कसौटी का रंग काला होता है। राम श्याम वर्ण हैं इसलिए यह उपमा सुन्दर बन पड़ी है।

(ग) 'राम कृपा·······डसैहों' में रूपक अलंकार है। पूरे पद में प्रतीकात्मक प्रयोग द्रष्टव्य है।

(2) **शब्दार्थ**—**तजि**=छोड़कर। **काको**=(1) किसका (2) किसको। **बराय**=बलात, ज़बरदस्ती। **बिरद**=यश, कीर्ति। **खग**=पक्षी। **मृग**=(1) हरिण (2) पशु। **व्याध**=शिकारी, बहेलिया। **विटप**=पेड़। **अपनपौ**=अपनापन।

भावार्थ—हे नाथ ! आपके चरणों को छोड़कर और कहाँ जाऊँ ? संसार में 'पतित-पावन' नाम और किसका है ? (आपकी भाँति) दीन-दुखियारे किसे बहुत प्यारे हैं ? आज तक किस देवता ने अपने बाने को रखने के लिए हठपूर्वक चुन-चुनकर नीचों का उद्धार किया ? किस देवता ने पक्षी (जटायु), पशु (ऋक्ष-वानर आदि), व्याध (बाल्मीकि, अजामिल), पत्थर (अहल्या), जड़ वृक्ष (यमलार्जुन) और यवनों का उद्धार किया है ? देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुष्य आदि सभी बेचारे माया के वश हैं। (स्वयं बँधा हुआ दूसरों के बन्धन को कैसे खोल सकता है इसलिए) हे प्रभो ! यह तुलसीदास अपने को उन लोगों के हाथों में सौंपकर क्या करे ?

(3) **शब्दार्थ**—**मूढ़ता**=मूर्खता। **परिहरि**=छोड़कर, त्याग कर। **धूम समूह**=धुंए का बादल। **तृषित**=प्यासा, इच्छुक। **गच**=पक्का फर्श, सुरखी आदि देकर पिटी हुई चिकनी जमीन। **काँच**=शीशा, पारदर्शक वस्तु। **सेन**=श्येन, बाज पक्षी। **आनन**=मुख, मुँह। **छति**=क्षति। **बिसारि**=भूल कर। **कुचाल**=दुष्ट चलन।

गीतावली—1

(4) **शब्दार्थ**—**बिलोकति**=देखती। **पंकज**=कीचड़ से उत्पन्न, कमल। **तामरस**=(1) ताँबा (2) कमल। **उर**=हृदय, छाती। **विपिन**=जंगल, वन। **दारुन**=दारुण, भयंकर, घोर। **घनेरो**=बहुत, अधिक। **रुज**=वेदना, कष्ट, रोग।

विशेष—भ्रांतिमान, रूपक, दृष्टान्त, विषम, रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

5. मीराबाई

मीरा हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं। उनकी कविता ने जन-मानस को बहुत प्रभावित किया है। उनके काव्य का मुख्य गुण भाव और भाषा की सरलता है। समाज में, विशेषतः स्त्री-समाज में, उनका बहुत प्रचार हुआ। मद्रास और बंगाल जैसे सुन्दर प्रान्तों में उन्होंने लोकप्रियता प्राप्त की। मद्रास में तो मीराबाई के नाम पर सम्प्रदाय तक की स्थापना हुई। कवि पंत ने उनको "भक्ति के तपोवन की शकुन्तला" तथा "राजस्थान के मरुस्थल की मंदाकिनी" कहा है।

जीवन वृत्त—मीरा जोधपुर के संस्थापक राव जोधा के पौत्र, और राव दूदा के पुत्र, रतनसिंह की पुत्री थीं। चित्तौड़ की रक्षा में प्राण विसर्जन करने वाले प्रसिद्ध वीर और भक्त जयमल उनके चचेरे भाई थे। मीरा का जन्म संवत् 1560 के लगभग (एक मत के अनुसार सावन सुदि 15, सं० 1561 को) हुआ। उनका विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ-पुत्र भोजराज के साथ हुआ जिनका देहान्त अपने पिता के जीवनकाल में ही हो गया था। पति की मृत्यु होने पर मीरा ने अपना मन कृष्ण-भक्ति में लगा दिया और शीघ्र ही उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। इसी बीच राणासांगा का भी देहान्त हो गया। उनके पश्चात् रतनसिंह मेवाड़ के राणा हुए। राज-घराने की एक रानी का साधु-सन्तों से खुलकर मिलना और कीर्तन करना राज-परिवार वालों को अच्छा नहीं लगा। मीरा को इन बातों से विरत करने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये गये। अन्त में, मीरा ने मेवाड़ त्याग दिया और वृन्दावन आदि स्थानों का तीर्थाटन करती हुई द्वारका पहुँचीं, जहाँ भगवान रणछोड़ की आराधना में लीन हो गयीं। वहीं संवत् 1603 के लगभग उनका देहान्त हुआ।

कृतियाँ—मीरा की रचनाएँ इस प्रकार बतायी जातीं हैं—नरसीजो-रो मोहेरो गीत-गोविन्द की टीका, राग-गोविन्द, राग-सोरठ के पद आदि। प्रथम के सिवाय कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इस समय उनकी कीर्ति के आधार उनके स्फुट पद ही हैं जो अनेक व्यक्तियों द्वारा विविध स्रोतों से संग्रहीत किये गये हैं।

समीक्षा—मीरा प्रथम कोटि की भक्त-कवि हैं। वे बचपन से ही भक्ति-भावना में परिपूर्ण थीं। उनकी भक्ति कान्ता-भाव की है। उन्होंने भगवान को पति मानकर भक्ति की है। विरह-वेदना में जो तड़पन और व्याकुलता होती है, वह हमें मीरा में अपने पूर्ण रूप में मिलती है। मीरा ने ज्ञान और वैराग्य के पद भी लिखे हैं जिनमें संसार की असारता आदि का प्रतिपादन है। मीरा कृष्ण की उपासिका होने के कारण सगुण-धारा की कृष्ण-भक्ति-शाखा की भक्त हैं परन्तु उनके कई एक पद निर्गुण भक्ति के भी मिलते हैं। निर्गुण भक्त रैदास उनके गुरु बताये जाते हैं, निर्गुण

भक्तों के संपर्क में भी वे अवश्य आयी होंगी। उनकी साधना-पद्धति में सगुण और निर्गुण-साधना-पद्धतियों का सुन्दर मेल दिखाई पड़ता है।

मीरा की कविता में प्रेम की गम्भीर अभिव्यंजना है। भाव की ऐसी तल्लीनता अन्यत्र दुर्लभ है। उसमें विरह की वेदना भी है और मिलन का उल्लास भी। उनका विरह निवेदन अत्यन्त करुणा पूर्ण और मर्मस्पर्शी है।

मीरा की कविता का प्रधान गुण सादगी और सरलता है। सादगी ही उसकी सबसे बड़ी सज्जा है। श्री के० एम० मुंशी के शब्दों में, "her poetic skill posse-sses the supreme art of being art less".—कला का अभाव ही उसकी सबसे बड़ी कला है। उसकी भाषा सरल है, उसके भाव सरल हैं, फिर भी वह अत्यन्त सरस और हृदयहारी है और पाठक के मर्म की गहराई को अनायास ही छू लेती है। 'प्रेम दीवानी' लेखिका के साथ पाठक भी 'प्रेम-दीवाना' बन जाता है।

भावावेश, संगीतात्मकता और प्रसाद-माधुर्य-गुण सम्पन्न भाषा गीतिकाव्य के ये प्रमुख तत्व मीरा के काव्य में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

मीरा अभ्यासी कवयित्री नहीं थीं। भक्ति के उद्रेक ने उन्हें कवयित्री बना दिया। उनके पदों में काव्य के कला-पक्ष की अपेक्षा भाव पक्ष की प्रधानता है। मीरा की समस्त पदावली गेय है जिसमें अनेक राग-रागनियों का प्रयोग हुआ है। संगीत और काव्य का मीरा की वाणी में एकीकरण हो गया है। उसमें काव्य कला, संगीत कला और नृत्य-कला तीनों की समन्वित मधुरिमा अभिव्यक्त हुई है।

मीरा की पदावली की भाषा मुख्यतया ब्रजभाषा से मिश्रित राजस्थानी (अथवा राजस्थानी से मिश्रित ब्रजभाषा) है। कई-एक पदों में गुजराती का पुट भी पाया जाता है। मीरा की भाषा सरल, सुबोध और सरस है।

मीरा के पद

शब्दार्थ—(1) **नैनन**=नैनों। **नंदलाल**=नन्द के प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण। **मोहनी**=मोहित करने वाली। **मूरति**=मूर्ति, देह। **सूरति**=स्वरूप। **बने**=शोभित हैं। **अधर**=नीचे का ओष्ठ। **सुधारस**=अमृत जैसा रस। **राजति**=शोभित है। **बैजन्ती**=बैजयन्ती, फूल विशेष। **छुद्र घंटिका**=घुंघरूदार करधनी। **कटितट**=कटि प्रदेश, कमर पर। **सबद**=शब्द, ध्वनि। **रसाल**=रसीला मधुर। **संतन**=सन्तों को। **बछल**=वत्सल, स्नेह करने वाले।

32 - छात्रों

टिप्पणी—नैनन में बसों—सदा तुम्हारा रूप आँखों में रहे, सदा तुम्हारा ध्यान रहे। अधर सुधारस मुरली राजति—अधर रूपी अमृत पर मुरली शोभित है।

(2) **आली**=सखी। **म्हांने**=मुझे। **लागै**=लगता है। **नीको**=मनोहर। **ठाकुर**=भगवान् की। **दरसण**=दर्शन। **जमना**=यमुना। **आप**=श्रीकृष्ण। **फीको**=निरर्थक, जीवन के सौन्दर्य से विहीन।

(3) **माई**=सखी, स्त्रियाँ आपस में बतलाते हुए साथ की सहेलियों को माई भी कह देती हैं। **लीयो**=लिया।। **गोविन्दो**=गोविन्द (प्रेम प्रदर्शनार्थ ओ प्रत्यय लगाया गया है)। **छाने**=छिपकर। **चौड़ें**=खुले आम। **बजता ढोल**=बजते हुए, प्रकट रूप में। **मुंह घो**=महँगा। **सुहँगो**=सस्ता। **कारो**=काला। **अमोलिक**=अमूल्य। **जाणत है**=जानते हैं। **आंखी खोल**=आँखें खोल कर, अच्छी तरह देख-भाल कर। **पूरब**=पूर्व। **को**=का। **कोल**=कर।

(4) **रंग-राती**=प्रेम में मग्न। **पचरंग**=पाँच रंगों की, विविध रंगों का। **चोला**=लंबी चोली। **झिरमिट**=झुटमुट में, कुन्जों में। **खेलन**=खेलने को। **ओहि**=उसी। **मां**=में। **गाती**=शरीर पर लपेटने की चादर (जैसी साधु लोग गले से बाँधे रहते हैं)। **पाती**=चिट्ठी पत्री। **हीय**=हृदय में। **पाणी**=पानी। **जायेंगे**=नष्ट होंगे। **धरण**=धरणी। **अकासी**=आकाश। **अविनाशी**=ईश्वर। **निरत**=सांसारिक विषयों से निरति अर्थात् विरक्ति। **दिवला**=दिया। **संजोले**=जलाले। **मनसा**=मन। **बाती**=बत्ती। **हटी**=हाट। **जगरह्या**=जल रहा है। **दिन ते राती**=दिन से रात तक। **मिलिया**=मिले। **सांसा**=संशय दुःख। **भाग्या**=भाग गये नष्ट हो गये। **सैन**=संकेत, इशारा।

(5) **बाणि**=वाणी, शब्द। **सुणिपावेली**=सुन पायेगी। **थारी**=तेरी। **रालेली**=डालेगी। **पांख**=पंख। **मरोड़**=ऐंठकर तोड़ना। **चाँच**=चोंच। **कालर**=काला। **लूण**=नमक। **स**=सो। **कूण**=कौन। **थारा**=तेरे। **सबद**=बोल। **मेला**=मिलन। **मडाऊँ**=मढ़ाऊँगी। **सोवनी**=सोने से। **सिरताज**=शिरोधार्य, सम्माननीय। **कउआ**=कौवा। **जाइ**=जाकर। **यूं**=यों। **थाँरी**=आप की। **धान**=अन्न। **व्याकुली**=व्याकुल। **बिहाइ**=समय बिताती है।

(6) **दूखण लागे**=दुखने लगे। **कासूं**=किससे। **अैन**=पूरी-पूरी। **अग**=मार्ग। **भेटण**=भेटने वाले। **दैण**=देने वाले।

(7) **दरद**=प्रेम-पीड़ा। **दिवानी**=पगली। **गति**=दशा। **जाणै**=समझ सकता है। **जिण**=जिसने। **लाई होय**=व्यथा लगाई हो। **जौहरी**=रत्न पारखी। **पीर**=पीड़ा। **सांवलिया**=साँवरा, श्रीकृष्ण।

(8) **बांण**=स्वभाव। **ए**=ये। **पाँख**=पंख, पर। **उड़जावन की**=उड़ जाने की। **चेरी**=दासी। **दाँवन**=दामन।

(9) **सोई**=वही। **कानि**=मर्यादा। **कहा**=क्या। **ढिग**=पास। **लोक**=समाज। **बेलि**=लता। **होई**=होता है। **भगति**=भक्तजन। **राजी**=प्रसन्न। **लाल**=प्यारे।

(10) **रँग राँची**=प्रेम में रँगी। **सिंगार**–शृंगार। **साजि**=सजाकर। **लई**=पाई। **ब्याल**=साँप। **उण**=उस। **बाँची**=बच गई। **उण**=उस। **खारो**=कड़ुआ, कसैला। **काची**=कच्ची, व्यर्थ, निस्सार। **रसीली**=रसमय। **जाँची**=माँगी।

(11) **मनमानी**=मन में जच गई व बैठ गई। **सुरत शैल**=ध्यान द्वारा भ्रमण-विहार या सैर-सपाटा। **सैल**=सैर। **वा घर की**=उस (ईश्वरीय) अगम देश की। **सुरत**=स्मृति, स्मरण। **पल**······**पानी**=सदा (आनन्द के कारण) आँखों में आँसू भर आते हैं। **ज्यों**=मानो। **हिये परि**=प्रेम की पीर। **सालत**=व्यथित करती है। **कसक**······ कसकानी=मीठे दर्द की एक साल (टीस) टीसा करती है। **बिहानी**=बीत गई। **भेदी**=रहस्य का जानकार। **पिछानी**=पहचान करने वाला। **खानी**=खानि, उत्पत्ति स्थान या योनि। **भरमों**=आवागमन में भ्रमण करूँ। **सहदानी**=निशानी, चिन्ह। **खलक**=सृष्टि, संसार। **खाक सिर डारी**=तिरस्कार कर त्याग दिया, उपेक्षा कर दी। **जानी**=जान गई।

6. रसखान

(जन्म : 1558 ई० मृत्यु : 1618 ई०)

रसखान सगुण काव्य-धारा की कृष्ण-भक्ति शाखा के कवि थे। 'रसखानि', 'रसखान' या 'रस खाँ' कवि का उपनाम या छाप है। 'शिवसिंह सरोज' में इन्हें 'सैयद इब्राहीम पिहानी वाले' लिखा गया है। पिहानी सैयद पठानों की बस्ती है। यदि रसखानि पिहानी के सैयद इब्राहीम थे तो इनका संबंध दिल्ली से कैसे हुआ, यह विचारणीय है। 'दो सौ चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में रसखानि दिल्ली के पठान कहे गए हैं।

'प्रेमवाटिका' में इस विषय में रसखान ने लिखा है—

देखि गदर हित-साहबी दिल्ली नगर मसान।
छिनक बादसा-बंस की ठसक छोरि रसखान !!

प्रेमनिकेतन श्रीबनहिं, आय गोवर्धन-धाम।
लह्यौ सरन चित चाहिकै, जुगलसरूप ललाम ।।

इससे स्पष्ट है कि रसखान उस समय दिल्ली से हटे जब वहाँ साहबी के लिए गदर हुआ और दिल्ली नगर मसान हो गया। इन्होंने बादशाह-वंश की ठसक का त्याग किया और वृन्दावन में आ बसे। ये बादशाही खानदान के थे और सल्तनत उलटने के उपद्रव में इनके ऊपर भी संदेह होने की पूरी आशंका रही होगी। इन्होंने दिल्ली का परित्याग कर दिया। पूरी संभावना है कि इस विद्रोह में इनके कुटुम्ब वाले भी रहे हों और उन्होंने प्राणदंड पाया हो।

'दो सौ चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार ये गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य हो गये थे। विट्ठलजी का गोलोकवास संवत् 1642 में हुआ। रसखान का सबसे प्राचीन उल्लेख 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मिलता है, जहाँ इन्हें दिल्ली का पठान कहा गया है। उसमें कहा गया है कि ये किसी साहूकार के लड़के पर आसक्त थे। उसके देखे बिना बेचैन रहते, उसका झूठा खाते आदि। इनकी यह आसक्ति इतनी प्रसिद्ध हो गई कि लोग इनके प्रेम का दृष्टांत देने लगे। कहीं चार वैष्णव यह कह रहे थे कि प्रभु में वैसा ही प्रेम करना चाहिए जैसा रसखान का साहूकार के पुत्र पर है, जिसे इन्होंने सुन लिया। वैष्णवों ने इनसे कहा कि जैसा प्रेम तुम साहूकार के बेटे पर करते हो वैसा यदि प्रभु से करते तो तुम्हारा जीवन बन जाता। रसखान ने जिज्ञासा की कि प्रभु कौन हैं? उन्होंने श्रीकृष्ण का ना.. बताया और उनका चित्र दिखाया। ये उस मूर्ति पर मुग्ध हो गए। फिर ब्रज में आए। प्रभु के दर्शन के लिए गोविन्दकुण्ड पर तीन दिन तक पड़े रहे। अंत में गोसाईं विट्ठलनाथजी को स्वप्न हुआ और ये शिष्य बना लिए गए। दूसरी किंवदंती में साहूकार के पुत्र के स्थान पर किसी स्त्री की बात कही जाती है जो बड़ी मानिनी थी, उसने इन्हें वैसे ही ताना मारा जैसे तुलसीदासजी की पत्नी ने मारा था। फल भी वही हुआ, तुलसीदास राम के भक्त हो गए और रसखान श्रीकृष्ण के। इन कथाओं से दो तथ्य उपलब्ध होते हैं। एक तो यह कि ये किसी पर मुग्ध अवश्य थे, वह पुरुष था या स्त्री यह दूसरी बात है।

रसखान के बारे में किंवदंती यह भी है कि ये मक्का जाने के लिए अपने कुछ साथी संघातियों के साथ चले, पर रास्ते में वृन्दावन पहुँचे और वहाँ का रागरंग इतना आकर्षक प्रतीत हुआ कि वहीं रम गए और अंत में विट्ठलनाथ के शिष्य हो गए।*

*** रसखान—सं० आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र**

रसखान रीतिकालीन कवि हैं परन्तु इनकी रचना कृष्ण-भक्ति काव्यधारा की परंपरा में आती है। कृष्ण के प्रति इनके प्रेम-भाव में बड़ी तीव्रता, गहनता और आवेशपूर्ण तन्मयता मिलती है। इसी कारण इनकी रचनाएँ हृदय पर मार्मिक प्रभाव डालती हैं। अपनी भाव सबलता तथा सरलता के कारण ये रचनाएँ बड़ी लोकप्रिय हो गयी हैं। इनकी लिखी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—(1) **'सुजान रसखान'** और (2) **'प्रेमवाटिका'**। 'सुजान रसखान' की रचना कवित्त और सवैया छंदों में हुई है तथा 'प्रेमवाटिका' की दोहा छन्द में। अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भाँति इन्होंने परम्परागत पद शैली का अनुसरण नहीं किया। इनकी मुक्तक छन्द की शैली की परम्परा रीतिकाल तक चलती रही।

रसखान ने ब्रज भाषा में काव्य रचना की। इनकी भाषा मधुर एवं सरस है। उसका स्वाभाविक प्रवाह ही इनके काव्य को आकर्षक बना देता है। इन्होंने कहीं-कहीं पर यमक तथा अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है जिससे भाषा-सौन्दर्य के साथ भाव-सौन्दर्य की भी वृद्धि हुई है।

अपनी रसद्रवित सहज भावाभिव्यक्ति में रसखान सचमुच रस की खान हैं। भारतेन्दु बाबू की एक प्रसिद्ध उक्ति है, "इन मुसलमान हरिजनन पैं कोटिन हिन्दू वारियै।" और यह उक्ति रसखान जैसे कवियों पर ही यथार्थ चरितार्थ होती है। मध्यकालीन भावुक कवियों में रसखान का स्थान अन्यतम है।

रसखान

शब्दार्थ—1. परसायौ=छुलाया, स्पर्श कराया। **वाही**=उससे। **कहाँ लौं**=कहाँ तक।

2. **सोंकियौ सो न निहारौ**=उसे क्यों नही देखता।

गेहिनी—गृहिणी, पत्नी। **रविनंद**=यमराज। **संक**=संदेह, संकट। **राखनहारो**=रक्षा करने वाला।

3. यह रसखान का अति प्रसिद्ध सवैया है। भाषा प्रांजल और प्रसादगुणयुक्त है।

मानुष=मनुष्य। **हौं**=होऊं। **गाँव के ग्वारन**=गोकुल गाँव के ग्वालों के बीच में। **धेनु मझारन**=गौवों (गायों) के बीच में। **जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन**=इन्द्र की मूसलाधार वृष्टि से ब्रज को बचाने के लिए श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत छत्र की भाँति हाथ पर उठा लिया। **खग**=पक्षी।

4. **लकुटी**=गाय चराने की लकड़ी। **कामरिया**=कम्बल। **तिहूं पुर**=तीनों लोक। **कबौं**=कब। **बिसारौं**=भूल जाऊँ। कभी ऐसा सौभाग्य मिले अथवा

न मालूम कब यह सौभाग्य प्राप्त होगा। **कलधौत के धाम**=सुवर्ण मन्दिर। **करील**=एक प्रकार की कँटीली झाड़ी। यमुना नदी के किनारे तथा ब्रज भूमि क्षेत्र में ये झाड़ियाँ पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। इसके फल को टेंट या टिगर्‌या कहते हैं।

5. इस पद मे कवि पहले शिशु कृष्ण की सुन्दर छवि का चित्रण करता है फिर क्रीड़ारत कृष्ण के हाथ से मक्खन लगी हुई रोटी को झपटकर ले जाने वाले कौए के भाग्य की वे सराहना करते हैं। भाव सरल है।

शब्दार्थ—घूरि भरे=धूलि धूसरित शरीर वाले। **बेनी**=चोटी, शिशुओं के कढ़े हुए केश। **पंजनी**=शिशुओं के पांव का एक आभूषण। **पीरी कछोटी**=कमर में बँधा हुआ पीताम्बर। **बारत**=न्योछावर करता हूँ। **कलानिधि**=चन्द्रमा। **सजनी**=कोई गोपिका अपनी सखी से बालकृष्ण की छबि का वर्णन कर रही है और कह रही है कि यह कौआ भाग्यशाली है जो भगवान के हाथ से छीनकर माखन-रोटी खा सका।

6. **सेस**=शेषनाग। **अनादि**=जिसका अंत नहीं है। **अछेद**=अछेद्य। **सुक**=शुकदेव। **सुबेद**+श्रेष्ठ वेद। **पचि हारे**=अधिक श्रम करके थक गए। **छोहरियाँ**=छोरियाँ, लड़कियाँ। **छछिया**=मिट्टी का छोटा पात्र। **छाछ**=मट्ठा।

7. **नियरान लग्यो**=निकट आना, पीछे लगना। **सैननि सों**=नेत्रों के इसारों से। **कमान सु कान लग्यो**=अर्थात धनुष को कानों तक खींचकर नेत्र बाण चलाते हैं।

(8) कृष्ण के वियोग में गोपिकाओं के पारस्परिक वार्तालाप के द्वारा कंस की दासी कुब्जा के प्रति व्यंग्य की व्यंजना है।

सहिए..........सहावै=अपना समय खराब है अब तो सब कुछ सहना पड़ेगा जो विधाता सहने को विवश करता है। **नेथ**=नियम। **क्यों हूँ**=किसी न किसी प्रकार। **चलोरी..........कहावैं**=कृष्ण अब तुच्छ दासियों में ही अनुरक्त होने लगे हैं तो चलो अब सब मिलकर दासियाँ ही कहलावैं, किसी न किसी प्रकार उनका दर्शन तो सुलभ हो।

(9) इस सवैये में गोपिकाओं का प्रेम भरा परिहास चित्रित किया गया है। दधि वेचने को जाती हुई गोपिकाओं के साथ कृष्ण छेड़-छाड़ करने लगे हैं। मार्ग रोककर खड़े हो जाते हैं और प्रत्येक गोपी से दही का दान माँगते हैं। गोपिकाएँ इतनी सीधी तो नहीं जो माँगने मात्र से दधि लुटाने लगें। छेड़छाड़, छीना झपटी शुरू हो जाती है। इसी संदर्भ में कृष्ण को चेतावनी देती हुई गोपिकाएँ कहती हैं कि यदि हममें से किसी के आभूषणों का एक छल्ला भी इधर-उधर हो गया तो उसकी क़ीमत तुम स्वयं को बेचकर भी न चुका सकोगे।

दानी=दान देने वाले। **दान**=दया भाव से दी गई वस्तु। **छरा**=रस्सी, तागा। **भूषन**=गहना। **छला**=छल्ला, मुंदरी।

(10) मुरली के प्रति गोपिकाओं के सपत्नी भाव की व्यंजना है। गोपिकाएँ कृष्ण की लीला करना चाहती हैं। एक गोपी से कृष्ण का स्वांग करने को कहा जाता है, वह मयूर मुकुट इत्यादि सब कुछ साज-सज्जा धारण करने को प्रस्तुत है किन्तु उस दुष्ट मुरली को अपने ओठों से कदापि नहीं लगा सकती जो कृष्ण के ओठों के अमृत का पान करती है।

भावतो=प्रिय। **सो**=समान।

(11) राधिका के अनुराग की व्यंजना है। कृष्ण को देखते ही राधिका प्रणयातिरेक के कारण अचेत हो गई है।

आनि कढ़यौ=राधिका की गली में आ निकला। **कछु टोना सों डारै**=कुछ जादू सा कर दिया है। **नैक ....दीठि**=राधिका की ओर तिरछी नजर से तनिक देख गया है। **मूठि सी मारें**=मूठि वा मूठ मारना एक तान्त्रित प्रयोग है। तान्त्रिक मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके एक मंत्र शत्रु का संहार करने को अभिप्रेरित किया जाता है जो स्पर्श मात्र से प्राण ले लेता है। कृष्ण ने राधिका की ओर तिरछी नजर से देखा मानो मूठि मार दी।

हलाहल=घोर विष, जहर।

(12) दुष्ट मुरली ही अब इस गाँव में रहेगी या फिर ब्रजवालाएँ ही। इस सौत ने तो कृष्ण को ऐसा वशीभूत कर लिया है कि अब गोपिकाओं की ओर तो वे आँख उठा कर भी नहीं देखते। यह दुःख कैसे सहा जा सकता है।

निसि द्यौस=रात-दिवस। **यह सौतिन साँसति**=यह सपत्नी के द्वारा दी गई सजा। **दहिहै**=जलायगी।

(13) **चँदवा**=मोरपंख की चंद्रिका। **पाग**=पगड़ी।

7. रहीम

हिंदी के लोकप्रिय कवियों में रहीम का नाम मुक्त कंठ से लिया जाता है। रहीम के दोहों को विद्वानों एवं सामान्य-जनों में उदाहरण के तौर पर प्रायः प्रस्तुत किया जाता है। वे एक बहुपठित एवं अनुभवी सुकवि थे, इसमें सन्देह नहीं।

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। इनका जन्म सन् 1556 ई० के लगभग लाहौर नगर (अब पाकिस्तान में) हुआ था। ये अकबर के संरक्षक बैरम खाँ के पुत्र थे। रहीम अकबर के दरबार के नवरत्नों में से थे। ये अकबर के प्रधान सेनापति और मंत्री भी थे। ये वीर योद्धा थे और बड़े कौशल से सेना का संचालन करते थे। इनकी दानशीलता की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। सन् 1627 ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

अरबी, तुर्की, फारसी तथा संस्कृत के ये पंडित थे। हिंदी काव्य के ये मर्मज्ञ थे और हिंदी कवियों का बड़ा सम्मान करते थे। गोस्वामी तुलसीदास से भी इनका परिचय तथा स्नेह सम्बन्ध था।

"रहीम-सतसई", **"शृंगार सतसई"**, **"रासपंचाध्यायी"**, **"रहीम रत्नावली"**, **"बरवै नायिका भेद वर्णन"**, इनकी रचनाएँ हैं। इन्होंने फारसी भाषा में भी ग्रन्थों की रचना की है। इनकी रचनाओं का पूर्ण संग्रह "रहीम रत्नावली" के नाम से प्रकाशित हुआ है।

रहीम बड़े लोकप्रिय कवि थे। इनके नीति के दोहे तो सर्वसाधारण की जिह्वा पर रहते हैं। इनके दोहों में कोरी नीति की नीरसता नहीं है। उनमें मार्मिकता तथा कवि-हृदय की सच्ची संवेदना भी मिलती है। दैनिक जीवन की अनुभूतियों पर आधारित दृष्टांतों के माध्यम से इनका कथन सीधे हृदय पर चोट करता है। इनकी रचना में नीति के अतिरिक्त भक्ति तथा शृंगार की सुन्दर व्यंजना हुई है। भक्ति और नीति जैसे शुष्क विषयों को भी इन्होंने कान्ता सम्मत उपदेश का सरस रूप दे दिया है।

दोहा, कवित्त, सवैया, सोरठा तथा बरवै छन्दों का सफलतापूर्वक प्रयोग करते हुए रहीम ने सफल काव्य-रचना की है। रहीम का व्रज और अवधी भाषाओं पर समान अधिकार था। इनकी भाषा सरल, स्पष्ट तथा प्रभावपूर्ण है।

रहीम सीधी-सादी बात को सीधे-सादे शब्दों में कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते हैं कि तद्गत बिम्ब की स्वच्छ रेखायें सहृदय के मन: पट पर उभर कर गहरा प्रभाव छोड़ जाती हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि कवि ने अपनी रचनाओं में वैयक्तिक एवं लोक के अनुभवों को ही स्थान दिया है—दुरारूढ़ कल्पना का आश्रय लेकर विचित्र अनुभूतियों का सन्निवेश करने का प्रयत्न नहीं किया।

हिन्दी में केशव दास के बाद रीति निरूपण कर्म में भी रीतिकाल के अनेक कवियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने के कारण अब्दुर्रहीम खानखाना को

भक्तिकाल और रीतिकाल को जोड़ने वाले कवियों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है।

खानखाना के विचारों में धार्मिक संकीर्णता बिलकुल नहीं थी। हिन्दू-धर्म का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। कहना चाहिए कि वे सच्चे अर्थों में कृष्ण-भक्त थे। कृष्ण-भावना के गहरे रंग में उन्होंने अपने को रंग लिया था।

भावार्थ और संदर्भ

(1) जिस किसी ने अपने मन को सुन्दर चकोर बना लिया, वह नित्य-निरन्तर, रात और दिन, श्रीकृष्णरूपी चन्द्र की ओर टकटकी लगाकर देखता रहता है।

संदर्भ—चन्द्र का उदय रात को होता है, पर यहाँ वासर अर्थात दिन भी आया है, अतः वासर का आशय है नित्य निरन्तर से।

(2) जिसकी लाज रखने वाले माखन के चाखनहार अर्थात् रसास्वादन लेने-वाले स्वयं श्रीकृष्ण हैं, उसका कौन क्या बिगाड़ सकता है ?

न तो कोई जुआरी उसे हरा सकता है, न कोई चोर उसकी किसी वस्तु को चुरा सकता है और न कोई लफंगा उसके साथ असभ्यता का व्यवहार कर सकता है। (सन्दर्भ—जुआरी का आशय है यहाँ शकुनि से, जिसने युधिष्ठिर को धूर्ततापूर्वक जुए में बुरी तरह हरा दिया था।)

ब्रह्मा द्वारा जब ग्वाल-बालों की गाएँ चुरा ली गयीं तब श्रीकृष्ण ने उनकी रक्षा की थी।

इसी प्रकार दुष्ट दुःशासन द्वारा साड़ी खींचने पर आर्त द्रौपदी की लाज श्रीकृष्ण ने बचाई थी।

(3) अमरबेलि में जड़ नहीं होती, बिलकुल निर्मूल होती है वह, परन्तु प्रभु उसे भी पालते पोसते रहते हैं।

ऐसे प्रतिपालक प्रभु को छोड़कर और किसे खोजा जाए।

(4) धन्य है मछली की अनन्त प्रीति। प्रेमी से विलग होकर उस पर अपने प्राण न्यौछावर कर देती है और, यह भ्रमर, जो अपने प्रियतम कमल को छोड़ अन्यत्र उड़ जाता है।

(5) जिन आँखों में प्रियतम की सुन्दर छवि बस गयी, वहाँ किसी दूसरी छवि को कैसे ठौर मिल सकती है ? भरी हुई सराय को देखकर पथिक स्वयं वहाँ से

लौट जाता है। (मन-मंदिर में जिसने भगवान को बसा लिया, वहाँ से मोहिनी माया, कहीं ठौर न पाकर, उल्टे पाँव लौट जाती है।)

(6) प्रेम की गली में कितनी ज्यादा फिसलन है। चींटी के भी पैर फिसल जाते हैं इस पर। और, हम लोगों को तो देखो, जो बैल लाद कर चलने की सोचते हैं।

(दुनिया भर का अहंकार सिर पर लादकर कोई कैसे प्रेम के विकट मार्ग पर चल सकता है? वह तो फिसलेगा ही।)

(7) बड़ा ही नाजुक है प्रेम का यह धागा। झटका देकर इसे मत तोड़ो, टूट गया तो फिर जुड़ेगा नहीं, और जोड़ भी लिया तो गांठ पड़ जायगी। (प्रिय और प्रेमी के बीच दुराव आ जायगा।)

(8) सराहना ऐसे ही प्रेम की की जाय जिसमें अन्तर न रह जाय। चूना और हल्दी मिलकर अपना-अपना रंग छोड़ देते हैं। (न दृष्टा रहता है और न दृश्य दोनों एकाकार हो जाते हैं।)

(9) अपना प्रिय एक बार तो क्या, सौ बार भी रूठ जाय, तो भी उसे मना लेना चाहिए। मोतियों के हार टूट जाने पर धागे में मोतियों को बार-बार पिरो लेते हैं न।

(10) संसार-सागर के पार ले जाने वाली नाव राम की एक शरणागति ही है। संसार से उद्धार पाने का दूसरा कोई उपाय नहीं, कोई और साधन नहीं।

(11) राम-नाम की महिमा मैंने पहचानी नहीं, और पूजा-पाठ करता रहा। बात बिगड़ती ही गयी। यमदूत मेरी एक नहीं सुनेंगे, मेरी लाज नहीं बचेगी।

(12) राम-नाम का माहात्म्य तो मैंने जाना नहीं और जिसे जानने का जतन किया, वह सारा ही व्यर्थ था। राम का ध्यान तो किया नहीं और विषय-वासनाओं से सदा लिपटा रहा। (पशु नीरस खली को तो बड़े स्वाद से खाते हैं, पर गुड़ की डली जबरदस्ती बेमन से गले के नीचे उतारते हैं।)

(13) सच्चा मित्र वही है, जो विपदा में साथ देता है। वह किस काम का मित्र, जो विपत्ति के समय अलग हो जाता है? मक्खन मथते-मथते रह जाता है, किन्तु मट्ठा दही का साथ छोड़ देता है।

(14) हित=प्रीति। जोग=योग्य।

(15) **निर्जीव**=मुर्दा।

(16) हेतु=मतलब।

(18) गंगा की कितनी बड़ी महिमा है, पर समुद्र में समा जाने पर उसकी भी महिमा घट जाती है। घट क्या जाती है, उसका नाम भी नहीं रह जाता। सो, दूसरे के घर, स्वार्थ लेकर जाने से, कौन ऐसा है, जिसकी प्रभुता या बड़प्पन न घट गया हो?

(19) आँसू आँखों में ढुलक कर अन्तर की व्यथा प्रकट कर देते हैं। घर से जिसे निकाल बाहर कर दिया, वह घर का भेद दूसरों से क्यों न कह देगा?

(20) **सरग**=स्वर्ग?

(21) कुल=खानदान।

(22) स्वाति नक्षत्र की वर्षा की बूंद तो एक ही है, पर उसके गुण अलग-अलग तीन तरह के देखे जाते हैं। कदली में पड़ने से कहते हैं कि उस बूंद का कपूर बन जाता है। और अगर सीप में वह पड़ी तो उसका मोती हो जाता है। साँप के मुँह में गिरने से उसी बूंद का विष बन जाता है। जैसी संगत में बैठोगे, वैसा ही परिणाम उसका होगा। (यह कवियों की मान्यता है, और इसे 'कवि समय' कहते हैं।

(23) दीपक की तथा कुल में पैदा हुए कुपूत की गति एक-सी है। दीपक जलाया तो उजाला हो गया और बुझा दिया तो अन्धेरा-ही-अन्धेरा। कपूत बचपन में तो प्यारा लगता है और बड़ा होने पर बुरी करतूतों से अपने कुल की कीर्ति को नष्ट कर देता है।

(24) **उर**=हृदय।

(26) यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति समय चूक गया, तो उसका पछतावा हमेशा कष्ट देता रहता है। कठोर कुठार बनकर उसकी कसक कलेजे के दो टुकड़े कर देती है।

(27) **पर-बस परे**=दूसरे के बस में होने से।

परोस-बस=पड़ोस में रहने से।

परे मामला जानि=मामला, मुकदमा पड़ने पर।

पानी=आब, आबरू, जल।

(29) **अठिलैहैं**=हँसी करेंगे या इठलायेंगे।

(30) **नै**=नम्रता।

(31) **काल की परिवर्तनशीलता का वर्णन है।**

8. देव

महाकवि देव का पूरा नाम देवदत्त था। उनकी सुप्रसिद्ध कृति "भावविलास" की कुछ प्रतियों में यह पंक्ति मिलती है—द्यौसरिरहा कवि देव को नगर इटायो बास।

इस आधार पर विद्वानों ने निश्चित किया है कि वे उत्तर प्रदेश के इटावा नगर के निवासी थे और दुसरिहा कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। दूसरे लोग उन्हें धौसरिहा सनाढ्य ब्राह्मण मानते हैं। "शिवसिंह-सरोज" में उन्हें मैनपुरी जिले के समाने गाँव का निवासी बताया गया है।

देव का समय संवत् 1730 और संवत् 1830 (सन् 1673 और सन् 1773) के बीच में है। "भावविलास" के अनुसार उन्होंने सं० 1746 में सोलह वर्ष की अवस्था में उसकी रचना की थी। इससे उनका जन्म-काल संवत् 1730 सिद्ध होता है। उनकी अंतिम कृति "सुखसागर-तरंग-संग्रह" पिहानी के शासक अकबरअली खाँ के लिए लिखी गयी थी जिसका शासन-काल संवत् 1802 से 1824 तक था। देव का देहान्त संवत् 1802 के पश्चात् कभी हुआ होगा।

देव स्थायी-रूप से किसी एक आश्रयदाता के यहाँ नहीं रहे। उन्होंने अपने विभिन्न ग्रंथ विभिन्न आश्रयदाताओं के लिए लिखे। **भावविलास** और **अष्टयाम** सम्राट औरंगजेब के तृतीय पुत्र आजमशाह को सुनाये गये और उसके द्वारा प्रशंसित हुए। **भवानी-विलास** की रचना चरखी दादरी के भवानीदत्त वैश्य के लिए, **कुशल-विलास** की फफूंद के कुशलसिंह सेंगर के लिए, **प्रेमचन्द्रिका** की डोंडिया-खेड़ा के उदोतसिंह बैस के लिए, **रसविलास** की राजा भोगीलाल के लिए, **सुजानविनोद** की दिल्ली के राय सुजानमणि कायस्थ के लिए, और **सुखसागर-तरंग-संग्रह** की पिहानी के अधिपति अकबरअली खाँ के लिए, हुई। देव की ऐसी भी बहुत-सी कृतियाँ हैं जिनकी रचना किसी आश्रयदाता के लिए नहीं हुई।

कहा जाता है कि देव ने 72 या 52 ग्रंथ लिखे थे पर इस कथन में कोई तथ्य नहीं जान पड़ता। उनके कोई 20-25 ग्रंथों के नाम ज्ञात हुए हैं जिनमें से अनेक अप्रकाशित हैं। प्राप्त ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) संपूर्ण-काव्यांग-निरूपक	(1) शब्द-रसायन	
(2) रस-निरूपक	(2) भावविलास	(3) भवानी विलास
(3) नायिका-भेद-निरूपक	(4) कुशल-विलास	(5) प्रेम-तरंग
	(6) रस-विलास	(7) सुजान-विनोद
	(8) जाति-विलास	(9) सुखसागर-तरंग
(4) प्रकीर्णक शृंगार-संबंधी	(10) प्रेमचन्द्रिका	(11) अष्टयाम
	(12) पावसविलास	
(5) राग-संबंधी	(13) राग-रत्नाकर	
(6) अन्योक्ति-संबंधी	(14) वृक्ष-विलास	
(7) वैराग्य तथा भक्ति संबंधी	(15) देवमाया-प्रपंच नाटक	
	(16) देवशतक	(17) देवचरित्र

इनके अतिरिक्त **प्रेमदीपिका**, **राधिका-विलास**, **सुमिलदीपिका** और **नीति-शतक** नामक उनकी कई और भी कृतियाँ बतायी जाती हैं।

देव प्रतिभा-संपन्न कवि थे। उनको संसार का अच्छा अनुभव था। उन्होंने भ्रमण भी खूब किया था। उनमें उत्कृष्ट कोटि की कवित्वशक्ति और मौलिकता के दर्शन होते हैं। कल्पना का चमत्कार उनकी कविता में खूब पाया जाता है। कवि-जनोचित भावुकता भी उनमें अच्छी मात्रा में विद्यमान थी। अनेक स्थलों पर उनकी कविता बड़ी ही सरस और मनोहारी हुई है।

कवि देव तीन रूपों में हमारे सामने आते हैं—(1) शृंगार-कवि के रूप में। (2) वैराग्य और भक्ति के कवि के रूप में और (3) आचार्य के रूप में।

देव प्रधानतया शृंगार-कवि हैं। उनके काव्य में परम्परागत नायिका भेद-वर्णन, नख-शिख-वर्णन और विलास-वर्णन की प्रधानता है। इन वर्णनों में कवि की भावुकता और मौलिकता के स्थान-स्थान पर दर्शन होते हैं। शृंगार-वर्णन में शारीरिक पक्ष और मानसिक पक्ष दोनों पर कवि की दृष्टि है पर मानसिक पक्ष की प्रधानेता है। प्रेम के स्वरूप का वर्णन कवि ने बहुत अच्छा किया है। इस वर्णन में गम्भीरता है जो रीति-काल के कवियों में कम दिखायी पड़ती है।

शृंगार-वर्णन में संयोग और वियोग दोनों का चित्रण हुआ है। संयोग शृंगार में नायक-नायिका के विनोद का महत्वपूर्ण स्थान है। देव ने इस विषय का भी सुन्दर वर्णन किया है। पूर्व-राग, प्रवास, विरह, स्वप्नदर्शन, प्रिय-आगम तथा प्रिय-

मिलन और विहार के समय की मन की विविध स्थितियों के चित्र बड़े भावपूर्ण और मनोहारी हैं।

देव ने प्रकृति-वर्णन भी बहुत अच्छा किया है। विशेषतः ऋतुवर्णन बड़ा सजीव और प्रभावशाली हुआ है। यह वर्णन प्रधानतया उद्‌दीपन-रूप में है पर आलंबन रूप में भी हुआ है।

देव की वैराग्य और भक्ति की रचनाएँ भी उत्कृष्ट और प्रभावशाली हुई हैं।

आचार्यत्व—रीति-काल के अन्यान्य कवियों की भाँति देव आचार्य के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। उनके आचार्यत्व का प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ **शब्द-रसायन** है जिसमें कवि के विविध अंगों का वर्णन हुआ है। अन्यान्य ग्रन्थों में भी उनके आचार्य-रूप के दर्शन होते हैं।

शृंगार के विविध अंगों, विशेषतः नायिका भेद, के वर्णन में भेदोपभेदों का उन्होंने बहुत विस्तार किया है। भावविलास में भानुदत्त की रसतरंगिणी का अनुसरण करते हुए उन्होंने छल नाम के नवीन संचारी भाव का उल्लेख कर संचारी-भावों की संख्या 34 मानी है (यद्यपि शब्द-रसायन में उन्होंने परंपरागत 33 संचारी-भावों को ही स्थान दिया है)।

इसमें संदेह नहीं कि बहुत-से रीति-कवियों की अपेक्षा देव में नवीनता और मौलिकता के दर्शन होते हैं पर आचार्य-रूप में उनका कोई महत्व नहीं। उनमें वे सब त्रुटियाँ मिलती हैं जो रीति काल के सभी आचार्यों में समान-रूप से पायी जाती हैं। उनका काव्यांगों का प्रतिपादन वर्णनात्मक है, विवेचनात्मक नहीं। उसमें न विशदता है और न स्पष्टता। अनेक स्थानों पर उदाहरण लक्षणों से मेल नहीं खाते। शब्द-रसायन के अलंकार-प्रकरण में कई अलंकारों के लक्षण और उदाहरण एक साथ, एक-एक पद्य में ही, देने का प्रयत्न किया गया है। इस संक्षेप के कारण विवेचना में स्पष्टता को हानि पहुँची हैं।

अलंकारों में उन्होंने शब्दचित्र को हेय बताया है पर स्वयं इसका पालन वे अपनी कविता में नहीं कर पाये हैं।

भाषा—देव की भाषा ब्रजभाषा है। उसमें माधुर्य और नाद-सौंदर्य खूब पाया जाता है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग भी स्थान-स्थान पर मिलते हैं। ध्वनि के द्वारा चित्र खड़े करने की देव में अद्‌भुत क्षमता है। लक्षणा, व्यंजना तथा प्रतीकों का इन्होंने सुन्दर उपयोग किया है। नाद-सौन्दर्य की ओर देव की विशेष

रुचि है। इसके लिए अनुप्रास, छेकानुप्रास, यमक और पुनरुक्तिप्रकाश जैसे शब्दालंकारों का उन्होंने प्रचुर प्रयोग किया है। इससे उनकी भाषा में एक अपूर्व माधुर्य और प्रवाह आ गया है।

पर इसका दूसरा पक्ष भी है। नाद-सौंदर्य के इस प्रेम के कारण उन्हें शब्दों को तोड़ना-मरोड़ना और विकृत करना पड़ा है और अप्रयुक्त, अप्रचलित, असमर्थ एवं निरर्थक शब्दों का भी स्थान-स्थान पर करना पड़ा है जिससे अर्थ की सुबोधता में बड़ी कमी आ गयी है। भाषा पर अधिक ध्यान होने से अनेक स्थानों पर भाव आछन्न हो गया है या उसका अन्त तक सम्यक् निर्वाह नहीं हो पाया है। व्याकरण की अवहेलना और वाक्य-रचना की अस्त-व्यस्तता भी अनेक स्थानों पर दिखायी पड़ती है। फलतः उनकी रचना साधारण पाठक के लिए ही नहीं, विद्वानों के लिए भी, क्लिष्ट हो गयी है। यही कारण है कि बिहारी, मतिराम आदि की भाँति उनकी कविता लोकप्रिय नहीं हो पायी।

देव की भाषा के संबंध में विद्वानों के विरोधी मत हैं। कुछ विद्वान उनकी भाषा को एकदम दोष-रहित और अद्वितीय मानते हैं, दूसरे नितान्त सदोषा पर वस्तुतः दोनों ही मत ठीक हैं। एक ओर उनकी भाषा गुण-समृद्धि में सूर, रसखान, मतिराम और प्रतापसाहि की समता करती है तो दूसरी ओर दोष-बाहुल्य में केशव और भूषण की भाषा से भी आगे बढ़ जाती है।

अलंकार—देव की कविता में अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। छेकानुप्रास, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश जैसे नाद-सौंदर्य उत्पन्न करने वाले अलंकारों का उन्हें विशेष मोह है। श्लेष जैसे चमत्कार-मूलक अलंकार का प्रयोग बहुत कम दिखायी पड़ता है। अर्थालंकारों का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर हुआ है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और संदेह देव के द्वारा प्रयुक्त प्रमुख अलंकार हैं। अधिकतर ये स्वाभाविक रूप से आये हैं और प्रयत्न-प्रसूत नहीं जान पड़ते। कहीं-कहीं प्रयत्न प्रसूत अलंकारों के भी दर्शन होते हैं। ऐसे स्थानों में कविता में क्लिष्टता आ गयी है।

छंद—देव की कविता के प्रमुख छंद दोहा, सवैया और कवित्त (घनाक्षरी) हैं। दोहों का प्रयोग प्रायःकर काव्यांगों के लक्षणों में हुआ है और सवैया और घनाक्षरी का लक्ष्यों या उदाहरणों में। घनाक्षरियों में 32 वर्णों के घनाक्षरी (रूप-घनाक्षरी) भी कई स्थानों पर आये हैं। 33 वर्णों के घनाक्षरी का प्रयोग भी देव ने किया है जो पिंगल में उनके नाम पर देवघनाक्षरी के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। साधारणतः उनकी पद्य-रचना मनोहर है पर ऐसे स्थानों की भी कमी नहीं जहाँ गति-भंग और यति-भंग दोष प्रचुरता से पाये जाते हैं और प्रवाह में बाधा पहुँचती

है। छंद के निर्वाह के लिए शब्दों की तोड़-मरोड़ और निरर्थक शब्दों का प्रयोग भी यत्र-यत्र दिखायी पड़ता है।

स्थान—देव की गणना हिंदी के श्रेष्ठ कवियों में है। मिश्र बन्धुओं ने उन्हें तुलसी और सूर के समकक्ष स्थान दिया है—"ये तीनों महापुरुष भाषा-साहित्य के भूषण हैं और अपने-अपने ढंग पर तीनों अनमोल हैं। इनके विषय में न्यूनाधिक कहना मतभेद से खाली नहीं है। इतना निश्चित है कि इन तीनों महानुभावों के बराबर कोई चौथा कवि किसी प्रकार नहीं पहुँचता।" कहना नहीं होगा कि उनकी इस राय से सहमत होना कठिन है। तुलसी, सूर, जायसी, विद्यापति जैसे प्रथम कोटि के कवियों में उन्हें स्थान नहीं दिया जा सकता। पर इसमें संदेह नहीं कि रीतिकाल के कवियों में देव का अतीव महत्वपूर्ण स्थान है। रीतिकालीन कवियों में बिहारी और घनानन्द जैसे एक-दो-ही कवि उनकी समकक्षता में रखे जा सकते हैं।

टिप्पणी

(1) महाकवि देव ने इस छन्द में श्रीकृष्ण को वर के रूप में स्मरण करते हुए उनका शब्द-चित्र उपस्थित किया है—

जिनके पगों में सुन्दर बिछियों के रौने बजते हैं और कमर में भी पहनी हुई करधनी की सुमधुर ध्वनि होती रहती है; जिनके साँवले शरीर पर पीताम्बर शोभायमान है और हृदय एवं विस्तृत वक्ष पर अत्यन्त शोभायमान वन्य-फूलों की माला आन्दोलित-आनन्दित सी दीख पड़ती है, जिनके मस्तक पर मयूर पंखों का रत्न-जटित मुकुट शोभित हो रहा है; जिनके बड़े-बड़े और चंचल नेत्र हैं और जिनके मुख-रूप चन्द्र से चन्द्रिका अर्थात् चाँदनी-सी मन्द-मन्द मुस्कान प्रकट होती रहती हैं—ऐसे इस विश्व रूपी भवन या मन्दिर को दीपक की भाँति अपनी अंग-ज्योति से सदा दीप्ति करते रहने वाले व्रज के दूल्हा श्रीकृष्ण की वन्दना करता हुआ देव कवि उनसे अपने संरक्षण-सहायता की प्रार्थना करता है।

विशेष—इस छन्द में एक ही आवृत्ति अर्थात् एक ही अक्षर से आरम्भ होने वाले दो शब्दों का साथ-साथ आने वाला कटि-किंकिन पटपीत, हियेहुलसै, जय जग, दूलह देव में छेकानुप्रास है।

(2) श्रीकृष्ण के कुमार-स्वरूप का चित्रण किया गया है—

मस्तक पर मन को बरबस हरण करने वाला मौर शोभा दे रहा है, हृदय पर गहरे रंग के गुंजों की माला पहने हैं। कृष्ण के गोल कपोलों पर कान में पहने हुए कुंडल शोभा दे रहे हैं। आँखों की चंचल चितवन है और मुख से निकलने वाले

शब्द तो अमृत के समान मधुर और निर्जीवों में भी प्राणों का संचार करने वाले हैं, कमर में पीताम्बर की शोभा देखने योग्य है और दर्शकों के मन को मुग्ध करने वाली उनकी मंद-मंद चाल है, ऐसे नन्दकुमार के सौन्दर्य पर करोड़ों कामदेव के कुमारों को न्यौछावर किया जा सकता है।

(3) **शब्दार्थ—दौरि**=भागकर। **मिस**=बहाना, बहाने से। **तबै**=तभी। **करि उठ सु औसर को वितवै**=विलम्ब करके अवसर को बिताती है। **बृखभान-कुमारी**=राधा। **विलोचन कोरन**=नेत्रों के कोने। **चितवै**=देखना। **नैक**=थोड़ा भी। **घरै**=घड़े को। **रितवै**=रीता, खाली।

(4) **शब्दार्थ—अँसुवां**=आँसू। **बरसाना**=राधा के गाँव का नाम। **छिन**=क्षण। **आपु में आपुन ही उरझै, सुरझै बिरझै समुझै समुझावैं**=अपने-आप से। आप ही/ उलझती है/ झगड़ती है / सुलझती है / बिगड़ती है / समझती-समझाती है।

(5) **को**=कौन। **बौरत ही**=मँजरी-युक्त होते ही। **कर डारिहै**=कर डालेंगे। **बौरी**=बावली। **भरे विख**=विष से भरे हुए। **रसाल**=आम। **करेजन की किरचैं**=कलेजों के टुकड़े-टुकड़े। **बीर**=भाई। **सौं**=सौगन्ध। **बल-बीर**=बलराम के भाई श्रीकृष्ण। **अबीर**=गुलाल।

(6) नायिका कहती है—वर्षा ऋतु की रात्रि में नायिका स्वप्न देखती है झीनी-झीनी फुहार पड़ रही हैं, घटाओं ने गरज-गरज कर और चारों ओर से उमड़-घुमड़कर सारे आकाश को घेर लिया है। ऐसे सुहावने समय में श्याम ने आकर मुझसे कहा, "प्यारी झूलने चलो, आकाश में बादल भी झुक गये हैं।" और मैं मन्त्रमुग्ध-सी उनका यह आग्रह सुनकर मन में फूली नहीं समायी और उनके साथ चलने को प्रस्तुत हो गई। ज्यों ही स्वप्न में उठकर चलने को हुई, सोते हुए शरीर ने जैसे ही उठने की कोशिश की कि नींद टूट गई। वह कहती है कि हाय निगोड़ी नींद ने टूटकर मेरे मिलन-सुख पर पानी फेर दिया। नींद का इस प्रकार प्रियतम के मधुर स्पर्श और आग्रह के मादक अवसर पर निद्रा का भंग और स्वप्न का समाप्त होना मेरे लिए तो जागना हुआ परन्तु मेरे भाग्य का सो जाना-सा बन गया। मैं तो ऐसा ही समझती हूँ। स्वप्न के आवेश-जन्य भावातिरेक ने जैसे ही आँख खोली, वैसे ही मैंने देखा, न कहीं बादल हैं, न कहीं घनश्याम हैं और न कहीं बूँदा-बाँदी हो रही है। जो बूँदा-बाँदी मैं स्वप्न में देख रही थी, मानो वही बस मेरी आँखों में आँसुओं के रूप में बरौनियों में छायी हुई रह गई प्रतीत होती है।

(7) महाकवि देव का यह छन्द रसिकों का हृदयहार हैं। यहाँ कवि ने वसन्त को मदनमहीप का बालक बताया है। प्रकृति के गर्भ से बसन्त रूपी शिशु ने जन्म लिया है।

वृक्षों की डालों का पालना है नूतन किसलयों का रेशमी मखमली बिछौना है, रंग-बिरंगे फूलों का मानो रेशमी छींट का झँगूला पहना दिया है, जिससे उसकी स्वाभाविक शोभा अत्यधिक बढ़ गई है। कवि कहता है, उस पालने को शीतल मन्द सुगन्ध पवन हिला-हिलाकर मानो शिशु को झूला-सा झुला रही है, चारों ओर पक्षियों का कलरव हो रहा है सो मानो मोर और तोते उससे बतराते हुए उसे खिलाते हैं और कोकिल को अपने सुमधुर स्वर में कूक कर उसे सचमुच आनन्दित कर हँसाने का प्रयास करता है। और ध्यान से देखो, तो दिखाई देगा कि कमल की कली-रूपी नायिका लताओं की साड़ी ओढ़े पुष्पों के पराग से मानो इस शिशु की नज़र उतारने की राई-नौन (नमक) उतार रही है। यह शिशु वसन्त कामदेव रूपी राजा का राजकुमार है। उसे प्रातःकाल नित्य गुलाब चुटकी बजाकर जगाता है।

विशेष— इस सांग-रूपक द्वारा बसन्त का बड़ा ही सजीव और चित्रोपम वर्णन ही नहीं, उसका मानवीकरण करने में भी कवि को अपूर्व सफलता मिली है। गुलाब की चटकारी में अर्थ-ध्वन चमत्कार है।

9. बिहारी

तुलसी और सूर के बाद हिंदी के जिस कवि को सबसे अधिक सम्मान और यश मिला उसका नाम है, 'बिहारीलाल'। इनकी लिखी केवल एक पुस्तक मिलती है, "बिहारी सतसई" जिसमें कुल 719 दोहे अर्थात् 1438 पंक्तियाँ हैं। इन गिनी-चुनी पंक्तियों में ही इस महाकवि ने भावों का इतना रस, भाषा का ऐसा मिठास और कला की ऐसी बारीकी भर दी कि बादशाह शाहजहाँ से लेकर साधारण नागरिक तक और बड़े-बड़े पंडितों से लेकर मामूली बुद्धि के व्यक्तियों तक सभी वाह-वाह कर उठे। दोहे तो कबीर तुलसी और रहीम ने भी बनाये थे पर जो चमक और चमत्कार बिहारी ने पैदा किया और जो गागर में सागर इन्होंने भरा वह न इनसे पहले कोई भर सका, न इनके बाद। इसलिए "बिहारी सतसई" पर अनगिनत टीकाएँ लिखी गयीं। एक विद्वान का तो अनुमान है कि सतसई की रचना हुए जितने वर्ष बीते हैं उतनी टीकायें तो अवश्य ही इस पुस्तक पर लिखी जा चुकी हैं। कुछ टीकायें तो पद्य में हैं। बिहारी सतसई की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि संस्कृत भाषा में तीन विद्वानों ने इसके तीन अनुवाद प्रस्तुत किये। उर्दू, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी इसका अनुवाद हो चुका है। अंग्रेजी विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। बिहारी के बाद लगभग सभी कवियों

ने बिहारी की नकल की है। उन्होंने नन्हे-नन्हे दोहों में भरे बिहारी के गहरे भावों को लम्बे-लम्बे छन्दों में बाँधना चाहा पर नहीं बाँध सके। बिहारी के अनुकरण पर बीसियों सतसइयाँ निकलीं पर 'बिहारी सतसई' के सामने एक न ठहर सकी। एक विद्वान ने बिहारी के दोहों को अमृत-रस से भरे कटोरों के समान बताया है। एक अन्य ने उनकी उपमा उन हीरों से दी है जिनकी पूरी कीमत आज तक कोई जौहरी न आँक सका। एक-एक दोहे के अनेक-अनेक भावार्थ निकलते हैं। ये पाठक के हृदय को तीर की तरह बींध डालते हैं। एक प्रशंसक ने क्या ही सुन्दर लिखा है :

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर ॥

गहरे घाव करने वाले इन दोहों के संग्रह "बिहारी सतसई" की प्रशंसा में किसी कवि ने कहा है :

उदै-अस्त लौं अवनि पै, सबको याकी चाह।
सुनत बिहारी सतसई, सर्बहि सराहि सराहि ॥

और यह ठीक भी है। जब तक हिंदी भाषा और उसके प्रेमी हैं, बिहारी के दोहे बराबर प्रेमपूर्वक पढ़े और सराहे जायेंगे।

महाकवि बिहारीलाल धरबारी माथुर चौबे थे। इनका गोत्र धौम्य था। इनके पिता का नाम था, केशवराय। ये केशवराय ग्वालियर के निवासी थे और स्वयं भी अच्छे कवि, विद्वान और भगवद्भक्त थे। इन्हीं के घर ग्वालियर में संवत् 1652 के कार्तिक सुदी बुधवार को बिहारीलाल जी का जन्म हुआ था।

बिहारीलाल अभी बहुत छोटे ही थे कि केशवराय जी ग्वालियर छोड़कर ओरछा चले आये। यहाँ इनकी मित्रता हिंदी के प्रसिद्ध कवि केशवदास से हो गई। यही महाकवि केशवदास बिहारीलाल के गुरु बने। बिहारी ने सारे शास्त्रों के साथ-साथ केशव के सभी ग्रन्थों का भी गहरा अध्ययन किया।

संवत् 1664 के आस-पास केशवराय सकुटुम्ब श्री वृन्दावन चले गये और अपना सारा समय साधु-सन्तों की संगति में बिताने लगे। बिहारीलाल जी ने यहाँ भी अपनी पढ़ाई जारी रखी। प्रसिद्ध साधु श्री रसदेव, श्री नागरीदास तथा श्री नरहरिदास के साथ रहकर इन्होंने काव्य और संगीत का खूब अभ्यास किया। केशवराय जी के दो पुत्र और एक पुत्री थी। पत्नी मर चुकी थी। वे स्वयं वृद्ध हो चुके थे और सन्तान की चिन्ता से निवृत्त हो जाना चाहते थे। उन्होंने तीनों

का यथास्थान विवाह कर दिया। बिहारीलाल जी ने मथुरा के एक धनवान चौबे की रूपवती कन्या का पाणिग्रहण किया और ससुराल में ही रहने लगे।

अब तक बिहारीलाल जी का नाम इधर-उधर काफी फैल गया था। इन्हीं दिनों संवत् 1675 में सम्राट जहाँगीर एक महात्मा चिद्रूप के दर्शन करने के लिए वृन्दावन आया। उसके साथ उसका पुत्र शाहजहाँ भी था। महात्मा नरहरिदास के यहाँ बिहारीलाल की भेंट शाहजहाँ से हुई। शाहजहाँ बिहारीलाल जी की योग्यता और कवित्त-शक्ति से बहुत प्रभावित हुआ। उसने इन्हें आगरे आने का निमन्त्रण दिया। बिहारीलाल जी आगरे पहुँचे और शाहजहाँ के आश्रय में रहकर उसे संगीत और साहित्य सुनाने लगे। यहाँ इन्होंने फारसी और उर्दू साहित्य का भी अध्ययन किया।

कुछ समय बाद शाहजहाँ के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ। बड़ा भारी उत्सव मनाया गया जिसमें 52 राजाओं ने भाग लिया। इस अवसर पर शाहजहाँ ने बहुत से मणिरत्न और आभूषण देकर बिहारीलाल को सन्तुष्ट किया। यह देखकर आये हुए 52 राजाओं ने भी राजकवि बिहारीलालजी को बहुत-सा धन दिया और उनकी वार्षिक वृत्ति बाँध दी।

आगरे में रहते हुए बिहारीलाल हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और दानी सामन्त अब्दुर्रहीम खानखाना के दरबार में भी उपस्थित हुए थे। रहीम गुणियों का बड़ा सत्कार किया करते थे। बिहारीलाल जी की कविता सुनकर उन्होंने भी इन्हें कई हजार अशर्फियाँ दी थीं।

आगरे में रहने का बिहारीलाल जी को बड़ा लाभ हुआ। धन भी बहुत कमाया और भारत के बड़े-बड़े राजाओं एवं विद्वानों से भी उनका परिचय हो गया। वे उन 52 राजाओं के यहाँ जाने-आने लगे जिन्होंने उनकी वार्षिक वृत्ति बाँधी थी। शाहजहाँ का कृपा-पात्र होने के कारण सब उनका सम्मान करने लगे।

संवत् 1678 से 1691 तक का समय बिहारीलाल जी ने ब्रजभाषा के विशेष अध्ययन में लगाया। इसी बीच वे कुछ समय के लिए जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह के यहाँ भी ठहरे। कहते हैं यहाँ रहकर उन्होंने 1400 दोहों का एक विशाल संग्रह तैयार किया था जो अब नहीं मिलता। कुछ लोगों का तो यहाँ तक अनुमान है कि महाराजा जसवंतसिंह लिखित प्रसिद्ध ग्रंथ "भाषा-भूषण" वास्तव में बिहारीलाल जी ने ही लिखा था।

संवत् 1692 में बिहारीलाल जी आमेर पहुँचे। यहाँ के महाराज जयसिंह एक छोटी आयु की सुन्दर रानी को व्याह लाये थे। वे उस रानी के प्रेम में इतने

मस्त हो गये थे कि महल से बाहर नहीं निकलते थे। उन्होंने आज्ञा निकाल दी थी कि जो हमारे रंग में भंग करेगा उसका अंग-भंग कर दिया जायेगा। राज-काज चौपट हुआ जाता था। बड़ी रानी और मंत्री बहुत चिन्तित थे। सब ने मिलकर बिहारीलाल जी से प्रार्थना की। बिहारीलाल जी ने निम्नलिखित दोहा लिखकर दासी के हाथों राजा के पास भिजवा दिया :

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली, कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल ?

अर्थात् हे भौंरे तू एक बिना खिली कली के प्रेम में इतना डूब गया। यह मोह उचित नहीं। आगे तेरा क्या हाल होगा ! राजा पर इन दो पंक्तियों की चेतावनी का बिजली का-सा प्रभाव पड़ा। वे तुरन्त राजमहल से बाहर निकल आये और बिहारीलाल जी को एक "पसर" अशर्फियां भेंट कीं। उन्होंने कवि से अनुरोध किया कि वे यहीं रहकर दोहे बनायें और प्रति दोहा एक अशर्फी प्राप्त करें। बड़ी रानी ने भी उन्हें "काली पहाड़ी" नामक ग्राम उपहार में दिया और महाकवि का एक चित्र बनवाकर अपने महल में लगवाया। जब इसी रानी का पुत्र युवराज रामसिंह बड़ा हुआ तो बिहारीलाल ही उसके शिक्षक नियुक्त किये गये।

आमेर रहते हुए भी बिहारीलाल बराबर शाहजहाँ के दरबार में जाते रहे। शाहजहाँ के कृपापात्र संस्कृत के विख्यात पंडितराज जगन्नाथ से इनकी बड़ी मित्रता थी। प्रसिद्ध कवि एवं आचार्य कुलपति मिश्र इनके भांजे थे। कवि दूलह से भी इनकी घनिष्ठता थी।

सतसई समाप्त होने तक बिहारीलाल जी की पत्नी का देहान्त हो चुका था। पुत्रहीन होने के कारण इन्होंने अपने भाई के पुत्र निरंजन कृष्ण को गोद ले लिया। इस निरंजन कृष्ण को महाराजा जयसिंह के पास छोड़कर ये वृन्दावन चले गये और वहाँ अपने गुरु नरहरिदास के पास रहने लगे। अब कविता से भी इनका मन ऊब गया। ये पूरी तरह भगवान के भजन में लीन हो गये और संवत् 1721 में परम-धाम सिधारे।

महाकवि बिहारीलाल का शास्त्र ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। धर्म, काव्य-शास्त्र और संगीत-शास्त्र को तो इन्होंने गहराई से सीखा ही था नीति, राजनीति-ज्योतिष, गणित, इतिहास, वैद्यक एवं भाँति-भाँति की कलाओं का भी इन्हें पूरा ज्ञान था। बिहारीलाल सदा ही राजाओं के साथ रहे। इसलिए राजसी क्रीड़ा-विनोदों जैसे—शिकार, नटों के खेल, पतंगबाजी, कबूतरबाजी, आदि को भी इन्होंने बारीकी से देखा था। भवन-निर्माण कला,-चित्रकला और मूर्तिकला से भी इनका परिचय

था। इसके अतिरिक्त बादशाह, राजा-राव, मंत्री-सामन्त, साधु-संत और किसान-मजदूर सबके स्वभावों का इन्हें सूक्ष्म अनुभव था। इस सारे ज्ञान और अनुभव को इन्होंने अपने दोहों में भर दिया। तभी ये दोहे इतने लोक-प्रिय बन सके। आगे बिहारी-सतसई में से जो चुने हुए दोहे दिये गये हैं उन्हें पढ़कर आपको इस महाकवि की सूझ और पहुँच का कुछ अनुमान होगा।

कविवर बिहारीलाल ने राजाओं से बहुत धन और सम्पत्ति प्राप्त की। ये सदा राज-दरबारों में ही रहे। इसका यह अर्थ नहीं कि ये चापलूस और खुशामदी थे। बिहारीलाल जी ने अपने गुणों से अपने आश्रयदाताओं को जीता। जहाँ इन्होंने राजाओं के दोष देखे वहाँ उनको टोका भी। जैसे इन्होंने राजा जयसिंह को एक दोहे के माध्यम से डाँटा था, यह हम ऊपर देख चुके हैं। यही महाराज जयसिंह जब औरंगजेब के सेनापति बनकर मराठा शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए जाने लगे तो इन्हें बहुत बुरा लगा। इन्होंने एक दोहे के द्वारा उन्हें ऐसा करने से रोका। यह दोहा था :

स्वारथ-सुकृत न, श्रम वृथा, देख विहंग बिचारि।
बाज पराये पानि परि, तू पच्छीनु न मारि॥

अर्थात् हे बाज ! पराए लोगों के वश में होकर तू अपनी जाति के पक्षियों की हत्या मत कर। ऐसा करने से न तो स्वार्थ ही सिद्ध होगा, न पुण्य ही मिलेगा। तेरा श्रम बेकार जायेगा। इस घटना से उनके जाति-प्रेम का पता चलता है। यही नहीं कितने ही दोहों में उन्होंने शासन की बुराइयों, राज-कर्मचारियों के अत्याचारों तथा धन के दोषों पर भी कठोर व्यंग्य किये हैं।

'सतसई' शब्द संस्कृत के "सप्तशती" से बिगड़कर बना है। "सप्तशती" का अर्थ है "सात सौ छन्द हों जिसमें"। सतसई का प्रत्येक छन्द स्वतंत्र और अपने में पूरा होता है। इन छन्दों को मुक्तक कहते हैं। ये मुक्तक किसी एक कहानी के धागे में बंधे नहीं होते। मुक्त होते हैं। प्रत्येक छन्द में किसी एक भाव, एक दशा अथवा एक सरस सूक्ति का मीठी चुनी हुई भाषा में अनूठा अंकन होता है। अंगूर के दानों के समान ये छन्द पाठक को रस व आनन्द देते हैं। इनकी भाषा बहुत मधुर, चटकीली और चुभने वाली होती है। बिहारीलाल ने अपनी सतसई के लिए प्रसिद्ध दोहा छन्द चुना। इनके रचे कुल 719 दोहे आज प्राप्त हैं।

शब्दार्थ :

1—भव-बाधा=सांसारिक कष्ट।
नागरि=चतुर। झाँई=परछाईं।
हरित-दुति=प्रसन्न।

2—कांछनी=पीताम्बर। बानिक=रूप।
बसौ=बसा कीजिये। लाल=कृष्ण।

3—अनुरागी=प्रेमी। गति=हालत।
बुड़ै=डूबता है। स्याम=कृष्ण, काला।
उज्जलु=पवित्र सफेद।

4—गंभीर=क्यों न परस्पर का प्रेम बढ़े।
को घटि=कौन घट कर है।
वृषभानुजा=वृषभानु की बेटी राधा।
हलधर के बीर=बलराम के भाई कृष्ण,
हलधर किसानों के प्रिय बैल।

विशेष—इस दोहे के दो अर्थ हैं। पहले में राधा-कृष्ण की जोड़ी का वर्णन है। दूसरे में मजाक करते हुए गाय और बैल की जोड़ी की प्रशंसा की गई है।

शब्दार्थ :

5—एकत=एक साथ। अहि=सर्प।
मयूर=मोर। निदाघ=ग्रीष्म की घोर गर्मी।

6—जलधर=बादल। सुरपति=इन्द्र।
गरबु हर्‌यो=गर्व दूर किया।
गिरिधरिहाथ=पर्वत हाथ पर उठाकर।

7—आवत-जात=आना-जाना। तेजहि=सूर्य की गर्मी, सम्मान।
सियरान=शीतलता, सम्मान का घटना।
मान=दिन की लम्बाई।

8—छकि रसाल=आम की रसीली सुगन्ध।
माधवी गन्ध=बसन्त के फूलों की गन्ध।
झंपत=निदियाये, भौंर-झौंर=भौंरों के झुण्ड।
मधु-अन्ध=सुगन्धि के पीछे पागल।

9—रनित-भृंग-घंटावली=भौंरों की गूंज की घण्टा-ध्वनि है।
झरत दान मधु नीर=फूलों से झरने वाला पराग ही हाथी का मद है।
कुंजर-कुंज-समीर=हाथी जैसी कुंजों की पवन।

10—तन्त्रीनाद=वीणा का स्वर। रति रंग=प्रेम का रस।
अनबूड़े=बिना रस में डूबें।
बूड़े=भवसागर में बीच में ही डूब गये।
जे बूड़े सब अंग=जो पूरी तरह डूबे वहीं भवसागर से पार हो गये।

11—**प्रकृतिहि**=स्वभाव में। **बीच**=अन्तर
नल-बल-जल ऊँचे चढ़ै तऊ नीच को नीच=नल के जोर से ऊपर चढ़ कर भी पानी फिर नीचे ही आ गिरता है।

12—**संगति**=साथ। **सुगति**=श्रेष्ठ बुद्धि। **धंध**=चक्कर में। **सुगन्ध**=अच्छी गन्ध वाला।

13—**जांचतु**=जांचता है। **चसमा**=चश्मा।
लखाई=दीख पड़ना।

14—**कनक**=सोना। **कनक**=धतूरा।
मादकता=नशा। **बौराइ**=पागल होना।

15—**स्वारथु**=स्वार्थ, **सुकृत**=बड़ाई।
बिहंग=पक्षी, बाज।

16—**नलनीर**=नल का पानी। **गति एकै**=एक ही दशा।
नीचो=झुक कर (मनुष्य के अर्थ में), गहरा (नल के लिए)।
ऊँचो=उन्नत।

17—**सब कोऊ कहै**=सबके कहने से।
अर्क=आक। **अर्क**=सूर्य।
उदोतु=प्रकाश।

18—**तन**=शरीर। **खोटे ग्रह जपु दानु**=जप तथा दान अशुभ दिनों में करते हैं। **सरु**=तालाब। **सनमानु**=आदर।

19—**अगाध**=अथाह। **सागरु**=सागर। **ओथरो**=उथला। **कूप**=कुआं। **बाइ**=बावड़ी।

20—**सकातु**=मन से शंका होती है।
निकलंकु मयंकु=कलंकहीन चन्द्रमा। **उतपातु**=विपत्ति।

21—**अलि**=भौंरा।

22—**सुआ**=तोता। **समै**=समय। **काइसु बलि की बेर**=वलि के समय कौए का सत्कार किया जाता है।

23—**बखान**=प्रशंसा। **सराध पखु**=श्राद्ध का पखवाड़ा।

24—**कोकिल वई बिडारि**=कोयल को, गुणी को दुत्कार दिया।

25—**दृग उरझत**=आँखें उलझती हैं, प्रेम होता है।
टूटत कुटुम्ब=सगे-सम्बन्धी छूटते हैं।
जुरत=सज्जनों के हृदय में प्रेम पनपता है।

परति गाँठि=दुर्जनों को यह बुरा लगता है।
ठउ=बनाई, भगवान ने यह नई रीति बनाई है।

26—अनाकनी=अनाकानी की।
फीकी परी जुहारि=नमस्ते भी जाती रही।
तारन-बिरदु=तारने का काम।
बारक=एक बार। बारनु=हाथी को एक बार तार कर।

27—नटत=मना करती हैं।
भौन=भवन, घर।
नैननु=नेत्रों से।

28—भूषन=आभूषण। सुकुमार=कोमल। सूधे=सीधे। पाइ=पैर।
सोभा ही कै भार=सुन्दरता के ही बोझ से।

29—संदेसु=संदेश। लजात=लज्जा आती है।

30—अँखियानु कूं=आँखों के लिए।
सिरज्यौं=बना, सृजन।
अनदेखे अकुलाहिं=बिना देखे बेचैन रहते हैं।

31—सघन=अत्यन्त घनी। मंद=धीमा, समीर=हवा, पवन।

32—बतरस=बात करने की लालसा में। लुकाय=छिपाकर। सौंह करै =सौगन्ध खाती है।

10. घनानंद

घनानंद (1689-1749) ई० रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। वे दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मीर मुंशी थे। मुहम्मद शाह एक बार इनके ऊपर नाराज हो गये और इन्हें दरबार से निकाल दिया। वहाँ से वे विरक्त होकर वृन्दावन चले गए और निम्बार्क संप्रदाय के वैष्णव हो गए।

उनकी कविताओं में 'सुजान' नाम का प्रयोग बार-बार हुआ है, बल्कि एक ग्रंथ का नाम ही 'सुजानसागर' है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह नाम व्यक्ति विशेष का सूचक है। लेकिन इससे ईश्वरीय प्रेम का संकेत भी मिलता है। कहा जाता है कि नादिरशाही के दौर में ये मारे गए। इनके ग्रंथों में 'सुजानसागर', 'विरहलीला', 'कोकसार', 'रसकेलिवल्ली' और 'कृपाकांड' मुख्य हैं।

घनानंद 'साक्षात् रसमूर्ति' थे। उनकी कविता में प्रेम का बड़ा ही निर्मल, भावमय और उदात्त रूप व्यक्त हुआ है। कवि का ध्यान अंतरवृत्ति निरूपण पर है, बाहरी नाप-जोख पर नहीं। जहाँ कहीं रूप-सौन्दर्य का वर्णन आया भी है वहाँ उसके प्रभाव का आकलन ही मुख्य है।

घनानंद 'ब्रजभाषा प्रवीण' तो थे ही, 'भाषा प्रवीण' भी थे। उनकी कविता में ब्रजभाषा का बड़ा ही सुथरा रूप देखने को मिलता है। वाक्य विन्यास में तार्किक अनुक्रम है। सशक्त अर्थ-व्यंजना के लिए जगह-जगह विरोधाभास का सहारा लिया गया है। इसीलिए उसमें जीवंत अर्थ वहन करने की अद्भुत क्षमता आ गई है।

घनानंद, निस्सन्देह, बड़े ही विदग्ध और भावप्रवण कवि थे। उन जैसा वाक्-सिद्ध और रससिद्ध कवि रीतिकाल में दूसरा नहीं हुआ।

(1) **प्रसंग एवं व्याख्या**—प्रेम के सीधे-सादे मार्ग का पथिक प्रेमी अपनी प्रियतमा को उलाहना देते हुए कहता है—प्रेम का मार्ग तो अत्यन्त सरल और सीधा है, जहाँ तनिक भी टेढ़ापन और कुटिलता नहीं है। प्रेम के इस मार्ग में अहं को विस्मृत करके सच्चे लोग (प्रेम के धीर पथिक) ही चल सकते हैं और जो सोच-समझकर कदम रखना चाहते हैं कि मेरे हृदय पर एक प्रियतम के अतिरिक्त किसी दूसरे की छाप नहीं है—अर्थात् मेरे हृदय में केवल तुम्हारी ही छाप है और तुम्हारे सिवाय मैं किसी और का ध्यान नहीं करता। परन्तु जरा तुम तो बताओ कि तुम कौनसी पट्टी पढ़ रहे हो (कौनसी शिक्षा तुम्हें मिली है) कि मन भर लेकर तुम देते छटांक भर भी नहीं हो अर्थात् तुमने तो मेरे मन को अपने अधिकार में ले लिया है। पर उसके बदले में तो तुम एक झलक भी नहीं दिखाते।

विशेष—प्रस्तुत सवैया में घनानंद का प्रेम के प्रति निजी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। प्रेमी के उलाहने का सजीव चित्रण होने के साथ अन्तिम चरण में लोकोक्ति का मधुर प्रयोग हुआ है।

शब्दार्थ—नेक=थोड़ा भी। सयानप=चतुरता। झझकैं=झिझकते हैं। आँक=अंक।

(2) **प्रसंग**—विरह में प्रेमी की जैसी दशा होती है वह अतुलनीय है। वह दशा तो पानी से बिछुड़ने वाली मछली की गति से भी दारुण और दयनीय होती है।

व्याख्या—जल से हीन अर्थात् अलग होने पर मछली विवश हो जाती है अर्थात् मर जाती है अतः जल के वियोग में उत्पन्न होने वाली उसकी व्याकुलता क्या तनिक भी मेरी व्याकुलता की समानता कर सकती है। भाव यह है कि मेरी

विकलता मछली से कहीं अधिक तीव्र और कष्टप्रद है। मछली अपने प्रेमी जल को कलंक लगाकर तथा वियोग की व्यथा को न सह पाने के कारण भयभीत होकर मर जाने में कायरता का प्रदर्शन करती है। इसके विपरीत मैं अपने प्रेमी पर कोई दोषारोपण नहीं करता और वियोग की व्यथा को साहस के साथ झेलता हुआ जीवित रहता हूँ, इसलिए मछली मेरी विकलता की समानता नहीं कर सकती, मछली प्रीति की रीति को क्या समझ सकती है। वह तो जड़प्रियता अर्थात् जल से वशीभूत होने को ही अपनी व्यथा का कारण सिद्ध करती है। इसके विपरीत मेरा प्रियतम, चेतन होने पर भी मेरी उपेक्षा करता है। किन्तु मैं उसकी उपेक्षा से विचलित न होकर अपने प्रेम में कमी नहीं आने देता। यह भी एक कारण है जिससे मेरा प्रेम मछली के प्रेम से कहीं बढ़कर है घनानन्द कहते है कि प्रियतम के वियोग में मेरी जो दशा है उसे प्राणों के प्राण सुजान ही जानते हैं।

विशेष—प्रेमी की दशा की अनन्यता का चित्रण बड़ा मार्मिक हुआ है। कवि ने अपनी मौलिक कल्पना के द्वारा प्रेमी की प्रेमव्यथा को पूर्णतः सम्प्रेषणीय बना दिया है।

अनुप्रास और व्यतिरेक अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है।

(3) **प्रसंग**--प्रवासी प्रियतम के प्रति प्रेमी के आतुर मन की पुकार का चित्रण है।

व्याख्या—हे अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले प्रियतम सुजान ! मैं जिस प्रकार तुम्हारे विरह में पीड़ा सहन करता रहता हूँ, यद्यपि तुम्हारे आने की कोई अवधि निश्चित नहीं है और न तुमसे ऐसी कोई आशा ही है तथापि मैं निरन्तर आपकी प्रतीक्षा में रत हूँ। मेरी इस दशा को देखकर अकारण ही कोई पूछे तो मैं क्या उत्तर दूं ? हे मेरे प्रिय ! हा हा खाकर, मैं दूर से ही तुम्हारे पाँव पकड़ता हूँ, अपने हृदय में तनिक विचार करके मुझे उत्तर दो कि मैं क्या कहूँ।

अलंकार—"हहा" में वीप्सा तथा "दूरि तैं पाय गहौं" में विरोधाभास अलंकार है।

(4) **प्रसंग**—अपने सुजान की विमुखताजन्य निराशा से विवश होकर अपनी जैसी स्थिति है। उसी में सन्तुष्ट रहने का प्रयत्न करते हुए घनानन्द अपनी प्रिया के लिए मंगल कामना करते हैं।

व्याख्या—इधर तो मेरे हिस्से में तुम्हारी सुधि आई है और उधर तुम्हारे हिस्से में मुझे भूलना आया है, फिर उलाहना दूं भी तो कैसे ? अब तो मैंने सब शिरोधार्य कर लिया है—जो कुछ तुम्हें रुचें सो करो। फिर भी मैं यह अवश्य

कहूँगा कि हे अत्यन्त आनन्द देने वाले सुजान ! मैं तो मात्र तुम्हारी ही चर्चा करता रहता हूँ और उन्हीं बातों के कारण जीवित रहता हूँ। यद्यपि तुम्हारे मन में मेरे लिए कोई चाह नहीं है तो भी मेरे मन का यह आशीष स्वीकार करो कि तुम जहाँ भी रहो, सुखी रहो सकुशल रहो।

विशेष—इस सवैये में घनानन्द ने अपने हृदय की उदात्त एवं प्रेम की अनन्यता का परिचय दिया है। उनके वाग्वैदग्ध की भाव-प्रवणता इसमें देखी जा सकती है।

(5) **प्रसंग**—अपने प्रति सुजान की निष्ठुरता और उदासीनता को संकेतित करते हुए घनानन्द अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हैं।

व्याख्या—जिस हृदय रूपी प्रेम पत्र में पूर्ण प्रेम (एकनिष्ठ प्रेम) के मन्त्र को महान प्रतिज्ञा के साथ शुद्ध करके भली-भाँति लिखा और जिस हृदय रूपी प्रेम-पत्र को उसी प्रियतम के सुन्दर और विलक्षण चरित्रों से परिश्रमपूर्वक बनाकर विशेष रूप से रखा, ऐसे पवित्र हृदय रूपी प्रेम-पत्र को जिसमें प्रियतम के अतिरिक्त किसी और की बात कहीं पर अंकित नहीं की गई थी—अत्यन्त आनन्द देने वाले सुजान प्रियतम ने अनजान बनकर उसी प्रेम-पत्र को टुकड़े-टुकड़े कर दिया पर उसे पढ़ा तक नहीं। प्रियतम के इस निष्ठुर व्यवहार ने मेरे हृदय को टूक-टूक कर दिया।

विशेष—"पचि रचि" में अनुप्रास, "हियो-हित-पत्र" में रूपक, "सो घनआनन्द जान अजान लौं टूक कियो" में यमक एवं उपमा अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

(6) **प्रसंग**—प्रेमी के कपटपूर्ण व्यवहारों को कोसते हुए घनानन्द उसकी उदासीनता को उद्घाटित करते हैं।

व्याख्या—हे प्रियतम सुजान ! यह कोई अच्छी बात नहीं है कि पहले तो स्नेह-पूर्वक किसी को अपना बना लिया जाय और फिर उस स्नेह के बन्धन को निर्मम होकर तोड़ दिया जाय। हे निर्दयी ! निराश्रित को आशा देकर बीच धार में बाँह पकड़कर मत डुबाओ। घनानन्द कहते हैं कि तुम अपने इस चातक को एक बार अपने प्रेम, ममत्व और औदार्य तथा सौन्दर्य की डोर से बाँध चुके हो। अब उसे अपने मोह से वंचित न करो। अपने प्रेम-रस का पान कराके पहले तो जिलाया और मेरी आकांक्षाओं को बढ़ा दिया, अब विश्वासघात करके अशोभनीय व्यवहार करना उचित नहीं है। यह तो रस में विष घोलने जैसा कार्य है। आशय यह कि मेरा तुमसे अनन्य प्रेम है अतः तुम मुझे इस प्रकार वियोग में मत जलाओ।

विशेष—(1) कवि ने एकनिष्ठ प्रेम का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

(2) "निरधार अधार" में यमक, "धार-मंझार" तथा "आसबिसास" में अनुप्रास, "घनआनन्द आपने चातक को" में रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का **प्रयोग** है।

(7) **प्रसंग**—विरह की व्यथा से ग्रस्त विरहिणी की दशा का चित्रण है।

व्याख्या—विरहिणी प्रेम में डूबी, पीली तथा दुर्बल देह शोभित हो रही है। उसकी पीली देह को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव का पूरा रंग ही उसके (विरहिणी) शरीर पर चढ़ गया हो। उसके नेत्र रात-दिन पिचकारी के समान चलते रहते हैं, अर्थात् उसके नेत्रों से रात-दिन आंसुओं की वर्षा होती रहती है। विरहिणी के बिखरे केश ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे किसी ने उन्हें (केशराशि को) अपने हाथों में झकझोर दिया हो। आनन्दघन कहते हैं कि उस विरहिणी की दशा का वर्णन किस प्रकार करूँ। हे प्राणप्रिय सुजान! वह विरहिणी तुम्हारे वियोग में फागमयी प्रतीत होती है। जैसे वह होली खेल रही हो। तुम्हारे बिना वह विरह की अग्नि में अपने हृदय में होली-सी जलाकर अपने प्राणों को भूनकर होला बना रही है। (होली में चने भूनकर होला बनाया जाता है, यहाँ विरहिणी विरहाग्नि में अपने प्राण भून रही है)।

शब्दार्थ—8. **काननि छवैं**=कानों का स्पर्श करते हैं। **लट लोल**=सुन्दर बाल। **कलकंठबनी जलजावलि द्वैं**=सुन्दर कंठ में दो शंख पंक्तियाँ बनी हुई हैं।

9. **अनूप**=अनोखे। **अघानि**=तृप्त, संतुष्ट। **सुतौ**=वही।

10. **काल्हि**=कल। **औचक**=अचानक। **आंवनि**=आना।

11. **पर काजहि**=दूसरे के कार्य के लिए। **जथारथ**=यथार्थ में, वास्तव में। **परसौ**=स्पर्श करो। **पीर**=दुख। **बिसासी**=विश्वासघाती।

11. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म सन् 1865 ई० में निजामाबाद, जिला आजमगढ़ (उ० प्र०) में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० भोलासिंह उपाध्याय था। पाँच वर्ष की अवस्था में फारसी के माध्यम से इनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। वर्नाक्यूलर मिडिल पास करके ये क्वींस कालेज बनारस में अंग्रेजी पढ़ने गये पर अस्वस्थता के कारण अध्ययन छोड़ना पड़ा। स्वाध्याय से इन्होंने हिन्दी, संस्कृत,

फारसी और अंग्रेजी में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। निज़ामाबाद के मिडिल स्कूल के अध्यापक, कानूनगो और काशी विश्वविद्यालय में अवैतनिक शिक्षक के पदों पर इन्होंने कार्य किया। सन् 1945 में इनका देहावसान हो गया।

हरिऔधजी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि और गद्य लेखक थे। इनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ "प्रियप्रवास" (खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य), 'वैदेही वनवास' (करुणरस प्रधान महाकाव्य), 'पारिजात' (स्फुट गीतों का क्रमबद्ध संकलन), 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' (दोनों बोलचाल वाली मुहावरों से युक्त भाषा में लिखित स्फुट काव्य-संग्रह) और 'रसकलश' ब्रजभाषा के छंदों के संकलन) हैं। 'अधखिला फूल' (उपन्यास), 'ठेठ हिंदी का ठाठ' (उपन्यास)' 'रुक्मिणी परिणय' (नाटक) आदि मौलिक गद्य रचनाओं के अतिरिक्त आलोचनात्मक और अनूदित रचनाएँ भी इनकी हैं।

ये पहले ब्रजभाषा में कविता किया करते थे, 'रसकलश' जिसका सुन्दर उदाहरण है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से ये खड़ी बोली के क्षेत्र में आये और खड़ी बोली काव्य को नया रूप प्रदान किया। भाषा, भाव, छंद और अभिव्यंजना की घिसीपिटी परम्पराओं को तोड़कर इन्होंने नयी मान्यताएँ स्थापित ही नहीं कीं अपितु उन्हें मूर्त रूप भी प्रदान किया। इनकी बहुमुखी प्रतिभा और साहस के कारण ही काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष को नवीन आयाम प्राप्त हुए।

वर्ण्य विषय की विविधता हरिऔध जी की प्रमुख विशेषता है। यही कारण है कि इनके काव्यवृत्त में भक्ति काल, रीति काल और आधुनिक काल के उज्ज्वल बिंदु समाहित हो सके हैं। प्राचीन कथानकों में नवीन उद्भावनाओं के दर्शन 'प्रिय प्रवास', 'वैदेही वनवास' आदि सभी रचनाओं में होते हैं। ये काव्य के 'शिव' रूप को सदैव ध्यान में रखते थे। इसी हेतु इनके राधा-कृष्ण, राम-सीता भक्तों के भगवान मात्र न होकर जननायक और जनसेवक हैं। प्रकृति के विविध रूपों और प्रकारों का सजीव चित्रण हरिऔधजी की अन्यान्य विशेषताओं में से एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भावुकता के साथ मौलिकता को उनके काव्य की विशेषता कहा जा सकता है। हरिऔधजी मूलतः करुण और वात्सल्य रस के कवि थे। करुण रस को ये प्रधान रस मानते थे और उसकी मार्मिक व्यंजना इनके काव्य में सर्वत्र देखने को मिलती है। वात्सल्य और विप्रलम्भ श्रृंगार के हृदयस्पर्शी चित्र प्रियप्रवास में यथेष्ट हैं। अन्य रसों के भी सुन्दर उदाहरण इनके स्फुट काव्य में मिलते हैं।

भाषा की जैसी विविधता हरिऔधजी के काव्य में हैं, वैसी विविधता महाकवि निराला के अतिरिक्त अन्य किसी के काव्य में नहीं है। इन्होंने कोमलकान्त पदावलीयुक्त ब्रज भाषा—'रसकलश' में संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली—'प्रियप्रवास' में मुहावरेयुक्त बोलचाल की खड़ी बोली 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' में पूर्ण

अधिकार और सफलता के साथ प्रयुक्त की है। आचार्य शुक्ल ने इसलिए इन्हें 'द्वि-कलात्मक कला' में सिद्धहस्त कहा है। इन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक की शैलियों में सफल काव्यरचनाएँ की हैं। इतिवृत्तात्मक मुहावरेदार, संस्कृत काव्य, चमत्कारपूर्ण सरल हिंदी शैलियों का अभिव्यंजना-शिल्प की दृष्टि से सफल प्रयोग भी किया है।

अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग इनके काव्य में है। इन्होंने हिंदी के पुराने तथा संस्कृत छंदों को अपनाया है। कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि इनके पुराने प्रिय छद हैं और इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, मालिनी, बसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित और संस्कृत वर्णवृत्तों का प्रयोग कर इन्होंने हिंदी छंदों के क्षेत्र में युगान्तर ही उपस्थित कर दिया।

ये 'कविसम्राट', 'साहित्य-वाचस्पति' आदि उपाधियों से सम्मानित हुए। अपने जीवनकाल में अनेक साहित्य सभाओं और हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति रहे। हरिऔध की साहित्यिक सेवाओं का ऐतिहासिक महत्व है। निस्संदेह ये हिंदी साहित्य की एक महान विभूति हैं।

पवन दूतिका

'पवन-दूतिका' प्रसंग 'प्रियप्रवास' से लिया गया है। श्रीकृष्ण के ब्रज से मथुरा चले जाने पर समस्त ब्रजवासी दुःखी हैं। राधिका कृष्ण-विरह की पीड़ा से अत्यधिक व्याकुल हैं। अतः वे पवन को दूती बनाकर श्रीकृष्ण के पास अपना संदेश भिजवाती हैं। संस्कृत साहित्य के मेघदूत[1], हंसदूत आदि की प्रणाली पर हरिऔधजी ने भी पवन-दूतिका का यह प्रसंग चुना है। कवि द्वारा चित्रित राधा के विरह से बढ़कर परदुःखकातरता विशेष द्रष्टव्य है। लोक-सेविका राधिका की उदात्त भावनाएँ उसके चरित्र को नवीनता प्रदान करती हैं। सम्पूर्ण काव्य (प्रियप्रवास) में लोक-सेवक कृष्ण और लोकसेविका राधिका के चरित्र का वर्णन कवि ने किया है।

राधा यद्यपि प्रिय-मिलन की आशंका से व्याकुल थीं, लेकिन प्रिय-मिलन की तीव्र उत्कण्ठा ने उन्हें रीतिकालीन नायिका की भाँति अस्वाभाविक बौखलाहट ने त्रस्त नहीं किया। राधा का पवन को दूती बनाकर प्रिय के पास संदेश भेजने में लोक-कल्याण की भावना दिखायी देती है। राधिका का पवन से यह कथन—

---

1 महाकवि कलिदास और हरिऔध दोनों की कल्पनाओं में परिस्थितियों की भिन्नता है। कालिदास का मेघदूत यक्ष का दूत था। पुरुष का, प्रिया के वियोग से संतप्त हृदय का उद्‌गार, लेकर जाने वाला दूत था। यक्ष ने मेघ को मार्ग बतलाया और उसके उपरान्त अपनी प्रिया के प्रति संदेश कहा।

'जाते जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे ।
तो जा के सन्निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना ।''

शब्दार्थ—1. **खिन्ना**=उदास । **गेह**=घर । **वातायनों**=झरोखों ।

2. **संताप**=कष्ट, पीड़ा, तेज गर्मी । **विपुल**=वृहत्, बड़ा । **कलुषित**=दूषित क्रूरता=कठोरता ।

3. **नव जलद**=नवीन मेघ ।

4. **तज**=छोड़कर । **अल्प**=थोड़ी । **मंजु**=मोहित करने वाली । **लख**=देखकर ।

5. **सरस रव**=मधुर आवाज । **द्रुम**=पेड़ वृक्ष । **मुग्ध कारी**=प्रशन्न करने वाला ।

6. **क्लान्त**=दुखी । **सन्निकट**=पास, नज़दीक । **गात**=शरीर **उत्ताप**=तेज गर्मी ।

7. **विकृत वसना**=स्खलित वस्त्रों वाली ।

8. **व्योम**=आकाश ।

9. **उत्सुका**=वहुस चाहने वाली, उत्कंठित । **मेरु से**=सुमेरु पर्वत के समान **रव**=ध्वनि, शब्द ।

10. **रुचिर**=अच्छा लगने वाला । **शब्दकारी**=शब्द उत्पन्न करने वाले ।

11. **तद्गता**=वहीं जाकर । **लोने**=सुन्दर । **ज्योति उत्कीर्णकारी**=ज्योति को तीव्र करने वाले । **सिक्त होंगे**=सींचे जाएँगे ।

12. **वसन**=वस्त्र । **कटि**=कमर । **छबीला**=सुन्दर लगने वाला । **अलक**=लट । **नवल**=नया । **तन**=शरीर **प्रभा**=कांति ।

13. **वपु**=शरीर । **सुरभि**=सुगन्ध । **प्राण संपोषिका**=प्राणों को शक्ति प्रदान करने वाली ।

14. **लसा**=शोभायमान । **उभय श्रुति**=दोनों कान । **कम्बु**=शंख ।

15. **व्यथायें**=कष्ट । **प्रखर**=तेज ।

16. **विधुरा**=विरह में व्याकुल । **सुरति**=स्मरण, याद ।

17. **उद्यान**=बगीचा । **विपुल**=बहुत । **सन्निकट**=अत्यन्त निकट ।

19. **क्वणित**=ध्वनित। **वेणु**=वंशी। **कीचक**=बाँस।

20. **भगिनि**=बहन। **अंभोजनेत्रा**=कमल के से नेत्र वाली। **वारि**=जल।

21. **चपल दृग**=चंचल नेत्र। **आशंकिता**=आशंका से युक्त।

24. **प्रोषिता**=वह स्त्री जिसका पति बाहर गया हो।

2. संतापों को विपुल........ क्रूरता से।

कृष्ण के मथुरा चले जाने के कारण राधा का हृदय वियोग से संतप्त हो गया है। वे कृष्ण के वियोग में चिन्तित थीं। उसी समय प्रातः कालीन वायु ने उनका संस्पर्श किया। उनकी विरह चेतना जागृत हो उठी। शीतल पवन उनके शोक सन्तप्त हृदय को और अधिक दग्ध करने लगी।

विशेष—प्रकृति के वे समस्त उपादान जो संयोगावस्था में सुखद प्रतीत होते हैं, वियोगावस्था में वे ही कष्टकारी हो जाते हैं। शीतल सुगन्धयुक्त पवन जो शरीर को शीतलता प्रदान करती है, आज राधिका के विरह को और अधिक उद्दीप्त करने वाली है। इस प्रकार के चित्रण से रीतिकालीन साहित्य भरा पड़ा है। हरिऔधजी ने भी रीति-साहित्य की रचना की है। उनकी 'रसकलश' रचना कुछ इसी प्रकार की है।

15. तेरे में है न यह........चलाना॥

मेरे में यह गुण तो है ही नहीं कि तू मेरे दुःखों को सुना सके। इसलिए तू अपने कार्य भी तेज बुद्धि और सुन्दर उपायों से करना।

राधिका जानती हैं पवन उनके हृदयगत भावों को वाणी द्वारा वहाँ जाकर व्यक्त नहीं कर सकती। राधिका कृष्ण विरह से प्रताड़ित अवश्य हैं लेकिन उनमें रीतिकालीन नायिका का-सा भाव नहीं है जो विरह में अपनी चेतना को ही विस्मृत कर बैठे। 'मेघदूत' में यक्ष इतना कामार्त होता है कि वह मेघ को चेतन्य समझने लगता है और यह अनुभव करता है कि वह जाकर स्पष्ट रूप से उसके संदेश को कह सकेगा।

18. कोई प्यारा कुसुम........चाहती है॥

यदि घर में कोई सुन्दर फूल कुम्हलाया हुआ पड़ा हो तो उसे उड़ाकर प्रेम के साथ प्रियतम के चरणों पर डाल देना। और हे पवन! इस प्रकार उन्हें बता देना कि फूल जैसी एक बाला दुःखित होकर आपके चरणों को चूमना चाहती है।

हरिऔधजी की ये मार्मिक उद्भावनायें सर्वथा मौलिक हैं। विशिष्टता इस बात की है कि राधा की दूती नारी हृदय की कोमलता, दयार्द्रता की प्रतीक है। नारी ही नारी हृदय की व्याकुलता को समझ सकती है। इस दृष्टि से 'पवन-दूती' मेघदूत की अपेक्षा अधिक मर्मस्पर्शी है।

12. मैथिलीशरण गुप्त

[जन्म : श्रावण शुक्ल द्वितीया संवत् 1943 (सन् 1886 ई०)

को चिरगांव (झांसी), मृत्यु : सन् 1964 ई०]

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी-युग के लोकप्रिय कवि थे। हिंदी साहित्य जगत में आप राष्ट्रकवि के रूप में परिचित थे। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं मुंशी अजमेरी[1] के आदेश तथा स्नेहमय प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप इनकी काव्य-कला में निखार आया। सन् 1909 में 'रंग में भंग' के प्रकाशन से लेकर सन् 1947 में प्रकाशित काव्य-रचना "विष्णुप्रिया" तक की साहित्यिक गतिविधियों में—महाकाव्य खंडकाव्य, मुक्तक, प्रगीत, आख्यानक लघु निबंध एवं पद्य सृजन किया है। इस प्रकार गुप्तजी का काव्य-विकास रचनाओं की विविधता और अनेकता को लिए हुए है जिसके मध्य राष्ट्रीयता, समाज सुधार की भावना अतीत गौरव का चित्रण, सांस्कृतिक जागरण, नैतिकता की भावना आदि विशिष्टतायें उनके काव्य में दिखाई देती हैं।

गुप्तजी की अधिकांश रचनायें ऐतिहासिक एवं पौराणिक विषयों पर आधारित हैं। भारतीय संस्कृति के उपासक कवि गुप्त वैष्णव-धर्म प्रवर्तक थे। उन्होंने जातीय भावना से लेकर धर्मों और संस्कृतियों के सामंजस्य तक को काव्य का विषय बनाया है। छायावादी सूक्ष्म सौन्दर्य की भावना से भी उनका काव्य अछूता नहीं रहा वरन् द्विवेदीयुगीन काव्य-संस्कारों और छायावादी काव्य मान्यताओं में कहीं-

1. मुंशी अजमेरी भी ऐसे ही महापुरुषों में से एक थे, जिन्होंने प्रारम्भ से ही अपनी प्रतिभा का उपयोग गुप्त बन्धुओं (मैथिलीशरण गुप्त एवं परिवार) को विकसित करने में लगा दिया। गुप्तजी की अधिकांश रचनाओं का संशोधन अजमेरी जी ने किया है। इस रूप में गुप्तजी के गुरु पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान ही अजमेरी जी का भी अपना महत्व है। विस्तार के लिए देखिए—

—मुंशी अजमेरी—ले० मैथिलीशरण गुप्त

कहीं सामंजस्य दिखाई देता है तो उसके उदाहरण कवि गुप्त हैं। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण एवं विकास में आपका योगदान विशेष रहा है। प्रारम्भ से चली आ रही ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की प्रतिष्ठा करने वाले यदि महावीरप्रसाद द्विवेदी थे तो उसे काव्योपयुक्त बनाने में गुप्तजी का अन्यतम स्थान रहा है।

रचनाएँ—रंग में भंग (1903), जयद्रथ वध (1910), भारत भारती (1911), पद्मप्रबंध (1912), मौर्य-विजय (1915), तिलोत्तमा (1916), चन्द्रहास (1916), किसान (1917), वैतालिक (1919), शकुन्तला (1923), पत्रावली (1923), पंचवटी (1925), अनघ (1925), स्वदेश-संगीत (1925), हिन्दू (1927), त्रिपथगा, बकसंहार, वनवैभव और सैरंध्री (1928), गुरुकुल (1929), विकटभट (1929), झंकार (1929), साकेत (1932), यशोधरा (1933), मंगलघट (1934), द्वापर (1936), सिद्धराज (1936), नहुष (1940), कुणालगीत (1942), अर्जित (1948), प्रदक्षिणा (1951), पृथ्वी पुत्र (1951), जयभारत (1952), और युद्ध (1952), साथ ही कावा और कर्बला, अर्जन और विसर्जन, गुरु तेगबहादुर, हिडिम्बा, विश्ववेदना, अंजलि और अर्घ्य तथा विष्णुप्रिया।

गुप्तजी युगीन चेतना और इसके विकसित हुए रूप के प्रति सजग थे। इसकी स्पष्ट झलक इनके काव्य में मिलती है। राष्ट्र की आत्मा को वाणी देने के कारण ये राष्ट्र-कवि कहलाये और आधुनिक हिंदी काव्य की धारा के साथ विकास-पथ पर चलते हुए युग-प्रतिनिधि कवि स्वीकार किये गये।

यशोधरा

'यशोधरा' का प्रकाशन 'साकेत' के प्रकाशन के लगभग एक वर्ष पश्चात् हुआ। पति-विमुक्ता यशोधरा के हार्दिक दुःख की व्यंजना तथा वैष्णव सिद्धान्तों की स्थापना इस काव्य का प्रमुख विषय है। यशोधरा के पति गौतम मुक्ति (मोक्ष) की खोज में चले गये; वास्तव में उसे वेदना इस बात की है कि वे चोरी-चोरी गये—"पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात है।" कवि ने यहाँ यशोधरा की विरह-वेदना बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यंजित की है। मुक्ति के रूप में विरह की अवधि के समाप्त होने पर भी यशोधरा अपने पति से पूर्णतः वंचित ही रही। एक प्रकार से यह चिरवियोग था। उसने अपने पति को एक बार खोकर सदा के लिए खो दिया। शायद इसीलिए यशोधरा का विरह उर्मिला ही के विरह की अपेक्षा अधिक मुखर हो उठा है।

(1) सखि, बसन्त-से कहाँ गये वे·······आया।

शब्दार्थ—**ऊष्मा**=गर्मी, ग्रीष्म ऋतु। **विभूति**=राख। **योग**=सुयोग, अवसर। **मृगतृष्णा**=मृग मरीचिका। **कठर**=कठिन, कठोर, जठराग्नि। **बाष्पराशि**

=अश्रुओं की धारा। **ज्योत्स्ना**=चन्द्रिका, चाँदनी। **दल**—पत्ता। **पुलकावलि**= रोमांच। **गारूँ**=गलाऊँ। **खट्टा दिन**=दुर्भाग्य का समय।

इस गीत में यशोधरा के विरह वर्णन द्वारा कवि ने षड्ऋतु-वर्णन किया है। प्रकृति (ऋतुओं के बदलते रूप) के परिवर्तित उपमानों पर वह प्रियतम की प्रत्येक स्मृति को आरोपित करती हुई सखि से पूछती है कि हे सखि ! बसन्त के समान सुभावने मेरे प्रियतम कहाँ चले गये हैं उनके अभाव में मेरा जीवन उसी प्रकार नीरस एवं शुष्क हो गया है जिस प्रकार बसन्त ऋतु के चले जाने पर विश्व में ग्रीष्म की शुष्कता एवं नीरसता छा जाती है।

हाय ! विभूति रमाने·······बाधा-व्यथा सही।

मेरे लिए तो यह भी सम्भव नहीं है कि मैं अपने प्रियतम की भाँति अपने शरीर पर भस्म लगाकर योगिनी भी बन जाऊँ, क्योंकि मुझे राहुल का पालन-पोषण करना है।

जागी ठिसकी वाष्पराशि·······बाधा-व्यथा सही।

यशोधरा के मस्तिष्क में अपने मिलन की सुखद घड़ियों की स्मृति जगती है। उसके कथन का भाव यह है कि मेरा जीवन प्रियतम से मिलने के समय कितना सुखमय था कि मैंने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि विरह के कारण मेरे नेत्रों में भी आँसू आ सकते हैं।

हेमपुंज हेमंतकाल·······विसारूँ।

ऋतुएँ परिवर्तनशील हैं। यशोधरा अपने प्रियतम के गुणों की छाया उनके विकास में देखकर उनका स्मरण कर व्यथित होती है। हेमन्त ऋतु आ गई है, यशोधरा गौतम की याद करती हुई कहती है कि हे सखि ! मैं हेमन्त ऋतु की धूप पर सोने का ढेर निछावर कर सकती हूँ। अब मुझे स्पर्श के कारण हुए रोमांच का जो अनुभव हो रहा है उसे कैसे विस्मृत कर सकती हूँ।

तन गारूँ मन मारूँ पर क्या मैं जीवन भी हारूँ·······?

यशोधरा के हृदय में पीड़ा के प्रबल झोंके आते हैं, किन्तु उनमें इतना बल नहीं है कि वे उसके पैर उखाड़ दें। यशोधरा कहती है कि इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं जीवन से भी हार मान बैठूँ।

मेरी बाँह गही·······सही।

अमर सम्बन्धों की स्थापना के लिए प्रियतम ने मेरा वरण किया था और मैंने उनकी शरण ली थी। पत्नी के रूप में पति वियोग का संताप यशोधरा ने

अवश्य भोगा, लेकिन पति-वियोग की यह आकुलता यहाँ नारीत्व का शृंगार बन बैठी। यही इसकी विशिष्टता है।

उनके श्रम के फल सब भोगें.......सही।

यशोधरा यही विनय करती है कि उसके प्रियतम अपनी तपस्या के परिश्रम से प्राप्त जो फल लावें, उससे समस्त विश्व लाभान्वित हो।

यहाँ कवि ने "विश्व मंगल" की भावना का संदेश दिया है।

(2) रे मन, आज परीक्षा तेरी

शब्दार्थ—**विग्रह**=संयम। **अवलम्बित**=आश्रित। **निःश्रेयस**=कल्याण। **उद्धारक**=उद्धार करने वाला। **चेरी**=दासी।

प्रसंग—यशोधरा का अपने प्रियतम से पुनर्मिलन के कुछ क्षण पूर्व का चिंतन है। भगवान बुद्ध वैशाली आ गए हैं। विरहिणी यशोधरा उनके अविलम्बित दर्शन करना चाहती है, किन्तु वह मानिनी है, अतः उस कक्ष का परित्याग कर प्रियतम का स्वागत नहीं करना चाहती जहाँ वे उसे छोड़कर गए थे। इसीलिए वह अपने मन को दृढ़ रहने के लिए उससे अनुरोध करती हुई कहती है।

विशेष—कवि ने यहाँ नारी का गौरवयुक्त चित्रण प्रस्तुत किया है। यशोधरा की सृष्टि आधुनिक युग नारी-भावना के अनुसार की गई है।

2. सीता का उटज गीत
(साकेत)

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी कविता के एक प्रधान कवि हैं। हिन्दी की काव्य-प्रेमी जनता उन्हें राष्ट्रकवि के नाम से पुकारती है। गुप्तजी द्विवेदीयुग के उन कवियों में सबसे प्रमुख हैं जिन्होंने राष्ट्रीयता और जातीयता की भावनाओं को वाणी दी जिसके द्वारा उनका प्रमुख उद्देश्य था, सांस्कृतिक पुनर्जागरण। वह संस्कृति केवल हिन्दू-संस्कृति ही नहीं थी वरन् सभी धर्मों एवं संस्कृतियों का समन्वयवादी रूप था। एक ओर यदि कवि ने हिन्दू संस्कृति के विकास के लिए भारत-भारती, हिन्दू, गुरुकुल की रचना की तो दूसरी ओर "काबा और कर्बला" की रचना करने में भी संकोच नहीं किया। भारतीय संस्कृति के उपासक गुप्तजी की कृतियों में **साकेत**, **यशोधरा**, **नहुष और कुणाल** का अन्यतम स्थान है। 'साकेत' गुप्तजी की प्रतिनिधि और श्रेष्ठ कृति है। महात्मा गाँधी को भेजे गए पत्र में कवि ने

लिखा था कि 'मेरी जीवन-रचना साकेत' है। साकेत पर गांधी का स्पष्ट प्रभाव लक्षित है।[1]

'**सीता का उटज गीत**' शीर्षक कविता साकेत महाकाव्य से ली गई है। चित्रकूट की रम्य (सुन्दर) प्रकृति में राम और सीता के सरल, स्वावलम्बी जीवन की झांकी प्रस्तुत की गई है। सीता उत्साहपूर्वक एक सामान्य वनवासी दैनिक जीवन स्वीकार कर वन के प्रत्येक कार्य को अपने हाथ से करती हैं। 'औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ'। वे एक लम्बा गीत गाती हैं जो उनके जीवनोत्साह को व्यंजित करता है।

भावार्थ और संदर्भ—[सीता का उटज गीत]

निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया.........मन भाया।

शब्दार्थ—सौध सदन=राजमहल। **उटज**=कुटिया। **प्राणेश**=पति। **आकर**=खान, भण्डार।

मेरे पिता ने राजमहल में भी अपने निवासार्थ एक झोंपड़ी डाल ली थी। (राजा होकर भी ऋषियों की भांति रहते थे। इसलिए जनक को राजर्षि कह कर सम्बोधित किया जाता है) इसके विपरीत मेरी कुटिया में ही राजभवन के सभी सुख विद्यमान हैं। यहाँ राजभवन तथा कुटिया की समानताओं पर प्रकाश डाला गया है।

पानी पीते मृग-सिंह—स्वभावगत शत्रुता भी मित्रता में परिवर्तित हो गयी है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है—करि केहरि कपि कोलकुरंगा।
बिगत बैर बिचरहिं सब संगा॥

क्या सुन्दर.........मन भाया।

बितान=चंदोवा (मंडप)। **पुंजाकृति**=गुच्छों के आकार का।

---

1. (क) 'साकेत' पर हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने सन् 1935 में पांच सौ रुपये का पुरस्कार और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने सन् 1937 में बारह सौ रुपये का मंगला-प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया।

(ख) साकेत की एक हस्तलिखित प्रति जो कवि गुप्त ने गांधीजी को यरवदा सेन्ट्रल जेल में उनके परामर्श के लिए भेजी थी। उस पर गांधी जी ने अपने विचार भी प्रेषित किये हैं। यह प्रति भारत कला भवन, काशी में सुरक्षित है। इससे स्पष्ट है कि साकेत पर गांधीजी का प्रभाव रहा है।

परिखा=खंदक, खाई। **प्रवाह की काया**=जलधारा का शरीर। **परिखा प्रवाह की काया**=मंदाकिनी नदी का जल-प्रवाह ही इस दुर्ग के चारों ओर की जलभरी खाई है।

प्रस्तुत अवतरण में सीता चित्रकूट की तुलना एक सुदृढ़ दिव्य दुर्ग से करती हैं।

औरों के हाथों...... मन भाया।

श्रमवारि बिन्दु=पसीने की बूंदें। **शुक्ति**=सीपी। **व्यजन**=पंखा।

केन्द्रीय भाव—'स्वावलम्बन' साकेत की वनवासिनी सीता का मूल मंत्र है। यहाँ वह स्वाधीन हैं, अपने पैरों पर खड़ी हैं, आत्मनिर्भर हैं'। साकेत का कवि यहाँ गांधी जी के विचारों से अनुप्राणित है। साकेत में गांधी-दर्शन की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

किसलय कर स्वागत.......मन भाया।

किसलय-कर=नवीन कपोलों रूपी हाथ। **मुक्ता**=मोती। **जाया**=पत्नी **तटिनी**=नदी। **कोटर**=घोंसला। **कलगीत**=सुन्दर गीत। **आतिथेय**=अतिथि की सेवा करने वाले। **प्रेम**=प्रिय। **कुरंग**=हिरन। **दिवि**=नीलकंठ। **चटक**=गौरैया।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि का आशय है कि वन का प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थ आज वनवासिनी सीता-माता की स्नेह-परिधि के भीतर समा गया है, उनकी ममता सर्वव्यापिनी हो गयी है।

विशेष—प्रकृति के प्रति कवि का यह नवीन दृष्टिकोण द्विवेदी-युग की परिवर्तित विचारधारा है। यहाँ आकर प्रकृति के उपादान रीतिकालीन नायिकाओं एवं विरहणियों के विरह को और अधिक उद्दीप्त नहीं करते वरन् प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करते हैं....गाओ पिक, मैं अनुकरण करूँ....।

अयि राजहंसि.......सुध खोती।

हे राजहंसिनी (मोती-युक्त सीपी न पाने के कारण) तू इस प्रकार तरस-तरस कर (अतृप्ति का-सा भाव प्रकट करके) रो क्यों रही है। यदि तू मैथिली जैसी होती तो शुक्ति-वंचिता होकर (मोतियों से युक्त सीपियों के प्राप्त न होने पर) मेरी तरह (श्रीराम के) श्यामल शरीर में से निकलने वाले बिन्दु रूपी मोतियों को अपने पंख रूपी पंखे की सहायता से अपनी (गोद) में लेकर तू अपनी सुध-बुध ही

खो देती। इन्हीं मोतियों को धारण करने के लिए तो स्वयं मानस (मानसरोवर तथा मन) ने कमल के रूप में अपना मुख खोल रखा है।

विशेष—पति-प्राणा सीता के नेत्रों के सम्मुख एक राजहंसिनी का काल्पनिक चित्र आता है जो मोतियों से युक्त सीपियाँ प्राप्त न होने पर तरस-तरस कर रो रही है। सीता उसका मन 'श्यामल तनु' श्रीराम के 'श्रम बिन्दु रूपी मोतियों' की ओर आकृष्ट करती है। अतः वह चाहती है कि राजहंसिनी भी उन्हीं की तरह अपने पंख रूपी पंखे से वे मोती अंकोर कर मुग्ध एवं तृप्त हो जाये।

यहाँ कवि ने सीता के पति-प्रेम को अत्यन्त कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति दी है।

ओ निर्झर, झर झर नाद·······मन भाया।

शब्दार्थ—उत्तरीय=दुपट्टा। **मोद-प्रमोद**=प्रसन्नता रूपी बादल।

'पथ के रोड़ों से उलझ-सुलझ'—निर्बाध जीवन अकर्मण्य हो जाता है। वास्तव में—'बाधाएँ हैं जहाँ वहीं वीरों की गति है।' पथ के रोड़ों से उलझ-सुलझ कर सतत आगे बढ़ता हुआ झरने का जल भी तो मानव को यही संदेश देता रहता है!

शब्दार्थ—कोल-किरात-भिल्ल=वन में रहने वाली जंगली जातियाँ।

सब ओर लाभ ही लाभ बोध विनिमय में—

शब्दार्थ—बोध विनिमय=ज्ञान का आदान-प्रदान। **वृत्त संचय**=बातों का संग्रह। **ताया**=गर्म किया हुआ।

सीता का विश्वास है कि 'सब ओर लाभ' ही लाभ बोध विनिमय में अस्तु, वह चाहती हैं कि वह जो कुछ जानती हैं, वह दूसरे सीखें और दूसरों की जानकारी से वह अपने ज्ञान की वृद्धि करें। इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान सभ्यता के विकास एवं प्रसार के लिए अत्यन्त हितकर है।

विशेष—**'आओ हम कातें-बुनें'** में गांधी-युग की स्पष्ट छाप है।

3. नहुष का पतन

'नहुष की रचना मुंशी अजमेरी' के निधन के पश्चात् गुप्तजी ने अपने शोकग्रस्त मन को सांत्वना देने की दृष्टि से आरम्भ की। उनका कथन है कि

"वस्तुत: नहुष का नाम वैदिक काल से सुना जाता है और मनु के समय से उसका दृष्टान्त दिया जाता है।"1

'नहुष' गुप्तजी के प्रख्यात खण्डकाव्यों में से एक है। जैसा कि शीर्षक से ही ज्ञात होता है कि इसका विषय पौराणिक है।

'निवेदन' में उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि महाभारत का उद्योग पर्व ही इस प्रबन्धकाव्य का मूल स्रोत है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि "व्यासदेव के द्वारा वर्णित इस आख्यान में स्पष्ट दिखायी दिया कि मनुष्य बार-बार ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलतायें बार-बार उसे नीचे ले आती हैं। मनुष्य को उन पर विजय पानी ही होगी। इसके लिए उसे साहसपूर्वक फिर-फिर उठ खड़ा होना होगा। तब तक जब तक, वह पूर्णता प्राप्त न कर ले"। यही संदेश कवि नहुष द्वारा प्रस्तुत करना चाहता है।

नहुष खंडकाव्य में इन्द्र-पद को प्राप्त कनेर के पश्चात् मानवीय दुर्बलताओं के कारण नहुष के स्वर्ग-भ्रष्ट होने भर की कथा को कवि ने सात कथांशों में निरूपित किया है। कवि ने नहुष के चरित्र द्वारा यह दर्शाने का प्रयास किया है कि ऊपर उठने के लिए बार-बार प्रयत्न करते रहना चाहिए।

पैर था या.........भुजंग ही।

नहुष की अतिमानवीय धर्मवृत्ति ने जहाँ उसे देवराज बनाया, वहीं काम-विकार की प्रेरणा ने उसे सर्प योनि में डाल दिया। अर्थात् इन्द्र की पत्नी शची की प्राप्ति हेतु कामातुर होकर सप्त-ऋषियों को वाहक बनाना, क्रोधित हो पैर पटकना तथा ऋषियों द्वारा शापग्रस्त होना।

मानता हूँ और सब, हार नहीं मानता.........मेरे साथ।

अपनी सद्वृत्तियों का विकास करके मनुष्य मानव से देवता बन जाता है, परन्तु असत् वृत्तियाँ उसे पतन की ओर ले जाती हैं। मानव जीवन के उत्थान-

---

1. नहुष-निवेदन, पृष्ठ 4।

(क) मुंशी अजमेरी गुप्तजी के घनिष्ठ मित्रों में से एक थे। गुप्तजी की साहित्य साधना में जहाँ एक ओर उनके गुरु पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी थे वहाँ दूसरी ओर मुंशी अजमेरी की उपलब्धि (कवि गुप्त को साहित्य साधक बनाने में) भी किसी प्रकार कम नहीं थी।

(ख) नहुष निवेदन, पृष्ठ 4। (मुंशी अजमेरी—मैथिलीशरण गुप्त)

पतन में सत् और असत् विचारों का संघर्ष वर्तमान रहता है, पर मानवतादर्श तो परम-पुरुषार्थ में है, कभी हार न मानने में है। स्वर्ग भ्रष्ट होने पर भी मानव का आत्म-विश्वास अडिग रहता है।

कवि का प्रमुख संदेश है—पुरुषार्थ करते हुए निरंतर विकास की ओर बढ़ना।

"फिर भी उठूंगा और बढ़के रहूँगा मैं, नर हूँ,
पुरुष हूँ मैं, चढ़के रहूँगा मैं ॥"

4. आशा

'आशा' रचना कवि की स्फुट कविताओं के संग्रह से ली गई है। इसमें कवि ने राष्ट्रीय चेतना एवं स्वातंत्र्य प्राप्ति की आशा व्यक्त की है। कवि देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए व्याकुल है। उसे इस बात की आशा है कि आज का अन्धकार कल प्रकाश में अवश्य ही परिवर्तित होगा—इसी स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए 'आशा' से प्रार्थना करता है अर्थात् अपने मन को दिलासा देता है कि हमारी पृथ्वी अवश्य ही विदेशियों के स्वार्थपूर्ण वातावरण से मुक्त होकर स्वतंत्र होगी। इसमें राष्ट्रीय जागरण, मातृभूमि के प्रति प्रेम, सामाजिक ह्रास के प्रति क्षोभ तथा उत्कर्ष के प्रति आशा व्यक्त करता है।

प्रभु की दया

देश की स्वतंत्रता के लिए कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है। ईश्वर के प्रति कवि की यह भक्तिभावना उसका वंशगत अधिकार है। कवि के शब्दों में—"पिताजी जब हम छोटे-छोटे थे............ राम से बड़ा कुछ भी, भले ही वह उनका नाम क्यों न हो, मैं नहीं मानना चाहता था।"[1]

5. अन्ध कुणाल

'कुणाल-गीत' का प्रकाशन सन् 1942 में हुआ। कवि के ही शब्दों में "आठ-नौ वर्ष पहले कदाचित् किसी सूरदास को गाते देखकर 'कुणाल गीत' लिखने

---

1 मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य—डॉ० कमलाकान्त पाठक, पृ० 408

की सूझी थी। सर्वप्रथम सन् 1941 में झाँसी जेल में कवि ने दो-चार गीत रचे थे। उसी वर्ष आगरा जेल में उसने चालीस-पचास प्रगीत रचे और उसके पश्चात् चिरगाँव आकर उसकी रचना समाप्त की।"[1] 'कुणाल' के सभी गीत कुणाल की आत्माभिव्यक्ति हैं।

अशोक के पुत्र कुणाल को विमाता की कामासक्ति-जन्य आक्रोश का शिकार होना पड़ा। वह पिता द्वारा युद्ध-शमन के लिए सीमा-प्रांत भेज दिया गया। उसकी पत्नी कांचनमाल भी उसके साथ थी। विमाता ने इसी बीच सम्राट का आदेश भिजवाया कि कुणाल को अंधा करके निष्कासित कर दिया जाय। कुणाल ने इसे भी शिरोधार्य किया। सीमा-प्रांत में विद्रोह शमन और नेत्र-हानि की घटना से यह काव्य आरम्भ होता है। प्रस्तुत गीत में कुणाल की आत्माभिव्यक्ति ही आद्योपान्त वर्णित है। कुणाल का आदर्श चरित्र और उसके जीवन को उत्थान की ओर ले जाने वाली विचारधारा ही उसके गीत का मूलाधार है।

'सब संसृति पर हो अमृत-वृष्टि'—इन पंक्तियों से कवि के जीवन-दर्शन की व्यापक महत्ता तथा बुद्धकालीन संस्कृति के उच्चादर्श ज्ञात होते हैं। विश्व-बन्धुत्व की व्यापक भावना आद्योपान्त दिखाई देती है।

'निर्मुक्त हुई यह आज सीप'

कुणाल ऐसा पात्र है, जिसने अपनी समस्त अनुभूतियों को निर्वेद (वैराग्य) में पर्यवसित कर दिया है।

13. रामनरेश त्रिपाठी

(सन् 1889—1962 ई०)

त्रिपाठीजी को मुख्य रूप से राष्ट्रीय भावना का कवि कहा जाता है। द्विवेदी-युगीन राष्ट्रीय कवियों की कृतियों के बीच रामनरेश त्रिपाठी का अन्यतम स्थान है। द्विवेदी-युगीन अन्य कवियों की भाँति त्रिपाठीजी ने परम्परागत विषयों को काव्य का आधार नहीं बनाया प्रत्युत अपनी प्रतिभा द्वारा कल्पित कथानक की सृष्टि की है। कल्पित कथा पर आश्रित खंड काव्यकार हिंदी में अकेले त्रिपाठीजी ही थे और इसमें इन्हें पूरी सफलता मिली। मिलन (1915), पथिक (1920) और स्वप्न

---

1 कुणाल, गीत; निवेदन

(1929) खंडकाव्य इसी के उदाहरण हैं। इन काल्पनिक प्रेमाख्यानक खंडकाव्यों में कवि ने व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ को त्यागकर देश के लिए सर्वस्व-न्यौछावर करने की प्रेरणा दी है।

त्रिपाठीजी कवि के अतिरिक्त आलोचक, निबन्धकार, नाटककार तथा बाल-साहित्यकार भी थे। लोकगीतों के संकलनकर्ता के रूप में इनकी विशेष ख्याति है। 'मानसी' आपकी फुटकर कविताओं का संग्रह है जो मुख्यत: देश-भक्ति, प्रकृति-चित्रण और जीवन के विविध अंगों पर प्रकाश डालती है।

राजनीति से भी त्रिपाठीजी का गहरा संबंध था। अत: इनके काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर प्रमुख रहा है। इसके अतिरिक्त इनकी कविता में प्रकृति और प्रेम का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। जिसमें एक ओर द्विवेदी-युगीन नैतिकता और मर्यादा के आदर्श की छाप है, तो दूसरी ओर छायावादी कोमलता और लाक्षणिकता भी है। आपके तीनों खंडकाव्यों (मिलन, पथिक, स्वप्न) में एक ओर युवावस्थाजनित नव-दम्पति का आकर्षण, दूसरी ओर राष्ट्रीय-सेवा का अदम्य उत्साह इन दो विरोधात्मक परिस्थितियों के मध्य काव्य की सर्जना हुई है। किन्तु अन्त में दोनों विरोधात्मक परिस्थितियों का समन्वय कर त्रिपाठीजी ने अपने काव्यों के नायकों को कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ करा दिया है।

कवि होने के साथ-साथ आप एक कुशल सम्पादक भी थे। उनके सम्पादन कार्य में 'कविता-कौमुदी' का सम्पादन हिंदी-साहित्य में अभूतपूर्व है। इसके अतिरिक्त 'उपन्यास', 'कहानी', 'नाटक', 'आलोचना' एवं 'जीवनी-साहित्य' लेखन की ओर भी त्रिपाठीजी अग्रसर रहे हैं। आपकी भाषा प्रवाहमयी, सरल और सुबोध है। खड़ी बोली हिंदी के विकास एवं राष्ट्रीय-भावना पूर्ण साहित्य की दृष्टि से रामनरेश त्रिपाठी के योगदान का ऐतिहासिक महत्व है।

विधवा का दर्पण

'विधवा का दर्पण' कविता 'मानसी' संग्रह से ली गई है। त्रिपाठीजी की दो मुक्तक रचनाएं हैं—'आर्य संगीतशतक' और 'मानसी'। त्रिपाठीजी का मुख्य रूप से राष्ट्रीय भावना का कवि कहा जाता है परन्तु 'मानसी', में संग्रहीत रचनाएँ जीवन की विविधताओं से पूर्ण हैं। 'विधवा का दर्पण' कविता में कवि ने भारतीय नारी का मार्मिक चित्र खींचा है। प्रारम्भ से ही विधवाओं के प्रति समाज की उदासीनता एवं घृणा की भावना प्रचलित हो चली थी। विधवा होना समाज में आज भी अभिशाप बना हुआ है। कवि ने दर्पण के माध्यम से विधवा के हृदय की व्यथा को व्यक्त करने का प्रयास किया है। कवि ने 'दर्पण' का रूपक बांधकर यह स्पष्ट किया है कि

वह दर्पण जो एक दिन प्रेयसी के लिए प्रियतम का उपमान बना हुआ था, आज प्रियतम के अभाव में अभिशाप स्वरूप है। यहाँ कवि ने वैधव्य जीवन की विसंगतियों एवं दुर्गति का हृदयद्रावक चित्रण किया है।

शब्दार्थ—**प्रणयी**=प्रेम करने वाला। **मूक**=गूँगा। **क्रन्दन**=रोना, विलाप। **मनोव्यथा**=मन की व्यथा, दुख। **म्लान**=कुम्हलाया, मुरझाया। **मनुज**=मनुष्य। **दुर्गति**=बुरी दशा। **उन्माद**=पागलपन, अत्यधिक अनुराग, एक संचारी भाव। **मुग्धा**=यौवन प्राप्त सरल स्वभाव वाली नायिका। **चिबुक**=ठुड्डी। **विमुग्ध**=घबड़ाया हुआ, भ्रम में पड़ा हुआ। **अबला**=स्त्री, नारी। **रिपु**=शत्रु, वैरी। **सत्वर**=तेज फुर्तीला।

कभी दिन मेरे भी थे, हाय !

यह रूप चित्र है। आज विधवा को प्रियतम के साथ वितायी गयी उन मधुर स्मृतियों का पुनः स्मरण हो रहा है। आज प्रियतम के अभाव में वह दैन्यतापूर्ण जीवनयापन कर रही है। इन पंक्तियों द्वारा कवि ने विधवा के कारुण्य हृदय का चित्रण किया है।

सुखों का बन्धन क्षण में तोड़....

देश की रक्षा के लिए वह अपनी प्रियतमा के सारे सुख-साधनों का परित्याग कर भीषण संग्राम में कूदकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर देता है अर्थात् देश के लिए अपने प्राणों की बलि दे देता हैं।

राष्ट्रीयता की प्रतिध्वनि त्रिपाठीजी की सभी रचनाओं में दिखाई देती है, इसीलिए कवि को मुख्य रूप से राष्ट्रीय भावना का कवि कहा जाता है। आपके तीनों खण्डकाव्यों 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' राष्ट्रीय भावना के उदाहरण हैं। 'मिलन' की इन पंक्तियों पर ध्यान दीजिए—

अस्थि चर्ममय कङ्कालों में जो कुछ बल है शेष।
संचय कर रिपु-रहित करूँगा अपना प्यारा देश ॥[1]

इसी प्रकार 'पथिक' रचना में नायक (पथिक) देश की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग कर देता है—

एक शुद्ध सच्चे प्रेमी ने आत्म-शक्ति साधन से।
मुक्त कर दिया एक देश को नरक तुल्य शासन से।[2]

---

1 मिलन, सर्ग-1, पृष्ठ 11
2 पथिक, सर्ग-5, पृष्ठ 67

'विधवा का दर्पण' कविता में भी प्रियतमा को वैधव्यपूर्ण जीवन की निराशाओं को इसीलिए सहन करना पड़ रहा है। क्योंकि उसके पति ने राष्ट्र की रक्षा के लिए स्वतंत्रता संग्राम में अपने प्राणों की बलि दे दी है। यहाँ भी राष्ट्रीयता ही प्रमुख स्वर है।

न तब से फिर आयी इस ओर........

आज वह विधवा हो गयी है। उसे अधिकार नहीं है कि वह इस दर्पण की ओर आकर अपने रूप को देख सके। ये सब साज-शृंगार जो पति की उपस्थिति में करती थी, आज उसके लिए परित्यक्त हैं।

इन पंक्तियों द्वारा कवि ने समाज में विधवा का क्या स्थान है—इसे दिखाने का प्रयास किया है।

मिटा दे मेरा यह "अस्तित्व........"

'विधवा' नारी समाज में अपने को इतना परित्यक्त समझती है कि वह अपना अस्तित्व ही समाप्त कर देना चाहती है।

अस्तित्व—'अस्तित्व' शब्द का प्रयोग बहुत ही सटीक हुआ है। अस्तित्व में ही 'जीवन' निहित है। जिस व्यक्ति अथवा वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं वह मूर्त हो अथवा अमूर्त व्यर्थ है। अस्तित्व निहित अमूर्त वस्तु का भी मूल्य है। इसके विपरीत अतिस्तत्व रहित मूर्त वस्तु का कोई मूल्य नहीं। यहाँ वैधव्य जीवन की कल्पना कवि ने इसी संदर्भ में की है।

14. जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद का जन्म विक्रमी संवत् 1946 की माघ शुक्ला दशमी को वाराणसी के गोवर्धन मोहल्ले में कान्यकुब्ज वैश्य परिवार में हुआ। पिता का नाम देवीप्रसाद और पितामह का शिवरतन साहु था। सुर्ती, तम्बाकू और सुंघनी के प्रसिद्ध व्यापारी होते हुए भी उनके पिता काव्य-प्रेमी थे और विद्वानों तथा गुणी-जनों का आदर करना जानते थे। वे धार्मिक संस्कार वाले लोग थे और शैव मत को मानते थे।

बनारस के क्वींस कॉलेज में सातवीं कक्षा तक शिक्षा पाने के बाद बालक जयशंकर प्रसाद को स्कूल की पढ़ाई छोड़नी पड़ी। घर पर ही उन्होंने हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी का अध्ययन किया। जब वह स्कूल में पढ़ते थे, तभी पिता

दिवंगत हो गए। पन्द्रह साल की उम्र थी, तब माँ चल बसीं। और उसी के कुछ समय बाद बड़े भाई का देहावसान हो गया। साथ ही शुरू हो गया पारिवारिक कलह और मुकदमेबाजी, जिसने उन्हें कर्जदार बना दिया। इन विपत्तियों के कारण उन्हें किशोरावस्था में ही दूकान और गृहस्थी, दोनों संभालनी पड़ीं।

प्रसादजी ने ब्रजभाषा में कविता करना शुरू किया। खड़ी बोली में भी लिखना शुरू किया, लेकिन खड़ी बोली में जो उस समय हवा थी वह उर्दू बहरों की और ह्रस्व स्वरों की, उसका प्रयोग पहले प्रसाद जी ने अपनी आरम्भिक रचनाओं में किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से उन्होंने इस उर्दू वाली बहर क्रिया ह्रस्व मात्राओं एवं स्वरों का भी त्याग किया। उनकी दिशा अपनी एक थी और यहीं से जहाँ उनकी दिशा अलग होती है प्रसाद युग शुरू हो जाता है। यह जरूर है कि उस समय छायावाद वातावरण में था।

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिंदी साहित्य की महान् विभूति थे। साथ ही घर-परिवार और पैतृक व्यवसाय को उन्होंने जीवनभर कुशलता के साथ निभाया। ऐसी पारस्परिक विरोधी वृत्तियों का निर्वाह वह किस तरह कर सके, उनके चिरंजीव रत्नशंकर प्रसाद के अनुसार—

"उनकी करुणामयी ज्ञान-साधना में, कर्मवृत्ति का सामान्य और तात्विक प्रवाह था। उसी प्रवाह का, अवसर और आवश्यकता के अनुसार व्यापार और साहित्य में विनियोग रहा। उन्हें कोई आयास नहीं करना पड़ता था। इसीलिए बिना समय और स्थान के बन्धन के, कहीं भी किसी भी समय व्यवसाय करते हुए भी छंद के रूप और साहित्य के सिद्धान्त स्थिर होते रहते थे।"

विक्रमी संवत् 1994 का कार्तिक शुक्ला देवोत्थान एकादशी को 48 वर्ष की अल्पायु में भारतीय साहित्य का वह आकाश दीप सदा के लिए बुझ गया। प्रसाद जैसा युग प्रवर्तक महाकवि शताब्दियों बाद जन्म लेता है। प्रसाद के व्यक्तित्व के विषय में महादेवी वर्मा लिखती हैं—

"प्रसाद के रूप में हिंदी ने शिव और वाणी दोनों का प्रसाद एक साथ ही पाया है। शिव के समान ही प्रसाद का ज्ञान, विष को अमृत बनाकर, भस्म को चांदनी का अंगराग बनाकर, जटिल बुद्धि की दुरूहता को गंगा की तरंगाकुलता देकर, आनन्द की सृष्टि करता रहा है। वह हृदय से अत्यन्त कोमल, भावुक कवि थे और बुद्धि की प्रखरता में इतिहास के अंधकार में भी उन्होंने जीवन के ऐसे तत्व खोज लिए, जो अच्छा इतिहासकार भी न खोज पाता। जो इतिहासकार के लिए भी स्पर्द्धा का विषय होता है।....... प्रसाद का आनन्दवाद उनके संघर्ष के वृत्त पर लिखा हुआ शतदल है।"

प्रसाद-साहित्य :

(क) **काव्य**—काननकुसुम प्रसाद की प्रारंम्भिक कविताओं का प्रथम संग्रह है। अन्य काव्य कृतियां में चित्राधार, प्रेम पथिक, महाराणा का महत्व, करुणामय, झरना, लहर, आँसू और कामायनी उल्लेखनीय हैं। आंसू और कामायनी प्रसाद की काव्य-कीर्ति के मुख्य-ग्रन्थ हैं। 'कामायनी' तो आधुनिक हिंदी कविता का ही नहीं वल्कि आधुनिक भारतीय साहित्य का गौरव ग्रंथ है।

(ख) **नाटक**—एक घूंट, कामना, विशाख, राजश्री, जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी, स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त प्रसाद की नाट्य कृतियाँ हैं।

(ग) **कहानी-संग्रह**—छाया, प्रतिध्वनि, आकाश दीप, आँधी और इन्द्रजाल, प्रसाद के कहानी-संग्रह हैं जिनमें कुल 69 कहानियाँ संकलित हैं।

(घ) **उपन्यास**—कंकाल, तितली और इरावती। इरावती अपूर्ण कृति है। इरावती की तरह प्रसाद इस शृंखला में बारह उपन्यास लिखना चाहते थे किन्तु असामयिक निधन के कारण इरावती को भी पूरा न कर सके।

(ङ) **आलोचनात्मक निबन्ध**—'काव्य-कला तथा अन्य-निबन्ध' इस विषय की एकमात्र कृति है।

काव्य-सौष्ठव—प्रसाद जी मुख्यत: छायावादी कवि हैं। प्रसाद जी का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवीय रहा है। उसमें आध्यात्मिक आनन्दवाद की प्रतिष्ठा है। ये जीवन की चिरन्तन मानवीय समस्याओं का समाधान खोजना चाहते हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया का सामंजस्य ही मानवता है। उसी की प्रतिष्ठा प्रसादजी ने की है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का यह समन्वय ही भारतीय संस्कृति की अनुपम देन है और कामायनी के माध्यम से यही संदेश प्रसाद जी ने सम्पूर्ण मानवता को दिया है।

डॉ० नामवर सिंह के शब्दों में—"छायावादी कविता का वैभव अपनी क्लासिक पूर्णता के साथ प्रसाद की कविताओं में मिलता है। पुनर्जागरण कालीन रचनाकार होने के कारण प्रसाद में अतीत के प्रति एक प्रकार की मोहकता और मादकता भरी आसक्ति मिलती है। प्रसाद मुख्यत: लावण्य के कवि हैं। मोती में आभा के समान शरीर की अन्तःकान्ति के चित्रण की प्रवृत्ति प्रसाद में है। प्रसाद का सौन्दर्य-बोध इस बात की पुष्टि करता है कि छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। प्रसाद के रूप चित्रण में प्राचीन नागर की सी सुसंस्कृत रसिकता मिलती है।"

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इस संदर्भ में लिखते हैं—प्रसाद जी का साहित्य सच्चे अर्थ में नवीन जीवन से सम्बद्ध है और वह आधुनिक समस्याओं का हल भी उपस्थित करता है। वह साम्प्रदायिक जीवन का उन्नायक है।

अंत में कवि पंत के शब्दों में "प्रसादजी को हम हिंदी छायावाद का जनक मान सकते हैं!" प्रसाद हिंदी साहित्य के बेजोड़ साहित्यकार हैं और उनका स्थान सदा-सर्वदा के लिए सुरक्षित है। "हिंदी भाषा जिस संस्कृति औ दर्शन की वाहकर समझी जाती है, प्रसाद उसके शीर्ष कवि हैं।"—**(वाग्वेदी—सं० नरेश मेहता)**।

1. कामायनी

कामायनी की कथा-सृष्टि के विषय में प्रसाद जी ने लिखा है—"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।"

"श्रद्धा" हृदय याकूत्या श्रद्ध्या विन्दते वसु!" (ऋग्वेद 10-151-4) इन्हीं सबके आधार पर 'कामायनी' की कथा-सृष्टि हुई है।

कामायनी में 15 सर्ग हैं—1. चिन्ता, 2. आशा, 3. श्रद्धा, 4. काम, 5. वासना, 6. लज्जा, 7. कर्म, 8. ईर्ष्या, 9. इड़ा, 10. स्वप्न, 11. संघर्ष, 12. निर्वेद, 13. दर्शन, 14. रहस्य, और 15. आनन्द।

[चिन्ता-सर्ग]

चिन्ता-सर्ग में कवि ने चिन्ता नामक मनोभाव का यथार्थ और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है—एकाकी जीवन में चिन्ता का उदय किस तरह होता है, अकेला व्यक्ति निर्जन में बैठा हुआ किस तरह चिन्ता में व्यथित रहता है आदि बातों का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है।

1. हिमगिरि……प्रलय प्रवाह।

शब्दार्थ—हिमगिरि=हिमालय पर्वत। **उत्तुंग**=उन्नत। **छाँह**=छाया। **भीगे नयनों से**=अश्रुपूर्ण नेत्रों से। **प्रलय-प्रवाह**=सम्पूर्ण देव-सृष्टि को विलीन करने वाला जल-प्रवाह।

2. नीचे जल·······जड़ या चेतन ।

शब्दार्थ—**तरल**=बहने वाला । **सघन**=ठोस । **तत्व**=मूल पदार्थ ।

3. दूर-दूर·······फिरता पवमान ।

शब्दार्थ—**विस्तृत**=विस्तार के साथ फैला हुआ । **स्तब्ध**=नीरव, शान्त । **शिला चरण**=पर्वत श्रेणी का निम्न प्रदेश । **पवमान**=वायु ।

4. तरुण तपस्वी·······सकरुण अवसान ।

शब्दार्थ—**तरुण**=युवा । **श्मशान-साधन**=इच्छित सिद्धि की प्राप्ति के हेतु श्मशान-भूमि में बैठकर भूत, प्रेत, काली, चामुण्डा आदि को प्रसन्न करने के लिए तांत्रिक पद्धति से की जाने वाली साधना । **प्रलय-सिन्धु**=प्रलय करने वाले जल-प्लावन द्वारा बना हुआ समुद्र । **सकरुण**=करुण-सहित । **अवसान**=विराम, समाप्ति, शान्त होना ।

5. उसी तपस्वी·······रहे अड़े ।

शब्दार्थ—**देवदारु**=हिमालय पर्वत पर पैदा होने वाला एक प्रसिद्ध वृक्ष । **ठिठुरे**=संकुचित हो गये । **रहे अड़े**=बिना तनिक भी हिले-डुले खड़े रहे ।

6. अवयव की·······संचार ।

शब्दार्थ—**अवयव**=शरीर के अंग । **ऊर्जस्वित**=उमड़ा हुआ । **स्फीत**= समृद्ध, घनी, मोटी । **शिराएँ**=रक्तवाहिनी नाड़ियाँ । **संचार**=गमन ।

7. चिन्ता-कातर·······मधुमय स्रोत ।

शब्दार्थ—**कातर**=व्याकुल । **वदन**=मुख । **पौरुष**=पुरुषार्थ । **उपेक्षामय**= तिरस्कृत । **मधुमय स्रोत**=मधुर भावों का प्रवाह ।

8. बँधी महावट·······लगी मयी ।

शब्दार्थ—**महावट**=विशाल वट-वृक्ष । **जल-प्लावन**=पानी की बाढ़ ।

9. निकल रही·······पहचानी सी ।

शब्दार्थ—**मर्म वेदना**=हृदय की गहन पीड़ा । **करुणा-विकल कहानी**=ऐसी कहानी, जिसमें करुणा की अधिकता होती है और जिसकी करुणापूर्ण घटनाओं को सुनकर सुनने वाले के हृदय में भी व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है ।

10. ओ चिन्ता·······मतवाली ।

शब्दार्थ—**व्याली**=सर्पिणी । **मतवाली**=उन्मत्त ।

11. हे अभा·······चल रेखा ।

शब्दार्थ—**चपल बालिके**=चंचल पुत्री । **खल-लेखा**=कुलेख या बुरे अंक । **हरी-भरी सी**=किंचित् आशापूर्ण । **जल-माया**=जल का मिथ्या रूप या मृग-मरीचिका का जल । **चल-रेखा**=चंचल-लहर ।

12. इस ग्रह-कक्षा·······लहरी ।

शब्दार्थ—**ग्रह कक्षा**=ग्रहों के भ्रमण का मार्ग । **तरल**=द्रव । **गरल**=विष **लघु लहरी**=छोटी तरंग ।

13. अरी व्याधि·······सुन्दर पाप ।

शब्दार्थ—**व्याधि**=शारीरिक पीड़ा । **सूत्रधारिणी**=सूत्र धारण करने वाली अथवा आरम्भ करने वाली । **आधि**=मानसिक पीड़ा । **अभिशाप**=अनिष्ट करने वाली । **धूमकेतु**=पुच्छलतारा । **सुन्दर पाप**=ऐसा अमांगलिक कर्म जो केवल देखने में ही सुन्दर हो ।

14. मनन करावेगी........हे नींव ।

शब्दार्थ—**निश्चिन्त जातिमनन**=वैभव सम्पन्न देव-जाति ।

15. बुद्धि मनीषा······· तेरा काम ।

शब्दार्थ—**मनीषा**=इच्छा ।

16. विस्मृति आ·······मेरा भर दे ।

शब्दार्थ—**विस्मृति**=विस्मरण, भूल । **अवसाद**=उदासीनता, शिथिलता । **शून्य**=रिक्त स्थान या हृदय ।

17. चिन्ता करता·······दुःख की ।

शब्दार्थ—**अतीत**=बीता समय । **अनन्त**=हृदय (लक्षणा) ।

18. आह सर्ग·······मौन हुए ।

शब्दार्थ—**सर्ग**=सृष्टि । **अग्रदूत**=पहले आने वाले या पहले उत्पन्न होने वाले । **भक्षक**=नाश करने वाला ।

19. मणि-द्वीपों·······बन गया हविष्य ।

शब्दार्थ—मणि-दीप=मणियों के बने हुए दीपक । **महामेघ**=बड़ा यज्ञ । **हविष्य**=यज्ञ में आहुति के रूप डाली गई सामग्री ।

20. अरे अमरता·······दीन-विषाद ।

शब्दार्थ—अमरता के चमकीले पुतले=अमरता की झूठी भावना से भरे हुए वैभव सम्पन्न देवतागण । **जयनाद**=विजय का स्वर । **विषाद**=उदासी, शोक ।

21. ये सब डूबे·······नाद अपार ।

शब्दार्थ—विभव=ऐश्वर्य, वैभव । **पारावार**= सीमा हीन समुद्र ।

22. वह उन्मत्त·······कलनार्थ ।

शब्दार्थ—संयमहीन भोग=विलास की भावना । **छलना**=धोखा, प्रवंचना । **विभावरी**=रजनी । **कलना**=आभा या चमक ।

23. चलते थे·······सुख विश्वास ।

शब्दार्थ—सुरभित अंचल=सुगन्धित वस्त्र, किन्तु लक्षणा से उसका अर्थ है सुवासित शरीर ।

मधुमय निश्वास=आनन्द एवं उल्लास से भरी हुई साँसें । **मुखरित**= ध्वनित ।

24. सब कुछ·······सुख संचार ।

शब्दार्थ—स्वायत्त=अपने अधिकार में । **उद्वेलित**=उछलती हुई । **समृद्धि**= उन्नति, अभ्युदय । **संचार**=गमन, उमड़ना ।

25. स्वयं देव·······की वृष्टि ।

शब्दार्थ—विश्रृंखल=नष्ट-भ्रष्ट । **आपदाओं की वृद्धि**=आपत्तियों की वर्षा ।

26. गया सभी·······विहार ।

शब्दार्थ—स्मित=हँसी । **मधुप**=भँवर । **विहार**=भ्रमण करना ।

27. भरी वासना·······उठा कराह ।

शब्दार्थ—मदमत्त प्रवाह=उन्मत्तता से भरा हुआ प्रबल वेग । **प्रलय-जलधि**= =सम्पूर्ण पदार्थों को नष्ट करने वाला सीमाहीन समुद्र ।

28. चिरकिशोर······ अनन्त बसन्त ।

शब्दार्थ—तिरोहित=छिपना, लुप्त होना। **अनन्त बसन्त**=चिर वसन्त, चिर यौवन।

29. कुसुमित कुंजों·······अब बीन ।

शब्दार्थ—कुसुमित कुंजें=ऐसी कुंजें, जहाँ नाना भाँति के पुष्प खिले हुए हों। **पुलकित**=पुलक या कम्प से परिपूर्ण। **मूछित तानें**=संगीत में सातों स्वरों का क्रम से आरोह-अवरोह मूर्च्छना कहलाता है और इसी मूर्च्छना से भरी हुई तानें मूछित तानें कहलाती हैं।

30. अब न······अब माप ।

शब्दार्थ—कपोल=गाल। **भुजमूल**=बगल, काँख, कक्ष। **शिथिल बसन**= अंगों से खिसके हुए वस्त्र। माप=परिमाण।

31. कंकण क्वणित·······होता अभिसार ।

शब्दार्थ—कंकण=कंगन। **नूपुर**=घुँघरू। **मुखरित**=शब्दायमान। **अभिसार**=मधुर मिलन या मधुर संयोग।

32. सौरभ से·······रहे समीर ।

शब्दार्थ—दिगन्त=दिशाओं के छोर। **अन्तरिक्ष**=पृथ्वी और स्वर्ग के बीच का सम्पूर्ण स्थान।

आलोक-अधीर—प्रकाश से बेचैन अथवा अत्यन्त प्रकाश से परिपूर्ण। **अचेतन गति**—उन्मत्त चाल।

33. सुरा सुरभिमय······पीतराग ।

शब्दार्थ—सुरा सुरभिमय=मदिरा की गंध से सुवासित। **अरुण**=लाल अथवा लालिमा-युक्त। **अनुराग**=प्रेम। **कल**=सुन्दर और चिकने। **बिछलता**= फिसलता। **पीत**=पीला। **पराग**=पुष्प-रज।

34. विकल वासना······गले गये ।

शब्दार्थ—विकल वासना=बेचैन बना देने वाली विलास-भावना। **मुरझाये**=शक्तिहीन हो गये।

35. अरी उपेक्षा........दर्शन की प्यास।

शब्दार्थ—उपेक्षा भरी अमरता=तिरस्कार के योग्य अमरता की भावना। **अतृप्ति**=निरन्तर भोगों में लीन रहकर भी तृप्त न होना। **निर्बाध-विलास**= निरन्तर विघ्न और बाधाओं से रहित भोगों में लीन रहना। **द्विधा**=दुविधा, चिन्ता। **भूख भरी**=तीव्र उत्कण्ठा से युक्त। **दर्शन की प्यास**=देखने की बलवती इच्छा।

36. बिछुड़े तेरे........सता रही।

शब्दार्थ=स्पर्श=प्रेमियों का परस्पर अंगों को छूना। **कातरता**=अधीनता, बेचैनी।

37. रत्न सौध........मीड़ अधीर।

शब्दार्थ—रत्नसौध=रत्नों से जड़े हुए ऊँचे-ऊँचे महल। **वातायन**=झरोखा, मकान की छत के नीचे का छिद्र। **मधु**=शराब। **मधुमदिर समीर**=जिस तरह शराब उन्मत्त बना देती है, उसी तरह अपनी शीतलता, मन्दता और सुगन्धि से उन्मत्त बना देने वाली हवा। **तिमिङ्गल**=समुद्र में रहने वाले बड़े-बड़े आकार के मत्स्य।

38. देव-कामिनी........भीषण वृष्टि।

शब्दार्थ—देव-कामिनी=देवांगनाएँ। **नीलनलिन**=नील कमल। **प्रलय-कारिणी**=सर्वनाश करने वाली। **सृष्टि**=उत्पन्न होना।

39. देव यजन........की माला।

शब्दार्थ—देव यजन=दिव्य शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए किये गये यज्ञ, अनुष्ठान आदि। **पूर्णाहुति**=यज्ञ की समाप्ति पर दी गई समस्त सामग्री की अंतिम आहुति। **जलनिधि**=प्रलय का सागर।

40. उनको देख........हलाहल नीर।

शब्दार्थ—व्यस्त=फैलकर, तितर-बितर होकर। **प्रालेय**=प्रलय सम्बन्धी या सर्वस्व नाश करने वाला।

41. हाहाकार……था क्रूर।

शब्दार्थ—**क्रंदनमय**=रुदन या विलाप से युक्त। **कुलिश**=वज्र या बिजली। **क्रूर**=डरावनी, परपीड़क।

42. पंचभूत……खोया प्रात।

शब्दार्थ—**पंचभूत**=पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश नामक पाँच तत्व। **भैरव**=भयंकर। **शम्पा**=विद्युत, बिजली। **निपात**=गिरना। **उल्का**=मशाल।

43. बार-बार……हेतु अशेष।

शब्दार्थ—**अशेष**=सम्पूर्ण।

44 से 48 उधर गरजतीं……बनी वही।

शब्दार्थ—**कुटिल काल**=विकराल मृत्यु।

तरल तिमिर=वर्षा के कारण तरलीभूत अंधकार। **करका**=ओले। **ताण्डव नृत्य**=विनाशकारी कार्य। **डाँड़ें**=नाव खेने की बल्ली। **कातरता**=विवशता। **नियति**=वह नियामिका शक्ति, जो सम्पूर्ण संसार का नियमन करती है तथा जो सदैव प्राणियों के कल्याण में लगी रहती है।

49 से 53 लहरें व्योम……पा सकता।

शब्दार्थ—**गरल-जलद**=विष-तुल्य विनाशकारी जल बरसाने वाला बादल। **संसृति**=संसार। **जलधि विश्व**=जलमय जगत्। **विराट वाडव ज्वाला**=विशाल समुद्र के अन्दर रहने वाली आग की तीव्र लपटें। **घनीभूत**=ठोस होना, सघन होना अथवा किसी जगह पर हवा का भर जाना। **विराट आलोड़न**=विशाल समुद्र-मंथन। **ज्योतिरिंगण**=जुगनू या खद्योत। **प्रहर**=एक दिन का आठवाँ भाग। 24 घण्टे में 8 प्रहर होते हैं। अतः एक प्रहर तीन घण्टे का होता है। **उपकरण**=साधन।

54 से 58 काला शासन……हलचल।

शब्दार्थ—**काला शासन-चक्र**=दमन करने वाली बुरी राज्य-प्रणाली, किन्तु लक्षणा से यहाँ इसका अर्थ-विनाशकारी कार्य। **महामत्स्य**=बड़ी मछली। **दीन पोत**=दयनीय अवस्था वाली नाव। **देव सृष्टि का ध्वंस**=देवजाति का विनाश। **सर्ग**=सृष्टि, अध्याय। **मरु-मरीचिका**=मृग-जल, मृग-तृष्णा या मिथ्या जलाभास। **अलस विषाद**=आलस्यपूर्ण उदासी। **अगतिमय**=प्रगतिहीन। **चिरनिद्रा**=एक लम्बी

अवधि तक सुलाने वाली नींद । **अंक**=गोद । **हिमानी**=हिम समूह या बर्फ का ढेर। **अनन्त**=अखिल ब्रह्माण्ड । **काल जलधि**=युग रूपी समुद्र ।

59 से 63 महानृत्य........भृत्य ।

शब्दार्थ—महानृत्य=संहारकारी तांडव नृत्य । **सम**=संगीत में वह स्थान जहाँ लय की समाप्ति और ताल का आरम्भ होता है । **विभूति**=ऐश्वर्य, धूल या राख । **चिरंतन**=सनातन, सर्वकालीन । **सौदामिनी**=बिजली । **संधि**=दरार । **निर्जनता की उखड़ी साँस**=नीरवता समाप्त हो गई । **अनस्वित्व**=विध्वंस । **विद्युत्कण**=अणु-परमाणु आदि । **भृत्य**=दास ।

2. आँसू[1]

आँसू प्रेम-वेदना का सरस काव्य है जिसमें कवि की आत्मानुभूति ही एक विरह की वेदना एवं प्रेम की कसक को लेकर अभिव्यक्ति हुई है । इसमें कवि ने विरही की उस हृदय-द्रावक मनोदशा का चित्रण किया है जो अतीत के उन संयोग सुख मिलन की मादकता के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है । प्रसाद का विरही हृदय सदैव औदात्य प्रेम-वेदना की गरिमा एवं महिमा के साथ अभिव्यक्त हुआ है । इसमें कवि ने प्रेम-वेदना की इतनी सूक्ष्मतम गहराइयों की पकड़ की है जिसे देखकर यह कहना पड़ता है मानो कवि ने 'आपबीती' जैसी वेदना का चित्रण किया हो । श्री इलाचन्द जोशी के शब्दों में—प्रसादजी की आँसुओं की पंक्तियों ने हिंदी-जगत् को प्रथम बार उस वेदना वाद की मादकता से विभोर किया, जिससे बाद में सारा छायावादी युग मतवाला हो उठा था ।

'आँसू' पूर्णरूपेण मानवीय काव्य है । कुछ आलोचक इसमें रहस्यात्मकता की खोज अवश्य करते हैं—लेकिन यह दार्शनिक काव्य नहीं है । इसमें भावनाओं का चरम सौन्दर्य मार्मिकता के साथ चित्रित है । यही छायावादी काव्य की विशिष्टता जिसे प्रसाद जी ने अपने कवि रूप में समाहित कर लिया था । भावों की गहन अनुभूति के साथ ही भाषा में नाद-सौन्दर्य, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, एवं चित्रात्मकता दिखाई देती है । यह छायावाद की विशिष्टता है । विनयमोहन शर्मा का यह कथन (आँसू के संदर्भ में) कि 'आँसू का प्रकाशन न होता तो छायावाद की भूमि

---

1. **कवि प्रसाद, आँसू तथा अन्य कृतियाँ**—विनयमोहन शर्मा, पृष्ठ, 78

ही अनिर्दिष्ट रह जाती है। यह छायावादा-युग की प्रतिनिधि रचना है।' वस्तुतः हिंदी गीति काव्य-परम्परा में आँसू को सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है।

शब्दार्थ=(छन्द : 1 से 5 तक)

नक्षत्र-लोक=तारा मण्डल। **नील निलय**=नीला आकाश। **स्फुलिंग**=चिनगारियाँ। **ज्वालामयी**=विरह की आग से भरी हुई। **जलन**=पीड़ा का दाह। **महामिलन**=संयोग के सुखद क्षण। **ज्वाला**=विरहाग्नि। **दृग**=आँसू। **अनिल**=वायु। **वाडवज्वाला**=प्रेम की तड़पन। **प्रणय सिंधु**=दाम्पत्य प्रेम रूपी समुद्र। **विकल**=बेचैन। **जल**=कान्ति, झलक। **नक्षत्र-मालिका**=तारों का समूह। **लूटी**=कान्तिहीन, लुटी हुई।

बस गयी एक……मिलन के।

स्मृतियों की बस्ती बसने से तात्पर्य है। विरही की स्मृतियों की बहुलता एवं अधिकता। यहाँ कवि वियोगी व्यक्ति के हृदय में उठने वाली उन अनेकानेक स्मृतियों का वर्णन करता है जो रह-रहकर संयोग के क्षणों की याद दिलाया करती हैं और तारों की भाँति हृदय में छा जाती है। यह व्यंजना छायावादी चित्रण की एक प्रमुख विशेषता है।

शीतल ज्वाला जलती है…… अनिल का।

विरह की व्यथा ही ज्वाला है। उसे शीतल कहने से कवि का तात्पर्य यह है कि इस आग की उष्णता अन्य किसी को अनुभव नहीं होती, केवल विरही ही इसका अनुभव किया करते हैं। उसमें प्रेमपात्र की मधुर स्मृति भी सम्मिलित है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में एक स्थान पर 'शीतल दाह' का वर्णन किया है :

'जीवन-जीवन की पुकार है,
खेल रहा है शीतल दाह।' —(आशा सर्ग, पृ० 27)

इसमें विरोधाभास अलंकार है।

वाडवज्वाला सोती थीं……जल में।

जिस प्रकार समुद्र के गर्भ में वडवाग्नि जलती रहती है अर्थात् सदैव विद्यमान रहती है, उसी तरह प्रत्येक दाम्पत्य-प्रेम की तड़पन भी सदैव विद्यमान रहती है। कवि का यह बिम्ब-विधान छायावादी शैली के अनुरूप है।

बुलबुले सिंधु के.........लूटी ।

यहाँ कवि ने विरही के जीवन में होने वाले परिवर्तनों की ओर संकेत किया है । सिंधु के बुलबुले यहाँ क्षणिक मिलन के द्योतक हैं । नक्षत्र-मालिका संयोग-सुख की द्योतक है । 'नभयुक्त कुंतला धरणी' में पृथ्वी की कल्पना मोतियों की माँग से परिपूर्ण रमणी से की है, जैसे धरती (रमणी) का शृंगार छिन गया हो ।

यहाँ कवि ने विरही जीवन की शून्यता दिखाने के लिए लाक्षणिक तथा प्रतीकात्मक पदावली का सुन्दर प्रयोग किया है ।

6 से 10 तक :

विकल=बेचैन । **वेदना**=पीड़ा । **चैतन्य**=चेतना । **अभिलाषाओं**=इच्छाओं ।

अभिलाषाओं की करवट में 'अभिलाषा' को मूर्त रूप दिया गया है । ऐसे ही कभी 'व्यथा' नहीं जगती, अपितु व्यथा से पीड़ित व्यक्ति रात-रात भर जगा करता है । उसका मानवीकरण किया गया है ।

11 से 15 तक :

जो घनीभूत पीड़ा थी.........आई ।

जब वेदना की अनुभूति पराकाष्ठा को पहुँच जाती है, घनीभूत (सघन) हो जाती है । कवि कहता है कि मेरे मस्तिष्क में पीड़ाएँ पूर्ण रूप से छाई हुई थीं । वही स्मृति मेरे वियोग के क्षणों में आँसू बनकर बरसने लगी । यह एक मनोवैज्ञानिक चित्रण है ।

तुम सुमन नोचते.........अनजानी ।

प्रिय के द्वारा विरही के प्रति किए गए उपेक्षापूर्ण व्यवहार का चित्र अंकित किया गया है । विरही कहता है कि तुम मेरे प्रति सहानुभूति एवं सम्वेदना प्रकट न करके मेरे सुन्दर एवं सुकुमार मन को कोमल फूल की तरह नोचते हुए एक अनजान व्यक्ति के समान व्यवहार करते हो ।

मोहित, बेसुध और बलिहारी=तीनों शब्द विरही के प्रेमाधिक्य को प्रकट कर रहे हैं ।

झंझा झकोर गर्जन.........डाला ।

झंझा झकोर=तीव्र वायु के झोंके, लक्षणा से तीव्र वायु । **गर्जन**=बादलों का गर्जन (वेदना की टीस) के झोंके । **बिजली**=बादलों में चमकने वाली विद्युत

(प्रिय की स्मृति की चमक) । **नीरद माला**=उदासी का चिन्ह । **शून्यहृदय**=आकाश का प्रतीक यहाँ प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग किया है ।

16 से 20 तक :

मधु राका=बसंत ऋतु की पूर्णिमा । **राका**=पूर्णिमा की रात । **जलनिधि**=समुद्र । छवि=प्रिय का रूप सौन्दर्य । **प्रतिभा**=ईश्वर प्रदत्त कवित्व शक्ति । **झाड़ खड़े थे**=नीरसता छाई हुई थी । **क्यारी**=जीवन (लक्षणा से) । **जीवन की गोधूली**=घोर निराशा ।

21 से 25 तक :

रूप-सीमा=सौंदर्य की सीमा तुम्ही हो । **लावण्य-शैल**=सौंदर्य का पर्वत । **काली जंजीरें**=काली काली घुंघराली लटें । **मणि वाले फणियों**=काले घने केश ।

माना कि रूप सीमा है............गगन में ।

विरही प्रेमी से कह रहा है कि यह मानता हूँ कि ससीम होने के कारण तुम्हारे रूप की सीमा है, पराकाष्ठा है । पर मैंने तुम्हें अपनाते समय अपने मन में कोई सीमा नहीं बाँधी थी ।

लावण्य शैल राई सा.........प्यारी ।

पर्वत गुरुता का प्रतीक है, तो राई लघुता का । कवि का भाव है कि प्रेम-पात्र के असीम सौंदर्य के सामने बाकी सारा लावण्य—जो शैल के समान महान दिखाई पड़े—राई के समान नगण्य हो जाता है ।

बाँधा था विधु......हीरों से ।

यहाँ विधु, काली जंजीर, फणि, हीरे आदि उपमान क्रमशः मुख, लटें, केश, मोती आदि उपमेय के स्थान पर आये हैं ।

26 से 30 तक :

नीलम की प्याली=आँखें (लक्षणा) । **विद्रुम सीपी सम्पुट**=लाल-लाल होठ **मोती के दाने**=मोती के समान दाँत । **शुक**=तोता, (नासिका) । **चंचल**=बिजली ।

विद्रुम सीपी सम्पुट……ऐसे ?

यहाँ कवि ने परम्परा से प्रसिद्ध उपामानों को लेकर ही होठ, दाँत एवं नासिका के सौंदर्य का निरूपण किया है।

जायसी ने पद्मावती के नख-शिख का वर्णन करते हुए होठ को विद्रुम कहा है—

'हीरा लेह सो विद्रुम धारा'—पद्मावत,—नख-शिख-खण्ड

पुरइन के दो किसलय दल=कमल के पत्ते। यह प्रसिद्ध है कि कमल के पत्ते पर पानी नहीं ठहरता है। इसी को आधार बनाकर प्रसाद ने बड़ी ही सजीव कल्पना की है। कवि का भाव है कि मेरी विरह वेदना प्रेमपात्र के कानों में पड़ती है तो वह मेरी व्यथा की उपेक्षा करता है।

31 से 35 तक :

छलना=धोखा, प्रवंचना। **घना**=अधिक। **माया की छाया**=प्रिय के रूप का मिथ्या आभास। **जड़ता**=मिथ्या-भावना। **जड़ता की माया**=अज्ञानता का प्रभाव। **संज्ञा**=चेतना।

मदिरा बनी नयन में……जीवन में।

प्रिय के अनुपम रूप-सौंदर्य ने प्रेमी को इतना प्रभावित किया था कि उसकी आँखों में प्रिय के रूप सौंदर्य का नशा उसी प्रकार छा गया जैसे कोई मदिरापन करने वाला व्यक्ति उन्मत्त हो उठता है।

36 से 42 तक :

नाविक=मल्लाह (प्रेम)। **सूनेतट**=वियोग रूपी सागर के सूने किनारे पर। **लहरों में**=वियोग रूपी सागर में उठने वाली पीड़ा, वेदना। **प्रत्यावर्तन**=लौटना—अपनी पूर्व स्थिति पर लौटने का कोई मार्ग नहीं रह गया है। **हृदय-मरुस्थल**=हृदय नीरस तथा उजड़ा हुआ।

चमकूँगा धूल कणों में……टकराऊँगा।

कवि का यह भाव है कि प्रिय से मिलने के लिए वह अन्तिम साँसों तक

प्रयास करता रहेगा । यदि तुम किसी नक्षत्र में होंगे तो वहाँ तक पहुँचने का प्रयास करूँगा ।

3. ले चल वहाँ

'लहर में संकलित प्रस्तुत गीत जागरण' प्रथम अंक, फरवरी 1932 में प्रकाशित हो चुका था । प्रस्तुत गीत में कवि ने संसार की संघर्षमयी स्थिति से पलायन (भाग जाने) की कामना की है । इन पंक्तियों से ऐसा आभास होता है कि सांसारिक प्रेम में उसने दुःख ही दुःख उठाया है । उस वेदना से व्याकुल होकर वह इस लोक से परे जाने की कामना करता है । प्रस्तुत गीत उन्होंने पुरी के समुद्रतट पर बैठकर लिखा था ।

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश । **निश्छल प्रेम**=छल-रहित प्रेम जिसमें वासना की गन्ध न हो । **कोलाहल की अवनी**=दुःख, अशान्ति एवं संघर्ष से पूर्ण पृथ्वी अर्थात् मानव-जीवन अनेकानेक दुश्चिन्ताओं से पूर्ण है। अतः इन दुश्चिन्ताओं से मुक्त शान्तिपूर्ण लोक में जाने की इच्छा व्यक्त की है। **जिस गंभीर**=प्रकृति के इस विराट रूप को देखकर इसके सृजनकर्ता विराट पुरुष की स्मृति हो जाती है। **विभुता**=प्रकृति का विराट स्वरूप, ऐश्वर्य । **विभु**=विराट् पुरुष (ईश्वर)। **अमर जागरण उषा नयन से**=जहाँ चिदानंद की प्राप्ति होती है तथा अज्ञान की मोहनिद्रा का अन्त होता हो ।

ज्योति घनी=अमरत्व (शाश्वत् आनन्द) का प्रकाश हो ।

'झरना' (1918) के 'बादल हर' (1933) ही प्रसाद की स्फुट कविताओं का संग्रह है । इसमें छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी और ऐतिहासिक कई प्रकार की कविताएँ हैं जिनमें मन की बाह्य और भीतरी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों का निरूपण हुआ है । 'लहर' में कवि की गीत-कला का उत्कृष्ट रूप दिखाई देता है । इन गीतों में प्रणय की तीव्र अनुभूति, व्यक्तिगत अतीत की स्मृतियाँ एवं ऐतिहासिक प्रसंगों की शक्तिशाली और मार्मिक अवतारणा हुई है ।

भावार्थ—कवि अपने अतीत-रूपी नाविक से कहता है कि मुझे उस लोक में ले चल जहाँ संघर्ष अशांति और दुःख से दूर हो सकूँ अर्थात् लौकिक संघर्ष और अशांति से कवि व्याकुल हो उठा है। वह ऐसे एकान्त स्थल पर जाना चाहता है जहाँ तारों भरी रात में शांतचित्त होकर थका हुआ जीवन विश्राम सुख का अनुभव करे। संपूर्ण गीत में कवि का भाव जीवन के भौतिक धरातल से उठकर आदर्श लोक का निर्माण करना है। नाविक यहाँ दिव्य चेतना का भी प्रतीक है जिसमें वेदान्त के तत्व का भाव निहित है।

4. मधुमय देश

शब्दार्थ—अरुण=पूर्व में स्थित जहाँ ज्ञान का अरुण आलोक सबसे पहले फैलता है। **बरसाती आँखों**=करुणामयी संस्कृति का संकेत।

सरस तामरस……कुमकुम तार=मंगलमय कुमकुम के समान सूर्य की अरुणिमा कमल के पराग-कोष पर नाचती हुई तरुशिखाओं पर और जीवन रूपी हरियाली पर छिटकी हुई है।

हेमकुम्भ……रजनी भर तारा=जब सर्वत्र अंधकार छाया (अज्ञानता का अंधकार) रहता तब उषा रूपी सुन्दरी सूर्य रूपी स्वर्ण पात्र को भर-भरकर सुनहरी किरणों के रूप में सुख की वर्षा करती है। यहाँ कवि का आशय भारतीय संस्कृति एवं गरिमा से है।

अरुण यह……देश हमारा।

यह गीत चन्द्रगुप्त नाटक के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में ही कार्नेलिया (नाटक की स्त्री पात्र) द्वारा गाया गया है जिसमें देशप्रेम और राष्ट्रीय भावना की प्रधानता है, साथ ही भारतवर्ष के प्राकृतिक, सांस्कृतिक तथा भावात्मक, सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया गया है!

ग्रीस कुमारी कार्नेलिया (यवन-सेनापति-सिल्यूकस की पुत्री) बाद में चन्द्रगुप्त की पत्नी। भारत के प्रति उसे सहज अनुराग है, वह भारत की प्राकृतिक छटा पर मुग्ध है। इस देश का सुखमय जीवन कितना आकर्षक है। यहाँ के खग, मृग, वन, पर्वत, संध्या सब मनोहर हैं। इस प्रकार वह भारत की संस्कृति एवं सभ्यता के प्राकृतिक वैभव का वर्णन करती हुई प्रस्तुत गीत का गान करती है।

5. श्रद्धा का गीत

यह गीत 'कामायनी' के निर्वेद सर्ग से संकलित है। डॉ० नामवर सिंह के अनुसार इस आस्थामूलक गीत के माध्यम से श्रद्धा घायल मनु को सांत्वना देती है। श्रद्धा मन की रागात्मिका वृत्ति की प्रतीक है जिसकी छाया में जीवन के कोलाहल से थका हुआ मनु (मनुष्य) नई स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त करता है। गीत के हर पद में दो विरोधी बिम्बों को साथ-साथ रखा गया है। एक ओर बौद्धिक जीवन के कोलाहल से उत्पन्न दुःख, निराशा और प्रति को सूचित करने वाले बिम्ब हैं और दूसरी ओर आशा, उल्लास और जीवन में आस्था जगाने वाले।

6. सुवासिनी का गीत

तुम कनक·······हो क्यों ?

यह गीत प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक 'चन्द्रगुप्त' से संकलित है। प्रस्तुत प्रसंग चन्द्रगुप्त नाटक के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य मगध सम्राट नन्द के विलास कानन से सम्बद्ध है। विलासी युवक-युवतियों का दल विहार कर रहा है। अनुचर लोग प्रत्येक कुंज में मदिरा कलश और चषक पहुँचाते हैं। उस समय राक्षस (मगध का अमात्य) और सुवासिनी का प्रवेश होता है। सुवासिनी अभिनयशाला की रानी बनाई जाती है। उसी अवसर पर यह प्रस्तुत गीत का गान करती है।

सुवासिनी मगध सम्राट नन्द के मंत्री शकटार की रूपवती कन्या है जो शकटार के अंधकूप में डाले जाने के बाद सम्राट नन्द की राजनर्तकी बनती है। वह सर्वप्रथम नन्द के विलास-कानन की सुन्दरियों की रानी के रूप में आती है।

यौवन के घर·····हँसी।

हृदय अब लाज की सीमा में नहीं रह सकता। वासना का बाँध भी टूट जाता है अर्थात् वासना की अतिशयता में सीमा का ज्ञान नहीं रहता है। यौवन के घन रसकण बरस रहे हैं और लाज भरा सौन्दर्य मौन है। आँखों में यौवन का नशा है। मौन रहने से क्या सौन्दर्य का वैभव लुक-छिप सकेगा ?

भाव प्रवणता की दृष्टि से यह गीत उत्कृष्ट है। इसमें यौवन की मादकता अथवा प्रणय की प्रखरता होते हुए भी गीत की शृंगारी भावना संयत एवं प्रवाहपूर्ण है।

7. पेशोला की प्रतिध्वनि

'पेशोला की प्रतिध्वनि' कविता प्रसाद के गीत संग्रह **'लहर'** से ली गई है ! यह एक अतुकान्त आख्यानक कविता है जिसमें उदयपुर के राणा प्रप्राप की गौरव गाथा और राजा की अपनी वर्तमान संतति की दुर्दशा पर चीत्कार सुन पड़ता है। पेशोला उदयपुर की निकटवर्ती झील का नाम है जो महाराणा लाखा के समय में बनी थी। इसके पूर्वी किनारे की पहाड़ी पर उदयपुर बसा है। भीतर टापुओं में राजभवन बने हैं।

प्रस्तुत कविता राजपूत काल की है जिसमें राणाप्रताप की प्रतिध्वनि मेवाड़ के वीरों को उद्बोधित कर रही है। वह मेवाड़ जहाँ के राजपूत वीरों ने देश की (मेवाड़) रक्षा के लिए प्राणों की आहुतियाँ चढ़ा दी थीं, लेकिन आज इसी भूमि में वीरता नहीं रह गई। वह त्याग नहीं रह गया जो उन वीरों में था।

"वही मेवाड़ ! किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ ?"

कवि के कहने का भात्र यह है कि आज देश की रक्षा के लिए वे आहुतियाँ नहीं रह गयीं जो अतीत में थीं। कवि बार-बार चुनौती देता हुआ पूछ रहा है कि

"कौन लेगा भार यह ? कौन विचलेगा नहीं ?"

यह कविता राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। देश आज संकट की स्थिति में है, इसे भी मेवाड़ की तरह किसी वीर राजपूत की आवश्यकता है। लेकिन इसका प्रतिउत्तर कौन दे ? क्योंकि **'गौरव की काया पड़ी माया है'** अर्थात् राणा प्रताप जैसा वीरत्व आज दुर्लभ है।[1]

विशेष—इस कविता में कवि ने अतीत की गौरव-गाथा द्वारा वर्तमान पीढ़ी को रष्ट्र की रक्षा के प्रति जागरूक किया है। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत यह गीत छायावादी युग के लिए प्रगतिवाद की अच्छी भूमिका तैयार करता है।

---

1 प्रसाद-साहित्य कोश, डॉ० हरदेव बाहरी, पृ० 229

15. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

"निराला का पैतृक और पारिवारिक नाम सूर्यकुमार त्रिपाठी था। इसी नाम से उन्हें तब तक पुकारा जाता था, जब तक स्वयं उन्होंने सन् 1917-18 के आस-पास उसे बदलकर सूर्यकांत त्रिपाठी नहीं रखा। इनका जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले की महिषादल रियासत में माघ शुक्ल एकादशी संवत् 1953; जनवरी सन् 1897 को हुआ। कुछ वर्षों के अनंतर जब कवि की मानसिक स्थिति कुछ डाँवाडोल रहने लगी, तब उन्होंने ही यह तिथि बदलकर माघ शुक्ल बसंत पंचमी को अपनी जन्मतिथि बताया। प्राप्त प्रमाणों में डॉ० श्यामसुन्दरदास की पुस्तक 'हिंदी के निर्माता' की तिथि तथ्यपूर्ण कही जा सकती है।"

—(**कवि निराला**—आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी)

निराला कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता पं० रामसहाय उन्नाव जिले में गढ़कोला गाँव के निवासी थे और बंगाल में मेदिनीपुर जिले के महिषादल राज्य में नौकरी करते थे। निराला तीन वर्ष के थे कि इनकी माँ का देहावसान हो गया। पिता राजा के कृपापात्र थे, अतः इनके पालन-पोषण के लिए एक धाय रख दी गई। बड़े होने पर महिषादल राज्य के हाईस्कूल में ये प्रविष्ट हुए, जहाँ उन्होंने नवीं कक्षा तक शिक्षा पायी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बंगाली में हुई, यद्यपि घर पर ये बैंसवाड़ी ही बोलते थे। सन् 1911 में जब ये नवीं कक्षा में थे, इनका विवाह बारह वर्षीय मनोरमादेवी (पं० रामदयाल की पुत्री) से कर दिया गया। इनसे 1914 में एक पुत्र और 1917 में एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्र का नाम रामकृष्ण और पुत्री का सरोज रखा गया। सन् 1918 में निराला विधुर हो गए। इस समय निरालाजी केवल बाईस वर्ष के थे। कुछ ही वर्षों के पश्चात् रामसहाय त्रिपाठी पेंशन लेकर गढ़कोला चले आए और घर का काम-काज देखने लगे। सन् 1917 में निरालाजी के पिता का देहान्त हो गया।

"सन् 1920 के आस-पास निराला जी महिषादल से कलकत्ता चले गये। वहाँ कुछ दिन रामकृष्ण आश्रम से प्रकाशित होने वाले '**समन्वय**' पत्र में रहे। वे प्रायः आश्रम के संन्यासियों के साथ रहते थे और उनसे विभिन्न विषयों की आध्यात्मिक चर्चायें करते रहते थे। शीघ्र ही वे 'समन्वय' छोड़कर '**मतवाला**' पत्र में चले गये। वहाँ रहते हुए वे अपने परिवार वालों की यथासंभव मदद करते रहे। मतवाला पत्र से ही प्रथम बार निराला की काव्य-प्रतिभा का समस्त हिंदी संसार को परिचय मिला। इसी में वे अधिकांश कवितायें प्रकाशित हुईं जो प्रथम अनामिका और परिमल में छपी हैं।"

—(**नन्ददुलारे बाजपेयी**)

14 जनवरी, 1947 को काशी में निराला जी की स्वर्ण जयन्ती धूमधाम से मनाई गई। स्वर्ण जयन्ती के पश्चात् निराला जी अधिकतर प्रयाग में ही रहे। 15 अक्टूबर 1961 (रविवार) को काव्य का देवता : निराला इस धरती से हमेशा के लिए विदा हो गया।

निराला जी की रचनायें—

(क) कविता संग्रह—1. अनामिका भाग-1 (1922), 2. परिमल (1930), 3. गीतिका (1936), 4. अनामिका भाग-2 (1938), 5. तुलसीदास (खण्डकाव्य) (1938), 6. कुकुरमुत्ता (1942), 7. अणिमा (1943), 8. बेला (1946), 9. नये पत्ते (1946), 10. अपरा, 11. आराधना (1953), 12. अर्चना (1950), 13. रामचरितमानस का खड़ी बोली में रूपान्तर, और 14. गीत-गुंज (1954)।

(ख) उपन्यास—1. अप्सरा, 2. अलका, 3. प्रभावती, 4. निरुपमा, 5. चोटी की पकड़, 6. काले कारनामे, 7. उच्शृंखल, तथा 8. चमेली।

(ग) कहानी-संग्रह—1. लिली, 2. सखी, 3. चतुरी चमार, और 4. सुकुल की बीबी।

(घ) निबन्ध और रेखाचित्र—1. प्रबन्ध पद्म, 2. प्रबन्ध प्रतिभा, 3. चाबुक, 4. प्रबन्ध-परिचय और कुल्ली भाट और बिल्लेसुर बकरिहा।

(ङ) आलोचना—रविन्द्र-कविता-कानन।

अनुवाद—1. आनन्दमठ, 2. कपालकुण्डला, 3. चन्द्रशेखर 4. दुर्गेशनन्दिनी, 5. कृष्णकांत का बिल, 6. युगलांगुली, 7. रजनी, 8. देवी चौधरानी, 9. राधारानी, 10. विषवृक्ष, 11. महाभारत।

(च) जीवनी—1. ध्रुव, 2. भीष्म और 3. राणा प्रताप।

विश्वम्भर मानव के शब्दों में निराला-काव्य के संदर्भ में कह सकते हैं कि—"छायावादी कवियों में निराला जीवन के सबसे अधिक निकट थे। उससे उनका घनिष्ठ परिचय था। जीवन अपनी संपूर्ण विवधता के साथ ही नहीं, पूरी गहराई के साथ उनके काव्य में चित्रित हुआ है। ओज और करुणा, विनय और विद्रोह, रोमांस और भक्ति, क्लासिक गम्भीरता और हास्य-व्यंग्य सभी को वे समान शक्ति से सँभालते दिखायी देते हैं। वे एक साथ छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, राष्ट्रवादी, मानवतावादी और ब्रह्मवादी भी हैं।........वे मुक्त छंद के प्रवर्तक हैं, पर छंदबद्ध काव्य पर उनका असाधारण अधिकार है। भाव, विचार, कल्पना और

कला के क्षेत्र में विरोधी तत्वों के अपूर्ण सामंजस्य का दूसरा नाम है—निर युग की सभी प्रमुख प्रवृत्तियाँ उनके काव्य में प्रतिबिंबित हैं। वे पूरा एक युग हैं।"

दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ, आज जो नहीं कही।[1]

—(निराला)

ऐसा कवि जिसने व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवन में संघर्ष ही जीवन है का मूल मन्त्र सीखा हो—ऐसे ही कवि थे निराला। निराला की रचनाओं में एक विशिष्टता है—युगीन विकासक्रम में सतत् आगे बढ़ते रहने की। छायावाद में प्रेम और सौन्दर्य की रचना करते हुए भी कवि युग के प्रति सदा सतर्क रहा है। जहाँ एक ओर जुही की कली (1916) में व्यक्त प्रणय-केलि के चित्र हैं, वहीं दूसरी ओर भिक्षुक (1921), तोड़ती पत्थर (1935), विधवा (1919) में शोषित और दुःखी-जन के प्रति गहरी सहानुभूति भी। इस प्रकार अनामिका (1923) से लेकर आराधना (1953) तक की रचनाओं में कवि निरन्तर विकासक्रम की ओर बढ़ता गया है। अतः युग प्रवृत्ति का विभाजन कर निराला की रचनाओं का आकलन करना कठिन होगा।

1. जुही की कली

सन् 1916 में प्रकाशित 'जुही की कली' निराला की पहली रचना है जिसने साहित्य जगत में क्रान्ति कर दी। निराला के शब्दों में—हिन्दी में 'जुही की कली' मेरी पहली रचना है। आलोचकों द्वारा इसका सौन्दर्य-प्रदर्शन नहीं किया गया। यह ऐसी रचना नहीं कि सूक्ति रूप इसका अंश उद्धृत किया जा सके। इसकी कला इसके सम्पूर्ण रूप में है, खण्ड में नहीं। द्विवेदीयुगीन आदर्शवादिता एवं नैतिकता की भावनाओं के समक्ष उसमें व्यक्त स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण युग के लिए चुनौती थी जिसे निराला ने सहर्ष स्वीकार कर उसका सामना किया। कवि के ही शब्दों में जुही की कली सरस्वती में छापने के लिए भेजी, उन्हें (महावीर प्रसाद द्विवेदी) ने वापस करते हुए एक पत्र लिखा—

"आपके भाव अच्छे हैं, पर छन्द अच्छा नहीं इस छन्द को बदल सकें, तो बदल दीजिए।" इस प्रकार निराला जी को साहित्य के क्षेत्र में पग-पग पर संघर्षों

---

1 निराला की आत्मकथा—डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ० 93।

का सामना करना पड़ा। अपने वैयक्तिक जीवन में वे जीवनपर्यन्त मुसीबतों का सामना करते रहे। यही कारण है कि कवि की समस्त रचनाओं में उनके वैयक्तिक सुख-दुःख प्रेम-परिहास की क्रीड़ा के साथ सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण, समाज में शोषित वर्ग की दयनीय दशा, विधवा और भिक्षुक की व्याकुलता का चित्रण करने में कवि पीछे नहीं हटा।

शब्दार्थ—विजन वन बल्लरी=निर्जन वन में स्थित एक लता। **सुहागभरी**=जिसको प्रियतम का प्रेम प्राप्त है। **शिथिल**=ढीला, सुस्त। **पत्रांक**=पत्ते की गोद। **निशा**=रात्रि, रात। **विरह विधुर प्रिया**=प्रियतमा से विमुक्त होने के कारण विधुर के समान विरह-ताप। **मलयानिल**=मलय समीर। **कमनीय**=सुन्दर। **गात**=शरीर। **केलि**=काम-क्रीड़ा। **कपोल**=गाल। **हिंडोल**=हिंडोला, एक राग। **निद्रालस**=सोया हुआ, तंद्रालु। **किंवा**=अथवा। **हेर**=देखकर। **वंकिम**=कुछ-कुछ टेढ़ा। **निर्दय**=जिसमें दया भाव न हो। **नम्र**=विनीत, झुका हुआ। **रंग**=संभोग।

कांता की कमनीय गात……।

प्रेयसी के संयोग सुख से कम्पायमान सुन्दर देहलाता की याद आ गई। वह पवन (नायक) बगीचों, तालाबों, नदियों, दुर्गम पर्वतों आदि को पार करता हुआ उसी स्थान पर पहुँचा, जहाँ इसने किसी समय खिली हुई कली के साथ क्रीड़ा की थी।

निपट निठुराई की……

नायक पवन ने बरबस नायिका का आलिगन कर उसी अपने प्रेमपाश में बाँध लिया। यहाँ कवि ने श्रृंगार की अतिशयता अवश्य ही दिखाई है लेकिन साथ ही प्रियतमा के प्रेमपाश रूप-चित्रण में बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है। यह कवि निराला की विशिष्टता है।

कविता का भाव—यहाँ कवि ने प्राकृतिक चित्रण द्वारा मानवीय प्रणय का एक आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रकृति के बीच चलने वाले प्रेम-व्यापार का चित्रण बहुत ही सहज एवं स्वाभाविक रूप में हुआ है। जुही-प्रेमिका है तथा मलयानिल-प्रेमी। दोनों के दाम्पत्य-रति का चित्रण करने में कहीं वासना की गन्ध नहीं है। यदि पवित्र प्रेम-पाश से युक्त दाम्पत्य-जीवन वासना की गन्ध है तो जुही की कली का प्रेम चित्रण अवश्य ही पंकिल कहा जाएगा—अन्यथा इसे जीवन की सहजता कहना अधिक युक्तिसंगत होगा।

मुक्त छन्द में लिखी गई निराला जी की यह प्रथम कविता है जिसमें छायावादी कविता के तत्व, प्रेम-सौन्दर्य, प्रकृति-प्रेम, प्रकृति का मानवीकरण एवं शृंगार का सटीक वर्णन किया है।

2. भिक्षुक

कवि निराला ने इस कविता में एक भिखारी का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया है। भिक्षुक के प्रति दया एवं करुणा का भाव दिखाकर कवि ने समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। आज राष्ट्र का दायित्व है इनकी समस्याओं को देखे एवं उसके समाधान को ढूंढें। भिक्षुक के ओठों पर भूख के कारण पपड़ी तक जम जाती है, वह सड़क पर खड़े होकर जूठी पत्तलों को चाटता है—इस दर्दनाक दृश्य का वर्णन कवि ने किया है।

ठहरो, अहो मेरे हृदय……..

कवि ने भिक्षुक-वर्ग को संघर्ष-शक्ति प्रदान करने का संकल्प किया है। पूंजीपतियों के प्रति घृणा एवं आक्रोश का भाव इन पंक्तियों में छिपा है।

दाता-भाग्यविधाता से क्या पाते……..।

इन पंक्तियों में कवि की प्रगतिवादी विचारधारा निहित है। इस कविता का रचनाकाल यद्यपि सन् 1921 है अर्थात् जिस समय कवि प्रेम-सौन्दर्य चित्रण से रंजित होकर जुही की कली की रचना कर चुका था, उस समय छायावादी कवि का एक भिक्षुक की पुकार सुनना कवि निराला की साहित्यिक-विशिष्टता ही कही जाएगी। तब निराला एक साथ युग-सत्य के विविध आयामों को अपनी रचनाओं में समेट कर चले हैं।

3. तोड़ती पत्थर

शब्दार्थ—श्यामतन=सांवले (काले) रंग का शरीर। **नत नयन**=झुके हुए नेत्र। **गुरू**=भारी। **प्रहार**=आघात, वार। **तरु-मालिका**=वृक्षों का समूह। **प्राकार**=परकोटा। **दिवा**=दिन, वार। **तमतमाता**=धूप या क्रोध के कारण लाल हुआ चेहरा। **भू**=भूमि, धरती। **चिनगी**=जलते हुए कोयले आदि का छोटा टुकड़ा। **छिन्न**=कटा हुआ। **सहज**=सरलतापूर्वक। **सितार**=एक प्रसिद्ध तंत्र वाद्य। **सुघर**=सुन्दर। **सीकर**=पानी का छींटा, जलकण।

कवि निराला इलाहाबाद की सड़क पर पत्थर तोड़ने वाली एक मजदूरनी का वर्णन करते हैं। इस चित्रण द्वारा कवि ने जीवन में आर्थिक विषमता पर प्रकाश डाला है। समाज का शोषक वर्ग शोषित वर्ग को किस प्रकार प्रताड़ित कर रहा है। पूंजीवादी पाशविकता के मध्य सामान्य मानव किस प्रकार कराह रहा है—इसका अच्छा चित्रण कवि ने पत्थर तोड़ती स्त्री के माध्यम से किया है।

कवि निराला की यह कविता सन् 1935 में रचित है, जब प्रगतिवाद का प्रारम्भ हो चुका था। निराला ने स्वयं इस प्रकार की अनेकानेक रचनाएँ की हैं जिसमें सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, पूंजीवाद के प्रति कड़ा विरोध अभिव्यंजित है। कुकुरमुत्ता, गर्म पकौड़ी और नये पत्ते की अधिकांश कवितायें इस प्रकार की हैं।

अट्टालिका—कवि का व्यंग्य है कि वह राजभवन इसी श्रम पर खड़ा है।

जो मार खा रोई नहीं—शोषित-वर्ग किस प्रकार शोषकों द्वारा प्रताड़ित होता रहता है तथा मौन-भाव से अत्याचार वहन करता रहता है। यह भाव यहाँ साकार हो उठा है।

भाषा की दृष्टि से कवि ने यहाँ छायावादी लाक्षणिकता एवं सूक्ष्मता का परित्याग कर स्थूल भाषा अपनायी है।

4. बादल राग[1]

शब्दार्थ—**तिरती**=मँडराती। **अस्थिर**=नश्वर। **समीर**=पवन, हवा। **दग्ध**=दुखी। **विप्लव**=प्रलय। **भेरी गर्जन**=नगाड़े की तेज आवाज। **आकांक्षा**=चाह, इच्छा। **घन**=बादल। **उर**=हृदय। **मूसलाधार**=बहुत तेज वर्षा। **वज्र हुंकार**=भयानक गर्जना। **अशनि**=बिजली। **शायित**=सोया, लेटा हुआ। **शस्य**=प्रशंसनीय, श्रेष्ठ। **आतंक**=रोग, भय, दहशत। **पंक**=कीचड़, दलदल। **रव**=शब्द। **जलज**=कमल। **तोष**=लिप्सा का अभाव, तुष्टि। **अंक**=चिह्न छाप। **जीर्ण-शीर्ण**=जरायुक्त, बूढ़ा, पुराना, ढहता हुआ। **कृषक**=किसान।

निराला की यह कविता 'परिमल' (1930) नामक कविता-संग्रह से संकलित **है। यह कवि** की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक है। बादल क्रान्ति या विप्लव का

---

1 **निराला का सबसे प्रिय विषय है बादल, सबसे प्रिय ऋतु है वर्षा।** परिमल में **बादल राग सम्बन्धी छह** कवितायें हैं। प्रस्तुत कविता उनमें से छठी है। प्रथम **पाँच कविताओं** में कवि ने बादल को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है।

प्रतीक है जिसके आने से बड़े-बड़े पूंजीपति दहल जाते हैं, किंतु साधारण-जन प्रफुल्लित होते हैं। इस कविता में प्रकृति के कोमल रूप के साथ-साथ कठोर रूप का भी वर्णन किया गया है तथा उसी के अनुरूप कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया है। ध्वन्यात्मकता इस कविता की बड़ी विशेषता है।

तिरती है समीर............छाया।

हे प्रलय के बादल ! वायु-रूपी सागर के ऊपर तू सदैव इस प्रकार का मंडराता रहता है, जिस प्रकार नश्वर सुख के ऊपर दुःख की छाया सदैव घिरी रहती है। यहाँ का सुख क्षणभंगुर है जिस पर दुःख का आक्रमण सहसा हो जाता है।

जग के दग्ध हृदय पर........

संसार में जब अन्याय, अत्याचार व शोषण की सीमा बढ़ जाती है, तब जनता में भी विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है, क्रान्ति का जन्म होता है। उसी प्रकार क्रान्ति का प्रतीक यह बादल की ग्रीष्म ताप से पीड़ित संसार को नव-जीवन का सुख संदेश देने आता है।

घोर बज्र हुंकार........

जब क्रान्ति की ज्वाला धधकती है तो प्रलयंकारी रूप से सत्ताधारी काँप उठते हैं।

विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते........।

हे विप्लव के बादल ! तुम्हारे गर्जन से बड़े-बड़े वृक्ष तो धराशायी हो जाते हैं लेकिन छोटे-छोटे पौधों को जन्म मिलता है। क्रांति से भी समाज के दुर्बल, पीड़ित वर्गों को ही लाभ पहुँचता है।

अट्टालिका—आतंक भवन। गरीब जनता का शोषण करके शासक वर्ग अपार संपत्ति प्राप्त कर लेता है और विशाल प्रासादों में भोगविलास का जीवन बिताता है। क्रांति ऐसे भवनों को नष्ट कर देती है।

रुद्ध कोष=सम्पन्न पूंजीपति वर्ग।

त्रस्त नयन मुख=भय से अपना मुख छिपा रहे हैं। निर्धन जनता क्रांति का स्वागत करती है तो धनी तथा शोषक वर्ग उसकी कल्पना मात्र से भयभीत हो जाते हैं।

जीवन के पारावार=जीवन के समुद्र। किसान का सारा सार चूस लिया है। उसका पूर्ण शोषण हो चुका है, वह अस्थि-मात्र बचा है। वह बादल का स्वागत कर उसको बुला रहा है।

विशेष—निराला की इस रचना में साम्यवादी चिन्तन तथा प्रगतिवादी विचारधारा प्रमुख है। प्रगतिवाद का प्रारम्भ सन् 1936 माना जाता है लेकिन निराला की इस कविता में हमें 1920 में ही प्रगतिवादी विचार दिखाई देते हैं। यह है निराला का युग के प्रति दायित्व और उनका युग दृष्टा रूप।

5. सन्ध्या सुन्दरी

शब्दार्थ—**दिवसावसान**=दिवस की समाप्ति। **मेघमय आसमान**=बादलों से युक्त आसमान। **तिमिरा**=अंधकार। **आभास**=प्रतीती, संकेत। **अभिषेक**=जल छिड़कना, राजा का सिंहासनारोहण। **अलसता**=क्लांत, सुस्त। **नीरवता**=शांति। **अम्बर**=अम्बर। **अनुराग**=प्रेम, आसक्ति। **व्योम**=आकाश। **जगतीतल में**=पृथ्वी में, धरती पर। **अमल**=मल रहित, स्वच्छ, निष्पाप। **शिखर**=पर्वताग्र, पहाड़ का सबसे ऊँचा भाग। **उत्ताल**=ऊँचा, प्रचंड। **जलधि**=समुद्र। **अनिल**=हवा। **अनल**=अग्नि। **कमनीय**=कामना करने या चाहने योग्य। **बिहाग**=एक राग।

सन्ध्या सुन्दरी कविता 'परिमल' काव्य संग्रह से ली गई है। प्रकृति विषयक अपनी रचनायें विषय की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण हैं। सन्ध्या सुन्दरी में कवि ने सन्ध्या का वर्णन एक सुन्दरी रमणी के रूप में किया है। इस प्रकार कवि ने छायावादी प्रवृत्ति के अनुरूप प्रकृति के मानवीकरण का बेजोड़ चित्रण किया है।

सन्ध्या सुन्दरी अपने अंचल में अंधकार को भरे हुए चली आ रही है। अंधकार से भरा हुआ अंचल एकदम शांत है क्योंकि संध्या के आगमन के साथ भूतल पर अंधकार छा जाता है तथा वातावरण शांत हो जाता है। इस प्रकार कवि ने प्रकृति का सजीव चित्रण किया है। प्रकृति का नारी रूप में चित्रण छायावादी काव्य-शैली की विशेषता है।

अलसता की·······चली।

कवि ने संध्या सुन्दरी को कोमलता की कली कहा है। वह अपनी सखी खामोशी के कंधे पर बाँह रखे हुए छाया के समान आकाश-मार्ग से उतरती चली आ रही है।

विशेष—सम्पूर्ण कविता में कवि ने प्रकृति का मानवीकरण रूप में सजीव चित्रण किया है। इसमें न तो आध्यात्मिक भावों का आरोप है, न रीतिकालीन नायिकाओं को उद्दीप्त करने वाली प्रकृति और न ही द्विवेदीयुगीन आदर्शवादिता के परिप्रेक्ष्य में उपदेश देने वाली कोई शिक्षिका है, वरन् प्रकृति को चेतन मानकर उसका स्वतंत्र रूप में वर्णन हुआ है।

चुप, चुप, चुप—सर्वत्र नीरवता का अखण्ड साम्राज्य है। इन शब्दों की आवृत्ति द्वारा संध्या के गम्भीर मौन प्रभाव की सफल व्यंजना की है।

6. तुम और मैं

'तुम और मैं' कविता 'अनामिका' (1923) काव्य-सग्रह से ली गई है। इसमें कवि की रहस्यवादी भावना पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होती है। समन्वय के सम्पादक के रूप में आप पर स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक विचारों का प्रभाव पड़ा, साथ ही आपने उपनिषदों का भी अध्ययन किया। सिद्धान्ततः निरालाजी अद्वैतवादी थे। 'तुम और मैं' कविता में आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध लेकर कवि ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है। कवि ने सम्पूर्ण कविता में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को विविध प्रकार से व्यक्त किया है।

शब्दार्थ—**तुंग**=ऊँचा, उन्नत। **मतवाली**=नशे में चूर, मस्त। **दिनकर**=सूर्य। **खर**=(1) तृण, घास (2) आग। **सरसिज**=कमल। **शुचिता**=पवित्रता। **मनोरंजिनी**=मन को प्रसन्न करने वाली। **विटप**=पेड़ या लता की नयी शाखा। **वेणी**=बालों की चोटी, एक धारा। **रेणु**=बालू, धूल। **वेणु**=बाँस, बाँसुरी। **दुस्तार**=जिसे पार करना कठिन हो। **निशीथ**=शयन काल, आधी रात। **अम्बर**=आकाश। **तड़ित**=आकाशीय विद्‌नयु। **तूलिका**=कूची। **अरविन्द**=कमल।

तुम कर-पल्लव...... वेणु।

तुम यदि कोमल हाथों द्वारा बनाए जाने वाले सितार हो, तो मैं उनसे प्रकट होने वाली विरह रागिनी हूँ। महादेवी जी ने भी अपने गीत 'बीन भी हूँ मैं, तुम्हारी रागिनी भी हूँ'—में इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं।

7. मैं अकेला

'मैं अकेला' कविता निरालाजी के कविता संग्रह **'अणिमा'** (1943) से ली गई है। जिस समय अणिमा की ये कविताएं लिखी गयीं, उस काल में प्रगतिवाद का

बड़ा जोर था। अणिमा की अधिकांश रचनाओं में एक ओर व्यक्तिगत संघर्ष है तो दूसरी ओर अवस्था के ढलते जाने के कारण जीवन की निराशा है। निरालाजी का प्रारम्भिक जीवन ऐसा था कि एक ओर जीविका के लिए कठिन परिश्रम और दूसरी ओर मुक्त छन्द प्रयोग के कारण उनके काव्य की कटु आलोचना हुई। निराला ने अपनी आत्म-कथा में कहा है "मुझे बराबर पेट के लाले रहे। जीविका का कोई निश्चित उपाय न था"।[1] निराला ने अपनी अधिवास नाम की कविता सरस्वती सम्पादक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी को भेजी। सम्पादक ने उस पर नोट लिखा—"इसके भाव समझ में नहीं आए, इसलिये सधन्यवाद वापस करता हूँ।"[2]

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि कवि को जीवन-पर्यन्त संघर्ष करना पड़ा जिसकी स्पष्ट छाप उनकी समस्त रचनाओं में दिखाई देती है। यह कवि निराला की विशिष्टता है। इस प्रकार व्यक्तिपरक रचनाओं के माध्यम से वह अपने पाठकों को अपनी साहित्य-रचना का सही-सही ज्ञान कराता आ रहा है। 'मैं अकेला' कविता में कवि निराला अपने जीवन के अवसान में अकेलेपन के अनुभव को व्यक्त करते हैं।

मैं अकेला……

शब्दार्थ—भेला=नाव। **सान्ध्यबेला**=अस्त होने का समय।

कवि जीवन के अंतिम क्षणों में जब उसकी अवस्था ढल रही है, वह एकाकीपन का अनुभव करता है। कवि ने अपनी आत्मकथा में भी कहा है—

"जब पिताजी नहीं, माताजी नहीं, पत्नी नहीं, केवल मैं हूँ। केवल मैं !! केवल मैं !!"[3]

---

1 निराला की आत्मकथा, पृ० 44।

2 वही, पृ० 93।

3. निराला की आत्मकथा—डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित, पृ० 43

नोट—यह आत्मकथा विशुद्ध रूप से निराला द्वारा विरचित है। 'इसकी एक भी उक्ति मेरी नहीं है।'—सम्पादक के शब्दों में।

8. बाँधो न नाव

कभी नहाती..........।

शब्दार्थ—ठाँव=स्थान।

'बाँधो न नाव' कविता निराला के कविता संग्रह **'अर्चना'** (1950) से ली गई है। अर्चना के गीतों में कवि ने संगीतात्मकता तथा गेयता की ओर विशेष ध्यान रखा है। निराला के गीतों की यह विशिष्टता है कि वे चाहे भक्ति-भाव पूरित हों अथवा शृंगारिक, कवि जन-जीवन से सदा जुड़कर ही चला है।

बाँधो न नाव—प्रस्तुत गीत में कवि किसी प्राचीन सुखद घटना का वर्णन करता है। यहाँ कवि नारी के प्रति मर्यादाशील हो उठा है। वह अपने नाविक से कहता है कि हे बन्धु इस स्थान पर नाव मत बाँधो। अन्यथा पुरानी बातों को लेकर गाँव के लोग फिर उन्हीं बातों को पूछने लगेंगे।

किसी प्राचीन घटना के होने का आभास मिलता है।

विशेष—वर्णन में वैयक्तिक अनुभूति है।

गाँव—लक्षणा है।

9. वर दे, वीणा वादिनि

शब्दार्थ—स्व=स्वर। अन्धउर=अज्ञान। ज्योतिर्मय=प्रकाशवान, ज्ञान=स्वरूप। भेदकर=नष्ट करके। वृन्द=समूह।

गीतिका के प्रथम गीत में कवि देवी सरस्वती से समस्त मानव समाज के लिए ज्ञान वर्धन एवं स्वाधीनता की याचना करता है। इनमें कवि व्यक्तिगत सुख-दुःख से परे होकर समस्त मानव समाज के कल्याण के लिए प्रार्थना करता है।

भारत में भर दे.......

देश के लिए स्वाधीनता की याचना करता है। इसमें कवि की राष्ट्रीय-भावना दिखाई देती है।

काट अन्ध.......

हम भारतवासी अज्ञान के कारण रूढ़ियों के बन्धनों में जकड़े हुए हैं, हे माँ तू दूर कर।

नव गति, नवलय........

कवि नवीनता के प्रति आकृष्ट है। वह प्राचीन छन्दों के बन्धनों को तोड़कर नवीन छन्दों में नव विचारों को व्यक्त करने का इच्छुक है।

16. सुमित्रानन्दन पंत

छायावाद के चार ज्योति स्तम्भ हैं—प्रसाद ने माया (नारी), निराला ने परुषता, पंत ने प्रकृति और महादेवी ने करुणा का स्वर छायावादी कविता को दिया है।

'**ज्योतिविहग**' में शांति प्रिय द्विवेदी लिखते हैं—"पंत की कविता का मेरुदण्ड उनकी उर्वरा कल्पना शक्ति है। पंत कोमल एवं सुकुमार कल्पना के कवि हैं।"

हिंदी समीक्षकों ने पंत को सम्पूर्णता का कवि कहा है। सुमित्रानन्दन पंत का जन्म कूर्मांचल (कुमायूं) के कौसानी ग्राम में 20 मई, 1900 ई० को हुआ। जन्म के कुछ घंटों बाद ही मां का निधन हो जाने के कारण दादी ने इनका लालन-पालन किया। सात वर्ष की आयु में चौथी कक्षा में पढ़ते हुए इन्होंने सर्वप्रथम छन्द-रचना की। उच्च कक्षा में पढ़ने के लिए जब अल्मोड़ा आये तब अपना नाम गुसाईं दत्त से बदलकर सुमित्रानन्दन रखा। जुलाई 1919 ई० में इलाहाबाद आये और म्योर सेन्ट्रल कालेज में प्रवेश किया। लेकिन 1921 ई० में महात्मा गांधी के आह्वान पर कालेज छोड़ दिया। अपने कोमल स्वभाव के कारण सत्याग्रह में सम्मिलित नहीं हुए और साहित्य साधना में संलग्न हो गये। सन् 1931 में काला-कांकर चले गये। वहाँ मार्क्सवाद का अध्ययन किया और फिर प्रयाग आकर प्रगतिशील विचारों की पत्रिका 'रूपाभ' निकाली। सन् 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन से प्रेरित होकर लोकायन नामक सांस्कृतिक पीठ की योजना बनायी। उसे क्रियान्वित करने के लिए विश्व प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर से सम्पर्क स्थापित किया और फिर उनके साथ भारत-भ्रमण को निकल पड़े। इसी भ्रमण के समय पंत का श्री अरविन्द से परिचय हुआ और उनके विचारों से विशेष प्रभावित हुए। प्रयाग लौटकर इन्होंने अरविन्द दर्शन से प्रभावित अनेक काव्य संकलन प्रकाशित किये, यथा—**स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा** आदि। सन् 1950 में ये आकाशवाणी से सम्बद्ध हुए तदनन्तर प्रयाग में रहकर स्वच्छन्द रूप से साहित्य सृजन में रत रहे। 28 दिसम्बर, 1977 को इनका देहा-

वसान हो गया । इन्हें 'कला और बूढ़ा चांद' पर साहित्य अकादमी, 'लोकायतन' पर सोवियत और 'चिदम्बरा' पर ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया ।

पंत जी की प्रमुख रचनाएँ—वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, पल्लविनी, अतिमा गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, कला और बूढ़ा चांद, युगपथ, शिल्पी, चिदम्बरा, ऋता, लोकायतन, रश्मिबंध आदि ।[1]

पंत-काव्य के क्रमिक विकास को हम चार सोपानों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) प्राकृतिक सौन्दर्यवादी युग (1918 से 1934 ई०)

(ख) यथार्थवादी युग (1935 से 1945 ई०)

(ग) अन्तश्चेतनावादी युग (1946 से 1948 ई०)

(घ) नवमानवतावादी युग (1949 से 1977 ई०)

पंत का समस्त काव्य उन्हीं के शब्दों में ''उर्ध्व संचरण का अर्थात् अति चेतना या अंतश्चेतना का काव्य है जिसका उद्देश्य मानवीय सामंजस्य का सन्तुलन स्थापित करना है ।''

पंतजी ने हमेशा नयी भावभूमियों को आत्मसात करके उन्हें अपनी कविता में मुखर किया है । वस्तुतः इन प्रयत्नों में कविता कहीं खण्ड-खण्ड नहीं हुई है, बल्कि सर्वत्र मिल जाती है । प्रभावों संबंधी इन आरोपों के संबंध में कवि पंत के कुछ निराकरण द्रष्टव्य हैं :

(1) मेरा काव्य प्रथमतः इस युग के महान् संघर्ष का काव्य है । जो लोग युग-संघर्ष तक ही सीमित रखकर उसे केवल बाहरी राजनीतिक आर्थिक स्तरों पर ही देख सकते हैं उनकी बात मैं नहीं करता........। आज के विराट् मानवीय संघर्ष को वर्ग-संघर्ष तक ही सीमित करना विगत युगों की खर्व चेतना तथा ऐतिहासिक अंधकार की एक हिंस्र प्रतिक्रिया मात्र है........ । उन अर्थों में मार्क्सवादी मैं कभी नहीं रहा ।

(2) मुझमें यह दृष्टिकोण (यथार्थ का आग्रह) परिवर्तन-प्रेम के कारण नहीं, किन्तु भावनात्मक आवश्यकता के कारण ही सम्भव हो सका........ ।

---

1. सम्पूर्ण पंतसाहित्य 'सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली' के रूप में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हो चुका है ।

(3) 'अरविन्द की साधना-पद्धति आत्म-मुक्ति संबंधी न होते हुए भी सामूहिक मुक्ति' की नहीं है।

(4) मेरी प्रेरणा के स्रोत निस्संदेह मेरे भीतर रहे हैं जिन्हें युग की वास्तविकता ने खींचकर समृद्ध बनाया है।

(5) ''''''न मुझे यही लगता है कि दर्शन द्वारा मनुष्य सत्य की प्राप्ति कर सकता है। ये (विचार-सार) केवल मेरे कवि मन के प्रकाश-स्फुरण अथवा भाव प्ररोह हैं जिन्हें मैंने अपनी रचनाओं में शब्द-मूर्त करने का प्रयत्न किया है। अंत में डा० नामवर सिंह के शब्दों में कह सकते हैं—

''छायावाद की काव्य-भाषा के निर्माण और विकास में पंत और उनके पल्लव की भूमिका का महत्वपूर्ण योग है। पंत के शब्द अपेक्षाकृत छोटे असंयुक्त वर्ण वाले, हल्के तथा वायवी हैं। पंतजी निपुण शब्द शिल्पी हैं।''

आधुनिक हिंदी कविता में कवि पंत ने युग-प्रवर्तक की भूमिका निभाई है और उनके योगदान का विशिष्ट स्थान रहेगा।

छायावादी प्रकाश स्तंभ के रूप में कविवर पंत का स्मरण अवश्य ही उल्लेखनीय है। उनके विषद साहित्य (छायावाद-युग में प्रकृति के सुकुमार सौन्दर्यवादी कवि के रूप में, उसके बाद प्रगतिवादी, तत्पश्चात् अरविन्द के जीवन-दर्शन से प्रभावित अध्यात्मवाद को एक विस्तृत परिवेश में देखकर यह कहना कठिन हो जाता है कि इस कवि ने युगीन सामाजिक, सांस्तकृतिक एवं आध्यात्मिक किसी भी परिवेश को अछूता छोड़ा हो। उनके प्रारंभिक काव्यग्रंथ उच्छ्वास (1920), ग्रंथि (1920), वीणा (1927), पल्लव (1928), और गुंजन (1932), से प्रारंभ होकर ज्योत्स्ना, युगान्त (1936), युगवाणी (1939), और ग्राम्या (1940), में प्रगतिवादी कवि की हैसियत से युग को युगवाणी की पुकार सुनाते हुए स्वर्ण किरण (1947), स्वर्णधूलि (1948), युगांतर (1948), तथा उत्तरा (1949), में आकर यह कवि कुछ दार्शनिक बन गया है जिस पर अरविंद दर्शन की स्पष्ट छाया है। पंत की नवीनतम कृतियों में अतिमा (1955), वाणी (1957) तथा कला और बूढ़ा चाँद (1958) का अपना विशेष महत्व है। इस प्रकार वीणा से प्रारम्भ होकर उत्तरा तथा उसके पश्चात् की रचनाओं में विषय क्रम की विविधता को देखकर स्वयं कवि ने कहा है कि आज के महा-संक्रांति के युग में मुझे प्रतीत होता है कि मेरे भीतर मेरे उदय-काल में जिस किशोर कवि ने वीणा के गीत गुनगुनाए थे,''''''उसकी क्षीण कंठ-ध्वनि आज के तुमुल कोलाहल में लोगों को सुनाई देगी कि नहीं, मैं नहीं जानता।[1]

---

1 रश्मि बंध—श्री सुमित्रानंदन पंत 31-32

1. प्रथम रश्मि

'प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि, तूने कैसे पहचाना' जैसी जिज्ञासा में ही संपूर्ण कविता का भाव निहित है। यह कविता कवि के प्रथम काव्य-संग्रह 'वीणा से' ली गई है। इसमें सूरज की पहली किरण के साथ प्रकृति में मच जाने वाली हलचल, पक्षियों के कलरव आदि का भावपूर्ण वर्णन किया है। रंगिणि से अभिप्राय कोकिल से है। कवि को आश्चर्य है कि कोयल जैसे पक्षियों को रात्रि के अवसान और पौ फटने का पूर्वाभास किस प्रकार हो जाता है। बस यही आश्चर्य की भावना कविता का केन्द्र बिन्दु है। ई० चेलिशेव के शब्दों में "उषा का आगमन होता है और सूर्य की प्रथम रश्मि के साथ-साथ धरती पर जैसे देवी-देवता उतर आते हैं। पुष्पों के अर्धस्फुट अधरों को चूमकर वे उन्हें स्मित के पाठ पढ़ाते हैं। सबसे पहले जाग उठते हैं विहग शिशु। अपनी आनन्दमयी चहक और मोह भरे गीतों के साथ नवोदित दिवस का स्वागत करते हैं। उनके स्वरों में मंत्र-मुग्ध-सा होकर कवि पूछ बैठता है।" शेष पंक्तियों में कवि रात के वातावरण को चित्रित करता है।

शब्दार्थ—**रश्मि**=किरण। **रंगिणी**=विनोदिनी, रसिका। **नीड़**=आश्रय, घोंसला। **प्रहरी**=पहरेदार। **कामरूप**=इच्छानुसार रूप धारण कर लेने वाले। **तरुवासिनी**=वृक्ष पर रहने वाली। **छायातन**=छाया के समान अस्पष्ट रूप वाले। **अवनि**=धरती, जमीन। **मण्डप**=छाया हुआ, पर चारों ओर से खुला हुआ बैठने का स्थान मँड़वा। **खल**=दुष्ट। **क्रोड़**=गोद। **कोक**=चकवा। **स्तब्ध**=स्थिर, संज्ञाहीन। **ज्योतिपुंज**=प्रकाश का समूह। **समीरण**=गतिशील करने वाला। **स्वर्गिक**=दिव्य।

भावार्थ—उस विहंग-बालिका के जागने से पहले की उसकी स्थिति का वर्णन करता हुआ कवि रात्रि के उस अंधकार का वर्णन करता है जबकि पक्षी अपने घोंसलों में, अपने पंखों की ऊष्मा में अपना मुँह छिपाये सो रहे थे—समस्त वातावरण शान्त है। कवि उस वृक्ष पर रहने वाली बाल-विहंगिनी से पूछता है कि ऐसे शांत और स्तब्ध वातावरण में तू सूरज की उस पहली किरण के स्वागत में गीत गाती हुई सहसा कूक उठी थी। हे अन्तर्यामिनी! तू यह बता कि उसके आगमन की सूचना तुझे किसने दी थी? अर्थात् इस आगमन का रहस्य पहले से ही तुझे कैसे ज्ञात हो गया।

कोक……दीवाना।

यह किवदन्ती है कि चकवा रात को अपनी चकवी से बिछुड़ जाने के कारण, उसके बिरह में पागल-सा बैठा सिर धुन रहा था।

गूंथ दिया……बाना ।

हे विहंगिनी तूने ही अपने कलरव संगीत द्वारा संसार को जाग उठने का संदेश दे सारे विश्व में चेतना उत्पन्न कर दी थी। अर्थात् तूने ही रात्रि के गहन अंधकार के पश्चात् जागृति का गीत गाना आरम्भ किया था।

खुले पलक………अपनाना ।

प्रात:काल के प्रफुल्ल वातावरण में नींद का आलस्य समाप्त हो जाता है। चारों ओर सूर्य की किरणों का प्रकाश छा जाता है। फूलों की सुगन्धि चारों तरफ फैल गई है और उससे आकर्षित हो भ्रमरों के बच्चे फूलों पर मँडराने लगे। सारा संसार उत्साह और नव-जीवन से गतिशील हो उठा।

प्रकृति के इन दो परस्पर विरोधी रूपों—रात्रि की निस्तब्धता तथा प्रात:-कालीन नवजीवन से पूर्ण वातावरण के रहस्य को पहले से ही जान लेने वाली उस बाल-विहंगिनी से पुन: कवि पूछता है कि रंगिणी ! तूने सूर्य की पहली किरण के आगमन के रहस्य को पहले कैसे जान लिया ?

विशेष—इस कविता का मूल संदेश यही है कि मानव प्रकृति से जितना दूर होता जा रहा है, वह अपने प्राकृतिक गुणों और शक्तियों को खो बैठा है। सम्पूर्ण कविता में बाल विहँगिनी नव-जीवन एवं नव-चेतना का प्रतीक है।

इस कविता की प्रमुख विशेषता है कि यह विशुद्ध छायावादी शैली की रचना होते हुए भी छायावाद की दुरूहता एवं जटिलता से सर्वथा मुक्त रही है। इसमें छायावादी शैली का मानवीकरण रूप दृष्टव्य है।

खुले पलक……अपनाना ।

"इसमें पलक, सुवर्ण, सुरभि, स्पन्दन, कम्पन जैसे तीन-तीन वर्णों के छोटे-छोटे शब्दों से पन्त ने जो मोहक और सजीव वातावरण पैदा कर दिया है, वह भारी भरकम शब्दों के द्वारा भी द्विवेदी-युगीन कवि न कर सके।" —नामवर सिंह

2. ताज

ताज कविता पंत के **'युगांत'** (1935) काव्य-संग्रह से चुनी गई है। युगान्त नाम ही एक युग के अन्त की सूचना देता है। अब कवि कृति के सौन्दर्यपूर्ण चित्रों का चितेरा नहीं है, अब वह मानव-जीवन के विकास में नव-निर्माण का चितेरा है।

संसार में जो कुछ निर्जीव और जीर्ण-शीर्ष है, यह सब जब तक नष्ट नहीं हो जाता तब तक नवीनता की सृष्टि नहीं हो सकती। कवि की इन पंक्तियों में द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र। अतः युगान्त का कवि विद्रोही और क्रांतिकारी है। इसमें पंत ने स्पष्ट कहा है कि युगान्त में मैं निश्चित रूप से इस परिणाम पर पहुँच गया था कि मानव-सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन-युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है।"

युगान्त की कविताओं में कवि का प्रगतिवादी स्वर और अधिक मुखर हो उठा है। जन-सामान्य के प्रति कवि अब और अधिक सहानुभूतिमय हो गया है। इसी कारण प्रेम और सौन्दर्य का प्रतीक ताजमहल और उसके निर्माता शाहजहाँ के प्रति कवि का उपेक्षापूर्ण भाव इस ताज कविता में व्यक्त हुआ है। इस कविता को प्रगतिवाद की दृष्टि से पंत की प्रतिनिधि रचना माना जा सकता है।

हाय ! मृत्यु का · · · · · से रति।

शब्दार्थ—अपार्थिव=अलौकिक। विषण्ण=दुखी। स्फटिक=संगमरमर। सौध=महल, भवन। क्षुधातुर=भूख से व्याकुल। वासविहीन=बिना घर के। आत्मा=जीवित मानव। प्रेत औ छाया=मृतक। अर्चना=पूजा। कुत्सित=घिनौना। मोहान्ध=मोह से अन्धा, मोह ग्रस्त। अनश्वर=शाश्वत।

भावार्थ—कवि कला की अपेक्षा जीवन को महत्व देता है। एक ओर कला सौन्दर्य का प्रतीक ताजमहल और दूसरी ओर भूख से व्याकुल आश्रयविहीन सामान्य मनुष्य है जिसने इस कला के निर्माण ताज में अपना खून-पसीना बहाया है। यही देखकर कवि दुखी होकर कहता है—

हाय ! मृत्यु (ताजमहल) का यह कैसा अलौकिक पूजन है। जब जीवित मानव निर्धनता, अत्याचार तथा अनेक प्रकार के संघर्षों से जूझता हुआ तड़प रहा है, उस समय एक मरे हुए मानव (शाहजहाँ को बेगम मुमताज महल) की यादगार को बनाये रखने के लिए अलौकिक और भव्य प्रतीत होने वाले ताजमहल का निर्माण कर उस मृतक की पूजा की जाय।

अगली पंक्तियों में कवि उन भव्य भवनों का निर्माण करने वाले मनुष्यों को सम्बोधित कर कहता है कि तुझे अपने जीवन के प्रति इतनी उपेक्षा (जीवन से विरक्ति, अपमान) क्यों हो गया है। अर्थात् तू जीवित मनुष्यों के प्रति उपेक्षा का व्यवहार करके प्रेत और छाया (मरे हुए लोगों) से प्रेम करता है। यहाँ कवि का

व्यंग्य शाहजहाँ पर है जो दीन-हीन जनता की परवाह न करके बेगम मुमताज की स्मृति में ताजमहल बनवा रहा है।

स्थापित कर कंकाल....

मृतकों की स्मृति को अमर बनाने के लिए जीवित मनुष्यों का निर्मम शोषण कर उन्हें हड्डियों का ढाँचा बना देना।

शव को.........शव का ?

कवि कहता है कि क्या यह उचित है कि शव का शृंगार कर उसे जीवित मनुष्यों के समान मानकर जीवित मनुष्यों को शव का सा घिनौना रूप प्रदान कर दें। अर्थात् जीवित मनुष्यों का शोषण कर उसे लाश (शव) का सा रूप प्रदान करना।

भूल गए हम.........अनश्वर।

हम जीवन के इस अमर संदेश को भूल गये कि मृतकों की उपासना वही लोग करते हैं जो स्वयं मृतक (आस्थाहीन) के समान हैं। जीवन के प्रति आस्थावान मनुष्य ईश्वर (मानव) को ही जीवन का प्रतीक मानकर उसकी पूजा-सेवा करते है।

3. गीत-विहग

गीत-विहग कविता पंत के कविता-संग्रह 'उत्तरा' (1948) से ली गयी है। उत्तरा से पूर्व की रचनाओं—युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में कवि नव-निर्माण की ओर अग्रसर है। कवि युग-सृष्टा और दृष्टा तो है ही साथ ही युग-निर्माण के लिए समाज की शोषक शक्तियों का ध्वंस भी करना चाहता है। युगान्त से स्वर्णधूलि तक कवि जिस नव-निर्माण की दुहाई देता आ रहा है, उत्तरा में आकर उसे प्रौढ़ता प्राप्त हो गई है। उत्तरा मानव के वर्तमान संघर्ष और उसके उज्ज्वल भविष्य का गीत है। वास्तव में उत्तरा के गीतों का प्रादुर्भाव ही क्रान्ति के अवसादपूर्ण वातावरण में हुआ है। उत्तरा की प्रस्तावना में पंत जी लिखते हैं "सत्य-अहिंसा मानवीय सत्य का ही सक्रिय गुण है। अहिंसात्मक होना व्यापक अर्थ में संस्कृत होना, मानव बनना है।"

इस प्रकार उत्तरा की प्रायः सभी कविताओं में कवि अपने युग, समाज, राष्ट्र की समस्याओं, उसके संघर्षों के निराकरण के लिए चिन्तित है। अतः वह युग

को युग-मानवता तथा राष्ट्र की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने का संदेश देता है। 'स्वर्ण धूलि' की 15 अगस्त, 1947 शीर्षक कविता में भी स्वतंत्रता को चेतना के रूप में ग्रहण किया है। उत्तरा में भारत की स्वतंत्रता पर स्वाधीन शीर्षक कविता इसी का उदाहरण है। इस गीत विहग कविता में कवि का उद्देश्य युग को युग-चेतना की वाणी देना रहा है। संक्रांति के युग में कवि मानव को आगे बढ़ते रहने का संदेश (संघर्ष) क्रान्ति के साथ-साथ युग संघर्ष का एक सांस्कृतिक पक्ष भी मानता है जो युग को उसकी उच्च-मानवता (आध्यात्मिकता) के विकास की ओर ले जाता है। कवि के शब्दों में **मैं आत्म-एकता में अनिमेष जगाता** (गीत विहग)। इस प्रकार कवि ने गीत विहग कविता में युग मानव को उसके विकास पक्ष की ओर ले जाकर जहाँ एक ओर संघर्ष और क्रान्ति का आह्वान किया है वहीं दूसरी ओर उसकी मानसिक आध्यात्मिक अवस्थाओं में भी आन्तरिक विकास तथा रूपान्तर का उद्योग किया है।

इस प्रकार कवि इस आन्तरिक साधना की अनिवार्यता को राष्ट्रीय परम्परा से मिला देता है और कहता है—मैं अपने अन्तर का प्रकाश बरसा कर जीवन के तम को स्वर्णिम कर नहलाता। यही विशिष्टता है उत्तरा के गीतों (गीत-विहग) की। कवि के शब्दों में **"उत्तरा को सौन्दर्य बोध तथा भाव ऐश्वर्य की दृष्टि से मैं अब तक की अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति मानता हूँ।"**

4. तप रे

यह गीत 'गुँजन' काव्य-संग्रह में से चुना गया है। इसमें पंतजी की जीवन-दृष्टि के विकास पर प्रकाश पड़ता है। कवि व्यक्तिगत पीड़ा का रोदन रोने के स्थान पर, लोकपीड़ा को वाणी देने का प्रयत्न करता है। अब लोक-कल्याण की साधना उसका लक्ष्य है। काव्य के तीन पहलू होते हैं—सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्। वास्तव में तीनों का समन्वय ही उत्तम काव्य की कसौटी है। प्रस्तुत रचना में 'शिवम्' का प्रतिपादन प्रमुख रूप से हुआ है।

5. धेनुएं

'धेनुएं, कविता पंत जी की नवीनतम प्रकाशित रचना **'कला और बूढ़ा चाँद'** से ली गई है। इसमें जैसा कि कवि ने लिखा है उन्होंने छंदों की पायल उतार दी है। इसमें काव्याभिव्यक्ति के लिए कवि ने जिस माध्यम को स्वीकार किया है, उसका

पूर्व रचनाओं में अब तक अभाव था। एक प्रकार से इसे गद्य-काव्य कहना अधिक उचित होगा। 'कला और बूढ़ा चाँद' की रचनाएँ जीवन्त सत्य की अभिव्यंजना से पूर्ण हैं जिन्हें पढ़कर कवि की सहज स्फुरण की वृत्ति का ज्ञान होता है। इसलिए कवि पंत ने इसे **'रश्मिपदी'** काव्य कहा है। इसमें कवि ने प्रतीकों के माध्यम से जीवन की गहन अभिव्यक्ति की है। इसकी कविताओं को पढ़ने से ऐसा लगता है मानो कवि अनुभूति से ऐसे स्तर पर पहुँच गया है जहाँ शब्द के प्रतीक उसकी अभिव्यक्ति में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। धेनुएँ कविता में कवि ने नदियों के कलरव का, उसमें उठते फेन-गुच्छ तथा सागर में उनके (नदियों) समविष्ट होने का बहुत आकर्षक चित्रण किया है।

तुम्हारा...... ...भीतर है।

तुम्हारे जीवन का सत्य तुम्हारे अंतर्मन में ही निहित है। सत्य की खोज जीवन से इतर नहीं है। इन पंक्तियों द्वारा कवि ने मनुष्यता के गौरव के साथ-साथ मानवता की उदात्तता की ओर संकेत किया है। नदियाँ जिस प्रकार समुद्र में समाहित होकर अपना अस्तित्व ही समाप्त कर देती हैं। कवि का संकेत है कि मनुष्य को अपना अस्तित्व स्वयं सुरक्षित रखना चाहिए। उसका सत्य उसके अन्दर निहित है। उसे क्षणिक सागर (समुद्र) में समाविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

ओ दूध धार...... हूँ।

अन्त में कवि धेनु को प्रतीक रूप में अपनाकर उसकी प्रेरणा द्वारा मानवता की प्राप्ति का मार्ग ग्रहण करना चाहता है। यह कवि की प्रगतिवादी कविता का अच्छा उदाहरण है। इस कविता में दार्शनिक विचार एवं औदात्य जीवन-साधना की सहज स्फुरण अभिव्यक्ति, आकर्षक प्रतीकों के संचयन एवं प्रयोग की सृजन-शक्ति निःसंदेह असाधारण है।

विशेष—प्रतीकों का सटीक प्रयोग असाधारण है। कविताओं को छोटी-बड़ी पंक्तियों में लिखकर कवि ने गद्य-काव्य का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। यह कवि की नवीनतम रचनाओं का एक नमूना है जिसका पूर्ववर्ती रचनाओं में अब तक अभाव था। कवि के शब्दों में **"मैं शब्दों की इकाइयों को रौंदकर संकेतों में प्रतीकों में बोलूंगा, उनके पंखों को असीम के पार फैलाऊँगा।"**

17. महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नगर में एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ। उनकी उच्चतर शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई जहाँ से उन्होंने संस्कृत में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। लगभग उन्हीं दिनों हिंदी के माध्यम से कन्याओं को साहित्य और संस्कृति की शिक्षा देने के उद्देश्य से प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना हुई जिसकी पहली प्राचार्या के रूप में महादेवी जी को नियुक्त किया गया। स्थापना से लेकर कई दशक तक विद्यापीठ पर निरंतर महादेवी जी का वरदहस्त रहा और लम्बे समय तक वे उसके कुलाधिपति पद पर अधिष्ठित थीं।

महादेवी जी का जीवन साहित्य और कला के प्रति समर्पित एकांत साधना का जीवन रहा है। फिर भी अपने कृती जीवन में उन्हें सभी प्रकार का मान-सम्मान प्राप्त होता रहा है। साहित्यिक जीवन के आरम्भ में ही उन्हें सेक्सरिया पुरस्कार से सम्मानित किया गया और कई वर्ष तक वे हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिका **'चाँद'** की संपादिका रहीं। इसके बाद से मंगलाप्रसाद पारितोषिक, फिर स्वतंत्र भारत में पद्मभूषण अलंकार से विभूषित और उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की सदस्या मनोनीत हुईं। साहित्यिक क्षेत्र में महादेवी जी कई दशकों तक सक्रिय थीं और उनकी काव्यमयी ओजस्वी वाणी को आज भी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक समारोहों में प्राय: स्मरण किया जाता है।

महादेवी वर्मा प्रकृति से कवि हैं, किंतु चित्रमय गद्य में रचित उनके संस्मरण भी कला की दृष्टि से कम मूल्यवान नहीं हैं—उधर अपनी अमूर्त भावनाओं को रूपायित करने के लिए रंग-रेखा में उन्होंने जो चित्र अंकित किये हैं उनकी भी अपनी सार्थकता है। महादेवी का कृतित्व परिमाण में अधिक विपुल नहीं है। उनके कुल पाँच गीत संग्रह प्रकाशित हुए हैं :—**नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत** और **दीपशिखा**, जिन्हें उनकी काव्य-चेतना के विकास चरण माना जा सकता है। इनमें पहले चार पूरी साज-सज्जा और गुरु-गंभीर भूमिका के साथ **यामा** में संकलित हैं। गद्य-संकलन हैं—**शृंखला की कड़ियाँ, अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी** और **मेरा परिवार**। 'शृंखला की कड़ियाँ' में भारतीय नारी की करुण दशा और दूसरी ओर उसकी प्रच्छन्न शक्ति तथा गरिमा का उच्छ्वासपूर्ण चित्रण है। **अतीत के चलचित्र** और **स्मृति की रेखाएँ** में मार्मिक रेखाचित्र, **पथ के साथी** में आधुनिक हिंदी-साहित्य के शीर्षस्थ कवि-कलाकारों के भाव स्निग्ध संस्मरण हैं और **अपना परिवार** में उनके अपने पालित पशु-पक्षियों के शब्द-चित्र हैं। जीवन के शाश्वत मूल्यों से

पोषित उनके साहित्य-कला-विषयक विचार साहित्यकार की आस्था के नाम से प्रकाशित हैं। इन सभी कृतियों की रचना प्रायः दस-बारह वर्ष की कालावधि में ही हुई है।

महादेवी प्रगीता कवि हैं। स्वभावतः उनके काव्य का मुख्य विषय प्रेम है। इस प्रेम के वास्तविक स्वरूप के विषय में कुछ मतभेद रहा है। छायावाद के उत्कर्ष-काल के कतिपय उत्साही आलोचकों ने इस पर अध्यात्म तथा रहस्यवाद का रंग चढ़ाने का प्रयत्न किया, किंतु विवेकशील पाठक और सुधी-आलोचक यह मानने को तैयार नहीं हुए कि उनके समय के किसी कवि का ब्रह्म के साथ प्रत्यक्ष या यथार्थ रूप में रागात्मक संबंध हो सकता है।

महादेवी के काव्य का केंद्रीय भाव विरह है—विरह अर्थात् अभुक्त या निराश प्रेम, जो अमूर्त अथवा कल्पित आलंबन के प्रति अनुराग की स्वाभाविक नियति है। अतः बिम्ब उनके विधान का निर्माण अंधकार और प्रकाश के प्रतीकों से हुआ है: अंधकार के बिंब हैं—संध्या, रात्रि, मेघमाला, पावस, आकाश, छाया, जलधारा, सागर, प्रलय, आदि और प्रकाश के बिंब हैं—दीपशिखा, विद्युत, नक्षत्र, चंद्र, कमल, आदि। नींद अवसाद की व्यंजक है और स्वप्न प्रेम का। तम और प्रकाश के इन प्रतीक-रूपों के बहुविध संयोजन-वियोजन के द्वारा महादेवीजी ने अपने चित्र-विचित्र बिंब-विधान की रचना की है। ये सभी बिंब मिलकर अंत में दीपशिखा के केंद्रीय बिंब में समेकित हो जाते हैं जो महादेवी की काव्य, चेतना का आद्य प्रतीक हैं। कुछ आलोचकों की शिकायत है कि महादेवी के कला-प्रसाधन अत्यंत सीमित हैं—उनमें वैविध्य नहीं है। यह ठीक है कि इनका चयन जीवन के सीमित क्षेत्र से हुआ है, अतः उनकी संख्या में वैविध्य-विस्तार नहीं है, किंतु उनकी संयोजना और गुंफन में निश्चय ही सुरुचिपूर्ण वैचित्र्य है। उपकरण वे ही हैं पर उनका विन्यास सर्वत्र भिन्न है। महादेवी कहीं भी चित्र की पुनरावृत्ति नहीं करतीं।

महादेवी की कला चित्रमय है। शब्दों के माध्यम से ही नहीं, रंग-रेखा के माध्यम से भी उन्होंने मोहक चित्र अंकित किये हैं। उनके अनेक गीतों के साथ संलग्न चित्र वस्तुतः उनके भाव-चित्रों के ही मूर्तरूप हैं। ये सभी चित्र कमल-दल पर किरण अंकित गीतिमय चित्र हैं जिनकी रेखाएँ सूक्ष्म-तर, रंग हल्के और कोमल हैं। निराला के चित्र आकाश के फलक पर इन्द्रधनुष के रंगों से अंकित विराट चित्र हैं। पंत की कला रत्नकार की कला है—वे रंग-बिरंगी मणियों के सूक्ष्म विन्यास से चित्र तैयार करते हैं। महादेवी के चित्र प्रायः छाया-प्रकाश के चित्र हैं जिनकी छाया वासंती रजनी की हल्की रंगीन छाया है और प्रकाश दीपक का कोमल प्रकाश है।

महादेवी की भाषा लाक्षणिक और प्रतीकात्मक है। आवेग और आवेश का दवाब न होने से अभिधा पर आश्रित ऋजु-सरल प्रयोग उसमें अधिक नहीं है, किंतु सूक्ष्म-तर अनुभूति और रंगमय कल्पना को अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त लाक्षणिक प्रसाधन उसे आरंभ से ही उपलब्ध रहे हैं। यह भाषा निश्चय ही संस्कृत-निष्ठ भाषा है, जिसमें तत्सम शब्दों की प्रधानता है। किंतु ये सभी शब्द सामान्य व्यवहार के परिचित एवं प्रचलित शब्द हैं जिनका चयन गीतमय कोमलता के आधार पर हुआ है। इधर प्रगति शैली के अनुकूल भाषा के मार्दव की रक्षा के लिए तद्भव शब्दों का भी प्रयोग मुक्त भाव से किया गया है, और लोक-गीतों का स्पर्श देने के निमित्त देशज शब्द भी यथास्थान गूँथ दिये हैं। इस प्रकार महादेवी की काव्य-भाषा में अपूर्व सुकुमारता तथा स्निग्धता का समावेश हो गया है, स्वर-तंतुओं में गुंफित शब्दावली रेशम पर मोतियों की तरह ढुलकती जाती है।

हिंदी काव्य में, वरन् कहना चाहिए कि भारतीय काव्य में—महादेवी जी का गौरवपूर्ण स्थान है। आधुनिक हिंदी साहित्य की उपलब्धि का मानदंड है छायावाद का काव्य, छायावाद का सार-सर्वस्व है उसकी प्रगीत कला और प्रगीत का अत्यन्त मधुर रूप है, गीत। महादेवी ने अपनी परिष्कृत सौंदर्य-संवेदना और समृद्ध शिल्पविधान के द्वारा गीत-कला को चरम उत्कर्ष प्रदान किया है। भारतीय वाङ्मय में वैष्णव कवियों से लेकर रवीन्द्रनाथ और निराला तक गीतकारों की शानदार परम्परा रही है। महादेवी ने अपने इस समृद्ध रिक्थ का भरपूर उपयोग ही नहीं किया, वरन् उसका गुणात्मक विकास भी किया है।

1. मैं नीर-भरी दुःख की बदली

यह गीत महादेवी वर्मा के कविता-संग्रह सांध्यगीत से संकलित है। सांध्य-गीत कवयित्री का चौथा गीत संग्रह है। इस संग्रह में सन् 1934 से 1936 ई० तक के लिखित गीत संग्रहीत हैं। इसमें मिलन-विरह, आशा-निराशा, ध्वंस-निर्माण आदि विरोधी भावों का एक साथ समन्वय हुआ है। महादेवी जी के प्रायः सभी गीत भावप्रधान हैं। उनके विविध गीतों में व्यथा, पीड़ा, अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन आदि भावों की प्रधानता है। उनका प्रणय दुःख प्रधान है। वास्तव में विरह कवयित्री का आराध्य बन गया है—मिलन का मत नाम लो, मैं चिर विरह में हूँ। किंतु विशिष्टता इस बात की है कि उनका दुःखवाद मात्र विरह की उसाँसों में ही समाप्त नहीं हो गया वरन् समाज-कल्याण की भावना से सम्पृक्त है।

मैं नीर..........मचली।

शब्दार्थ—स्पन्दन=स्फुरण, अंगों का धीरे-धीरे काँपना। **निस्पन्दन**=स्थिरता। **क्रन्दन**=रुदन। **निर्झरणी**=नदी।

भावार्थ—यहाँ कवयित्री ने बदली को आत्मा और नीर को प्रेम का प्रतीक माना है। कवयित्री अपने जीवन की तुलना बदली से करते हुए कहती है कि मेरा जीवन दु:ख तथा वेदना से घिरा हुआ है। जिस प्रकार बदली में पानी भरा रहता है, उसी प्रकार मेरी आँखें सर्वदा अश्रुपूर्ण रहती हैं। जिस प्रकार घटा स्वयं को गलाकर सृष्टि को सुख और शीतलता प्रदान करती है, उसी प्रकार कवयित्री स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन को मंगलमय बनाना चाहती है। संपूर्ण गीत में कवयित्री चिर-विरह में लीन रहते हुए अपने प्रेम को निरन्तर बाँटते रहना चाहती है। उसके प्रतिदान में वे स्वयं किसी सुख की आकांक्षा नहीं करतीं।

मेरा पग-पग........आज चली।

शब्दार्थ—दुकूल=दुपट्टा। **भृकुटि**=भौंह। **अविरल**=निरंतर। **सुधि**=स्मृति। **सिहरन**=कम्पन। **नभ**=आकाश।

विस्तृत नभ........चली।

बदली के माध्यम से अपने जीवन की व्याख्या करती हुई महादेवी जी कहती हैं कि बदली आकाश में रहती है, किन्तु आकाश का कोई भी कोना उसका अपना नहीं होता। वह बदली तो इधर-उधर भ्रमण करती रहती है। उसका परिचय और इतिहास तो केवल इतना ही है कि वह अभी-अभी उमड़ी थी और देखते ही देखते उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। इसी प्रकार महादेवीजी अपने जीवन के विषय में कहती हैं कि इस विस्तृत संसार से मेरा अपना कहने को कुछ भी नहीं है, मेरा तो परिचय मात्र इतना ही है कि कल मेरा आगमन हुआ था और आज ही अस्तित्व समाप्त हो चला।

इस गीत के आधार पर महादेवी जी को प्राय: पीड़ावादी, पलायनवादी कहा गया है।

2. पंथ होने दो अपरिचित

प्रस्तुत गीत दीपशिखा संग्रह से लिया गया है। इस संग्रह में सन् 1936 के बाद के गीत संग्रहीत हैं। दीपशिखा का प्रतीकार्थ है—स्वयं मिटकर दूसरे के कष्टों

का निवारण। जिस प्रकार दीप जलकर दूसरों को प्रकाश देता है, उसी प्रकार स्वयं मिटकर समष्टि को सुखी बनाने की भावना दीपशिखा के गीतों में पायी जाती है। निराशा और अवसाद का जो स्वर यामा, नीहार, रश्मि, नीरजा, और सांध्य गीत में मिलता है वह दीपशिखा में नहीं है। यहाँ आकर तो कवयित्री भीषणतम संघर्षों से जूझने को तैयार हैं। वे विश्वास पूर्वक कहती हैं—

दूसरी होगी कहानी,

शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी।

शब्दार्थ—अमा=अमावस्था। आर्द्र=गीली। शूल=काँटा। अंक संसृति=संसार की गोद। हाट=बाजार। भ्रू-भंगिमा=भौंहों की वक्रता।

और होंगे····रूखे=वे नेत्र कोई दूसरे होंगे जिनका स्नेह रिक्त हो चुका हो और जिनकी पुतलियों का तेज नष्ट हो गया है।

आर्द्र······दीप खेला=जब तक इस प्राणदीपक में स्नेह विद्यमान है तब तक जीवन के झंझावत मुझे आतंकित नहीं कर सकते।

दुखव्रती=मेरे चरणों ने तो दुःख सहने का व्रत धारण कर रखा है।

बाँध देंगे······बेला=मेरे चरण निरन्तर अपनी दृढ़ता से बढ़ते हुए अंधकार को प्रकाश में बदल देंगे।

हास··········सहे जो=यहाँ बसंत हास और पतझ़ को भ्रूभंग बताया गया है।

गीत परिचय—प्रिय पंथ से अपरिचित और अनेकानेक कष्टों से समन्वित होने पर भी निरन्तर आगे बढ़ते रहने का दृढ़ संकल्प लेकर चलने वाली महादेवी जी कहती हैं कि प्रिय-प्राप्ति का मार्ग भले ही अपरिचित एवं पूर्ण हो लेकिन मेरे चरण निराश होकर लौटने वाले नहीं हैं। वे तो सतत् आगे बढ़ते जायेंगे। वे कोई और साधक होंगे जिनकी साधना शून्य में विलीन हो गई हो। मेरा अस्तित्व समाप्त नहीं हो सकता। जीवन की यह विभीषिका मुझे आतंकित नहीं कर सकती। यद्यपि मेरा साधना-पथ अपरिचित है और प्राण पथिक अकेला है, तो भी मुझे विश्वास है कि एक न एक दिन प्रियतम को अवश्य पा लूंगी।

संपूर्ण गीत में कवयित्री ने आगे बढ़ते रहने का संदेश दिया है। महादेवीजी की पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा दीपशिखा अपने विकासक्रम में एक नवीन परिवर्तन का उदाहरण अवश्य है इसीलिए डॉ० नगेन्द्र ने अपने इतिहास में दीपशिखा को उत्तर छायावाद के अन्तर्गत स्थान दिया।

भाषा का लाक्षणिक प्रयोग छायावादी शैली के अनुरूप ही हुआ है। साथ ही संयोग शृंगार का सुन्दर चित्रण किया है।

3. हे चिर महान् !

इस गीत में हिमालय की महत्ता का वर्णन किया गया है। हिमालय आज भी भारत की संस्कृति का भव्य प्रतीक है। हिमालय की भव्यता एवं महानता को देखकर ही उसे शान्ति-क्षेत्र बनाने का प्रयास आज भी महानुभावों द्वारा हो रहा है।

शब्दार्थ—सेली=स्त्रियों का एक गहना। **परिमल**=कुमकुम, चंदन आदि के मर्दन से सुगन्ध। **बतास**=वायु। **रागहीन**=प्रीति रहित। **निधान**=आधार, आश्रय। **अंक**=गोद, चिह्न। **कुलिश**=वज्र, हीरा मानिक। **विसन**=उदासीन। **थाह**=गहराई की सीमा। **पावस**=वर्षा ऋतु।

गीत परिचय—प्रस्तुत गीत में कवयित्री हिमालय की महत्ता का वर्णन करती हुई कहती हैं कि हे हिमालय ! तू सदा से महान् है अर्थात् अनादिकाल से तेरी महानता का गुणगान है। हिमालय की योगी के रूप में परिकल्पना करते हुए कवयित्री कहती है कि जैसे योगी माला धारण किए हुए रहता है और उसके शरीर पर भस्म लगी होती है उसी प्रकार इन्द्रधनुष हिमालय की सेली पहनाता हुआ प्रतीत होता है। वायु उसे सुगन्धित करती है, पर ऐसी भोग समृद्धि के बीच में हिमालय वीतराग योगी के समान अनासक्त भाव से खड़ा है। सैकड़ों झंझावात भी उसको न हिला सके। सुख-दुःख में समान रहने वाले एवं वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ये हिमालय की महत्ता को प्रमाणित करते हैं।

वह चला······पुकार।

जहाँ एक ओर हिमालय झंझावातों से विचलित नहीं होता वहीं दूसरी ओर संसार की पीड़ा से द्रवीभूत हो उठता है और उसके प्रभाव से नदियाँ प्रवाहित होने लगती हैं। इस प्रकार सुख-दुःख में साम्यता का प्रतिपादन कर महादेवीजी ने हिमालय को योगी के रूप में प्रस्तुत किया है।

मेरे जीवन……विहान ।

अंत में कवयित्री हिमालय के साधनापूर्ण औदात्य जीवन में अपने ज़ीवन को समाहित क़रना चाहती हैं । मेरा जीवन तेरे समान साधनापूर्ण बनकर उनके मध्य आने वाली बाधाओं से विचलित न हो ।

इस प्रकार सम्पूर्ण गीत में कवयित्री ने हिमालय का मानवीकृत रूप में वर्णन किया है ।

4. कन-कन में जब छायी थी

प्रस्तुत गीत प्रणय रहस्यवाद का अच्छा उदाहरण है । गीत के प्रारंभिक स्तर पर अवश्य लौकिक प्रणय-सा भाव दिखाई देता है लेकिन संपूर्ण गीत रहस्यवादी है । इसमें जिस निर्मम शब्द का संकेत किया गया है वह आध्यात्मिक अनुभूति मात्र है । पूरे गीत में प्रणय के वियोग-पक्ष का प्राधान्य है ।

जिन चरणों की नख-आभा……

कवयित्री अपने प्रियतम को किसी नाम से संबोधित नहीं करती क्योंकि उसका प्रियतम अरूप और अनाम है । इन पंक्तियों में **'जिन'** शब्द का प्रयोग सटीक हुआ है ।

साम्राज्य……पीड़ा का ।

उस चितवन ने वियोग की पीड़ा को जन्म दिया । उसमें रहस्यवादी प्रयोग का आभास होता है । क्योंकि प्रियतम के प्रति प्रेम में संयोग-वियोग दोनों अवस्थाओं का चित्रण करते हुए भी कहीं भी आलिंगन, उन्माद जैसी अवस्था का भाव नहीं आने पाया है ।

मेरी आँहें……अँधेरा ।

कवयित्री का यह भाव कि मैं अपने प्रणय की पीड़ा को किसी के सामने नहीं कहती, किन्तु यह पीड़ा ही जीवन का सार तत्व है । अर्थात् प्रियतम का स्मरण एवं उसकी प्रणयानुभूति से प्राप्त वेदना ही उसके जीवन का आधार है । उसके अभाव में उसका अस्तित्व नहीं ।

संपूर्ण गीत में प्रणय के वियोग पक्ष का प्राधान्य है । कवि ने आध्यात्मिक संयोग का भी संकेत किया है ।

5. मधुर-मधुर मेरे दीपक जल

शब्दार्थ—आलोकित=प्रकाशित। **सौरभ**=सुगंधित। **विपुल**=बड़ा। **अपरिमित**=अत्यधिक। **नूतन**=नया, नवीन। **शलभ**=पतंग, पतिंगा। **द्रुम**=पेड़, वृक्ष। **वसुधा**=पृथ्वी। **निश्वास**=बहिर्मुखी श्वास, लंबी सांस। **सुभग**=भाग्यवान। **असीम**=अपार, जिसकी सीमा न हो। **स्मित**=मंद हास, मुसकान।

गीत-परिचय—प्रस्तुत गीत में प्रयुक्त दीपक कवयित्री की परोपकार, वेदना तथा त्याग की भावना का प्रतीक है। हे मेरे मधुर दीपक, तू सदैव जलता रह तथा मेरे प्रियतम के मार्ग को अपने प्रकाश से आलोकित कर ताकि उन्हें मेरे पास तक पहुँचने में किसी प्रकार की असुविधा न हो। तू धूप बनकर अपार सौरभ फैला दे, अपने मोम जैसे शरीर को गलाकर संसार को प्रकाश दे। कवयित्री के कहने का यह भाव है कि वेदना के सहर्ष स्वीकार से ही प्रियतम की प्राप्ति हो सकती है। अर्थात् स्वयं को मिटाकर कवयित्री समाज को सुख-सम्पन्न बनाने की इच्छा व्यक्त कर रही है। इसीलिए वे दीपक से बार-बार जलते रहने का भाव व्यक्त करती हुई कहती हैं कि संसार रूपी पतंगा इसलिए दुखी है क्योंकि वह तुझमें मिलकर जल नहीं पाया। कहने का भाव यह है कि संसार में त्याग तथा परोपकार की भावना का अभाव है। अतः उसे इन स्वार्थमयी भावनाओं का त्याग कर 'दीपक' के सदृश परोपकार तथा स्व-सुख महिमा के परित्याग की भावना को अपनाना चाहिए।

द्रुम········के दीपक जल।

कवयित्री दीपक को संबोधित करती हुई कहती हैं कि वृक्षों की हरीतिमा में एवं पृथ्वी के अचेतन हृदय में भी सन्तापों की हलचल छिपी हुई है। अर्थात् दुःख तथा वेदना का साम्राज्य समस्त सृष्टि में है। तू मेरी निश्वासों से भयभीत न हो। महादेवी जी के कहने का यह भाव है कि मैं अपनी दुःखपूर्ण अवस्था में भी परोपकार तथा त्याग की भावना का परित्याग नहीं कर सकती।

विशेष—संपूर्ण गीत में कवयित्री ने दीपक जो परोपकार, वेदना तथा त्याग की भावना का प्रतीक है, उसके माध्यम से समस्त समाज को परोपकार तथा निःस्वार्थ जीवन-मार्ग पर चलने का दिव्य संदेश दिया है।

छायावादी प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग भी प्रस्तुत गीत की विशिष्टता है।

18. रामधारी सिंह दिनकर

राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गायक कविवर रामधारीसिंह दिनकर का जन्म बिहार राज्य के मुंगेर जनपद के अंतर्गत सिमरिया नामक गाँव में 30 सितम्बर, 1908 ई० को हुआ।

दिनकर जी के पिता श्री रविसिंह साधारण, अत्यन्त सरल एवं समुदार कृषक थे। उनका स्वर्गवास उस समय हो गया जब दिनकर जी केवल दो साल के थे। दिनकर जी तीन भाइयों में से मँझले थे। उनका लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध उनकी विधवा माता ने किया। दिनकरजी की प्राथमिक शिक्षा गाँव में ही हुई, मैट्रिक की परीक्षा उन्होंने गाँव के पास मोकामघाट के हाईस्कूल से 1928 में पास की।

ममतामयी माता मनसादेवी ने गृहस्थी के इस गुरुत्तर दायित्व को बड़े धैर्य एवं साहस के साथ निभाया। दिनकर ने अपनी माँ के विषय में लिखा है—"माँ तो मूर्तिमती करुणा है। उन्होंने हम लोगों के लिए अपने को होम दिया। मुझे ऐसी कोई घटना नहीं याद है, जिससे मुझे लगे कि मुझे कोई बड़ा अभाव झेलना पड़ा था।"
—(**युगचारण दिनकर** : डॉ० सा० सिन्हा)

पटना कॉलेज से सन् 1932-33 में बी० ए० किया और फिर हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक हो गये। उसके बाद सीतामढ़ी में सब-रजिस्ट्रार बने। द्वितीय महायुद्ध में राजकीय प्रचार विभाग में आ गये। उन दिनों भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था और अंग्रेज सरकार का कोई भी कर्मचारी उस सरकार के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता था। तो भी दिनकर ने राजकीय सेवा के काल में स्वदेशानुराग की भावना से ओत-प्रोत, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति की भावना से परिपूर्ण और क्रांति की भावना जगाने वाली रचनाएँ लिखीं।

सन् 1950 में उन्हें मुजफ्फरपुर के स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिंदी विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1952 में इन्हें राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया गया और दिनकरजी दिल्ली आकर रहने लगे। दिनकरजी की काव्य-साधना निरन्तर जारी रही। सन् 1961 में इनका बहुचर्चित काव्य 'उर्वशी' प्रकाशित हुआ। 'उर्वशी' को 1961-65 के बीच प्रकाशित भारतीय भाषाओं के सर्जनात्मक साहित्य में सर्वश्रेष्ठ माना गया तथा 1972 के 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' द्वारा सम्मानित किया गया। 1964 में इन्हें केन्द्रीय सरकार की हिन्दी समिति का परामर्शदाता बनाया

गया। इस पद से अवकाश ग्रहण करने के अनन्तर ये पटना में रहने लगे। इनके जवान बेटे की मृत्यु ने इस ओजस्वी व्यक्तित्व को सहसा खण्डित कर दिया और तिरुपति के देव विग्रह को अपनी व्यथा-कथा समर्पित करते हुए 'दिनकर' 24 अप्रेल सन् 1974 को अस्त हो गये।

दिनकर ने छायावाद की अस्पष्ट और वायवीय विषय-वस्तु तथा रूपविधानों वाली काव्य-परम्परा से विलग होकर आधुनिक हिन्दी कविता को एक ऐसी ओजमयी वाणी तथा भाषा-शैली दी जो पुनरुत्थानशील राष्ट्रीयता की अदम्य प्रेरणाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ हुई। वे हिन्दी साहित्य में एक अपूर्व घटना तथ्य जैसे बन कर आये, क्योंकि जिस सशक्तता से उनकी लेखनी ललकार और विद्रोह का झण्डा ऊँचा कर सकी उसी से सुशान्त चिन्तन और गीतात्मक भाषा-शैली में मानव-मन के कोमल भावों को प्रकट करती आयी।

हिन्दी कविता के छायावादोत्तर युग की सबसे बड़ी घटना दिनकर और बच्चन का आविर्भाव थी। जब खड़ी बोली अन्ततोगत्वा कविता की भाषा बन गई, हिन्दी कविता से वह कोमलता छूट गई जो तीन सौ वर्षों की साधना से उसे सुलभ हुई। स्वयं दिनकर जी के अनुसार, "छायावादी युग में पाठकों के बीच हिन्दी कविता की बहुत कुछ प्रतिष्ठा राष्ट्रीय कविताओं ने रखी है।"

दिनकर का उदय उस धारा से हुआ जो भारतेन्दु, मैथिलीशरण, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा नवीन से होकर बहती आ रही थी।

दिनकर की रसग्राहिणी शिराएँ संस्कृत और बंगला से भी संपृक्त थीं, अतएव एक ओर जहाँ उनमें कालिदास और रवीन्द्र का प्रभाव पहुँचा, वहाँ दूसरी ओर काज़ी नज़रुल इस्लाम का आक्रामक और संक्रामक गर्जन और सिंहनाद भी उनकी आवाज की त्रिवेणी में आ मिला। नज़रुल, जोश और दिनकर भारत की क्रान्तिकारी कविता के बृहत्त्रयी के कवि हैं और इन तीनों कवियों का स्वर बहुत कुछ समान रहा है।

रेणुका, कुरुक्षेत्र, नील कुसुम और उर्वशी

दिनकर-काव्य के चार मुख्य स्तम्भ हैं। रेणुका दिनकर जी की जवानी का उद्घोष है। भारतीय विद्रोह की वाणी के रूप में 'हुँकार' हिन्दी ही नहीं, समस्त

भारतीय भाषाओं में उल्लेख्य ग्रंथ है। कुरुक्षेत्र उन भावनाओं का दर्शन प्रस्तुत करता है जिनका विस्फोट रेणुका और हुँकार में हुआ था। कुरुक्षेत्र की रचना के पीछे उस द्वन्द का हाथ है जो हिंसा-अहिंसा को लेकर देश के अन्तर्मन में चल रहा था। नील कुसुम की कविताएँ सामाजिक उद्देश्यों को प्रधानता नहीं देतीं। रसवन्ती वाली धारा का महान् विस्फोट उर्वशी काव्य में हुआ है। इसमें प्रेम और शृंगार के भावों का चित्रण अत्यन्त ऊँचे धरातल पर किया गया है। दिनकर जी की तीस काव्यकृति और पच्चीस गद्य कृति प्रकाशित हो चुकी हैं।

दिनकर-काव्य को अचूक आह्वान शक्ति और भावात्मक प्रकृति दोनों के सह-भाव के कारण 'दहकते अंगारों पर इन्द्रधनुषों की क्रीड़ा' से उपमित किया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में दिनकर का नाम क्रांति, युद्ध और प्रेम के कवि के रूप में तो अमर रहेगा ही, उर्वशी का मणिकुट्टियम कला-वैभव उनके शिल्प-सामर्थ्य की कहानी भी कहता रहेगा।

1. जनतंत्र का जन्म

इस रचना में कवि डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' ने राजतंत्र के विरुद्ध लोक तंत्र का स्वागत किया है। खेतों, खलिहानों तथा कारखानों में काम करने वाली जनता सिंहासन की सच्ची अधिकारी है, उसे अब राजशाही के जाल में नहीं फँसाया जा सकता, यही भाव समूची रचना में व्यक्त किया गया है।

शब्दार्थ—**सुगबुगा**=जाग्रत होना। **अबोध**=अनजान, बोध रहित। **कसक**=पीड़ा। **वेदना**=दुख। **एहसास**=अनुभव। **दुधमुँही**=दूध पीने वाली अर्थात् वहुत छोटी। **बवण्डर**=तूफान। **भृकुटि चढ़ाती है**=नाराज हीती है। (मुहावरा)। **तिमिर**=अँधेरा। **अभिषेक**=तिलक।

2. अभिनव मनुष्य

दिनकर की सुप्रसिद्ध कृति 'कुरुक्षेत्र' के अंतिम सर्ग से इस कविता को चुना गया है। इस रचना में आधुनिक मनुष्य की भौतिक उन्नति की विडम्बना की ओर

संकेत किया गया है जो हार्दिक और आध्यात्मिक विकास के अभाव में अभिशाप बन गयी है। नित्य नूतनता का लोभी यह अभिनव मनुष्य यह नहीं समझ पाया है कि पड़ोसी के दुःख-दर्द से अछूता और दूर रहकर अज्ञात ग्रह-नक्षत्रों की खोज और यात्रा व्यर्थ है। धरती पर रहना तथा धरती के मनुष्यों को आत्मीयता के घेरे में समेट लेना ही अभिनव मनुष्य की वास्तविक जय यात्रा है।

मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है, सृष्टि का सौन्दर्य है। आधुनिकतम वैज्ञानिक प्रगति ने जहाँ एक ओर मनुष्य को ऊँचा उठाया है वहीं दूसरी ओर उसे मानवता विरोधी शक्ति भी दी है। विश्व के हित के लिए उसे सुमन और शूल को पहचानना होगा। विज्ञान और विवेक को मिलाकर नवीन जनहित वाली राह को निकालना होगा। विश्व शांति का स्वप्न अधूरा ही है। अभिनव को इसे पूरा करना है।

शब्दार्थ—**अवधार्य**=धारण कर स्वीकार कर। **शब्दगुण**=शब्द को ग्रहण करना ही जिसका गुण है। **दिक्काल**=दिशा और समय। **गुह्यतम**=अत्यंत गुप्त, रहस्यमय। **सपरीक्षिता**—भली प्रकार देखी-भाली, परखी हुई। **लहु हस्तामलक**=हाथ पर रखे हुए छोटे आँवले जैसी।

3. पुरुरवा

पुरुरवा वह मनुष्य है जो द्वन्द्वों से पीड़ित है। वह सुख भोगता है और सुख को छोड़ना चाहता है। वह नारी प्रेम में पड़ता है और नारी का अतिक्रमण करना चाहता है।

'उर्वशी' काव्य के तृतीय अंक से उद्धृत पुरुरवा के इस कथन में इस सत्य पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि जो मेधावी, परम प्रतापी एवं प्रचण्ड शक्तिशाली पुरुष कठोर से कठोर आघात को सहज सह लेता है वह नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम के आगे आत्म-समर्पण क्यों कर देता है? सहज आकर्षण, छवि, और प्रणय की अनुभूति पुरुष की दुर्दान्तता को पिघलाकर कैसे रस की धार परिवर्तित कर देती है?

शब्दार्थ—**उद्दाम**=प्रबल, प्रचण्ड। **उत्ताल**=ऊँची लहरों वाला। **मर्त्य**=मरणशील, नश्वर। **तूर्य**=तुरही, दुन्दुभी। **स्पन्दन**=रथ। **आयुध**=अस्त्र, वज्र।

4. उर्वशी

उर्वशी देवी है, जिसमें कोई द्वन्द नहीं है। वह दैहिक सुख भोगने के उद्देश्य से पृथ्वी पर आई है। इन सारे द्वन्द्वों के एकत्र हो जाने से उर्वशी अत्यन्त गहन काव्य का कारण हो उठी है।

'उर्वशी' के तीसरे अंक में पुरुरवा को आत्म-परिचय देती हुई अलौकिक सौन्दर्य सम्पन्न उर्वशी कहती है कि प्रणय और सौन्दर्य-प्रिय नर के अतृप्त हृदय से मेरा उद्‌भव हुआ है तथा दुर्दान्त जीव भी मुझे देखकर कोमल, सरल हो जाते हैं। संस्कृति, सभ्यता और साहित्य से मैं ही प्रकट होती हूँ।

शब्दार्थ—देहभाव=शरीर की स्थिति। **फेनांशुक**=फेन रूपी वस्त्र। **इतिवृत्तहीन**=कथा या इतिहास से रहित। **समुद्‌भूत**=निकली हुई, उत्पन्न। **अमृतवति**=अमृतवर्तिका (बत्ती) सर्प के फन पर लगा टीका, जो बत्ती जैसा लगता है। **उद्धत**=प्रचण्ड। **अदम्य**=जिसका दमन न किया जा सके। **शरभ**=सिंह से भी बलवान एक कल्पित पशु जिसे अष्टपाद कहते हैं। **शार्दूल**=सिंह। **निर्विष**=विष रहित। **भ्रूस्मिति**=भौंहों की मुसकान। **श्लथ**=शिथिल। **शिंजिनी**=धनुष की डोर। **संत्रस्त**=ढीला। **कामना-वह्‌नि**=कामना रूपी आग। **अनवरुद्ध**=बिना किसी रुकावट के। **अप्रतिहत**=बिना रुके हुए। **दुर्निवार**=जिसे रोकना कठिन हो। **पवनान्दोलित**=हवा के द्वारा उठी हुई। **नीहार—आवरण**=ओस के समूह से आवृत।

19. डॉ० हरिवंश राय बच्चन

डॉ० हरिवंश राय बच्चन का जन्म 27 नवम्बर, 1907 को इलाहाबाद में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा इलाहाबाद में ही हुई। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही अंग्रेजी विषय में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर वहीं पन्द्रह वर्ष तक अध्यापन किया। शोधकार्य के लिए केम्ब्रिज विश्वविद्यालय गये और वहाँ से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। तदनन्तर भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिंदी विशेषाधिकारी के पद पर बारह वर्ष तक काम किया। राज्य सभा के छह वर्ष के लिए मनोनीत सदस्य रहे।

कविता में शैशव से ही रुचि होने से छात्र-जीवन से ही कविता लिखना प्रारंभ कर दिया था किन्तु कवि के रूप में 'मधुशाला' शीर्षक पुस्तक से अप्रतिम ख्याति मिली। जीवन और यौवन, सौन्दर्य और प्रेम के कवि रूप में बच्चन जी अपनी रचनाओं से ख्याति के उच्च शिखर पर पहुँचे।

साहित्यिक कृतियाँ

बच्चन जी की 26 काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमें 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'निशा निमंत्रण', 'एकान्त संगीत', 'सतरंगिणी', 'मिलन यामिनी', 'त्रिभंगिमा', 'खादी के फूल', 'दो चट्टानें', 'जाल समेटा' आदि प्रसिद्ध हैं। काव्यानुवाद का भी बच्चन जी ने पर्याप्त काम किया है। जिन पुस्तकों का अनुवाद किया है उनमें खैयाम की 'मधुशाला', 'चौंसठ रूसी कविताएँ' और 'शेक्सपीयर के चार नाटक' प्रसिद्ध हैं।

साहित्यिक सम्मान

डॉ० बच्चन जी को उनकी काव्य-कृतियों पर अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। साहित्य अकादेमी पुरस्कार, दो चट्टानें पुस्तक पर मिला। 'चौंसठ रूसी कविताएँ' कविता संकलन पर सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, ऐफोएवियन राइटर्स कान्फ्रेंस का पुरस्कार सन् 1970 में तथा भारत के राष्ट्रपति की ओर से पद्म भूषण और हिंदी साहित्य सम्मेलन से साहित्यवाचस्पति समिति की मानद उपाधि प्राप्त हुई।

हालावाद सम्राट् (मधुशाला) कवि बच्चन का उदय साहित्य के क्षेत्र में उस समय हुआ जब छायावाद का अवसान तथा प्रगतिवाद का उदय हो रहा था। इन स्थितियों के मध्य बच्चन जिस स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को लेकर काव्य में आए—यही कवि बच्चन की विशिष्टता एवं उनके कवि रूप की प्रसिद्धि का कारण बनी। कवि ने छायावादी, रहस्यवादी काव्यधारा की प्रतिक्रिया में भौतिक सौन्दर्याकर्षण एवं जैविक सुखभोग की लालसा को अपने काव्य की मूल अनुभूति बनाया है। बच्चन के गीतों में एक ओर प्रेम, यौवन, प्रणय, संघर्ष, अवसाद जैसी भावनाएँ हैं तो दूसरी ओर सामाजिक विषमताओं के परिवेश में आत्म-संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते रहने का महत् संदेश भी निहित है। बच्चन के गीत जीवन के यथार्थ, सुख-दुख मिश्रित गीत हैं जिसमें न तो जग की कटु उपेक्षा है और न ही अवसादपूर्ण जीवन से पलायन है 'तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरों का निमंत्रण' (मधुकलश)। बच्चन चाहे हालावादी कवि रहे हों अथवा युग-जीवन के कवि लेकिन भौतिक जीवन के सत्य को उन्होंने कभी नहीं भुलाया—"धिक्कार है समाज की उस संकुचितता को जो हमारे

यौवन को मिटाने का पाप करती है। धिक्कार है समाज के उस मिथ्यात्व को जो हमें जीवित सत्य से अलग करती है।''

बच्चन की प्रसिद्धि अवश्य ही 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' में निहित है लेकिन अब कवि का वह उन्माद धीरे-धीरे वैयक्तिक से सामाजिक, व्यष्टि से समष्टि की ओर क्रमशः व्यापक एवं विकसित हो चला है। 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' और 'आकुल अंतर' इन तीन कृतियों में मूलतः वैयक्तिक विषाद की रागात्मक अभिव्यंजना ही नहीं है वरन् कवि के सामने मूल प्रश्न है कि क्या यह विषाद, संघर्ष, अकेलापन क्या केवल उसका ही है ? इस प्रकार कवि अब आत्म-केंद्रित भावुकता के स्थान पर जगत-गति में अपने को लीन करता हुआ निराशा में आशापूर्ण जीवन को संयोजित करता हुआ कहता है.........

'उठ पड़ा तूफान देखो !
मैं नहीं हैरान देखो'।

यही स्वर आगे 'सतरंगिनी' के गीतों में गुंजित हुआ है।

1. जुगनू

शब्दार्थ—घटा=बादल। **नभ**=आकाश। **औ**=और। **लौ लगाये**=एक ही विषय में लीन। **गर्व**=अभिमान। **निष्ठा**=आस्था, विश्वास। **आतंक**=भय। **समाँ**=माहौल। **प्रभंजन**=तेज हवा, आँधी। **धरा**=पृथ्वी। **प्रणय**=प्रेम। **पन्थ**=रास्ता।

उठी ऐसी........है !

आकाश में भीषण घटाएँ छा गई हैं, जिसके अंधकार से समस्त प्रकाश-रूप चाँद और तारे ढक गए हैं अर्थात् जीवन भीषणतम संघर्षों से पूर्ण बन चुका है लेकिन फिर भी मनुष्य को इससे डिगना नहीं है। इस निराशा में आशा की लौ भी छिपी हुई है जिसे कवि बार-बार मानव में जागृत करता हुआ कह रहा है—

अंधेरी रात में दीपक
जलाये कौन बैठा है !

इन पंक्तियों द्वारा कवि बार-बार व्यक्ति के विषाद में से उसके अस्तित्व की ऊंची आवाज उठाता है।

संपूर्ण गीत में कवि निराशा और आशा, ध्वंस और निर्माण, अविश्वास-विश्वास, अंधकार और प्रकाश एवं प्रलय और प्रणय इन दो विरोधात्मक प्रवृत्तियों के मध्य मानव-जीवन के अस्तित्व की ऊँची आवाज को सँजोये हुए उसे आगे बढ़ने का महत् संदेश देता है। अंत में कवि ने दिखाया है कि प्रलय की उस घनघोर घटा में प्रेमी अपने प्रियतम से मिलन की आशा में उसकी राह देख रहा है। यही विशिष्टता है कवि बच्चन की।

विशेष—सम्पूर्ण कविता का भाव यह है कि मनुष्य को जीवन-संघर्ष, अवसाद-विषाद पर विजय प्राप्त कर अपने जीवन को सदैव आशान्वित बनाये रखना चाहिए। यही आशा की लहर कवि की स्वर-लहरी बनकर 'सतरंगिनी' के गीतों में बरबस फूट पड़ी है। इसके गीतों का स्वर व्यक्ति जीवन के साहस तथा संकल्प के वक्ष से फूटता है। मानव की नव सृजनात्मक आशा युगीन-संघर्षों का दमन करती हुई उसे लौह पुरुष सदृश अडिग रखती है। सम्पूर्ण गीत में कवि बच्चन का यही भाव मुखरित हुआ है।

2. पथ की पहचान

'पथ की पहचान' कविता भी 'सतरंगिनी' कविता संग्रह से ली गई है। 'पथ की पहचान' से तात्पर्य जीवन रूपी मार्ग से है जिस पर चलकर मानव जीवनयापन करता है–उसे (मानव को) उस पथ का ज्ञान अवश्य होना चाहिए अर्थात् जीवन में अनेक संकल्प-विकल्प, आशा-निराशा और अवसाद के क्षण आते रहते हैं, इसके लिए मानव को जीवट बनकर जीवनयापन करना होगा। इस प्रकार विषम परिवेशों और संदर्भों के मध्य संघर्ष और सृजन की भावना का प्रकाशन 'सतरंगिनी' के गीतों में सूक्ष्मता से हुआ है। कवि बार-बार मानव को युग जीवन की जटिलताओं के प्रति सचेत करते हुए उसे सहर्ष सामना करने का आह्वान करता है।

शब्दार्थ—**बटोही**=पथिक। **पंथी**=पथिक, राहगीर। **पंथ**=रास्ता। **अवधान**=धारणा। **सरित**=नदी। **गिरि**=पर्वत। **गह्वर**=गड्ढे। **शर**=तीर। **ध्येय**=उद्देश्य। **दृग-कोरकों**=आँखों के कोने। **उन्मुक्त**=बन्धन मुक्त, स्वतंत्र।

छोड़ पैरों की निशानी

यहाँ कवि का संकेत अतीत के उन आदर्शों की ओर है जिस पर चलकर अनेक पीढ़ियाँ सफलतापूर्वक जीवन पार कर गई हैं। वे आदर्श अवश्य ही आज हमारे लिए उदाहरण बन सकते हैं।

यह बुरा……अवधान कर लें ।

कवि निराशा और अवसादपूर्ण जीवन में आशा का संचार करता हुआ कहता है कि मानव को बाधाओं से झुकना नहीं चाहिए। संघर्ष में ही जीवन की सफलता निहित है। अतः हे पथिक ! जीवन रूपी पथ की यही पहचान है।

विशेष—प्रस्तुत गीत में कवि की विशिष्टता मानव को उसके सुख-दुःख पूर्ण क्षणों की अनुभूति कराकर नव-जीवन, नयी-आशा एवं नए-विश्वास को जगाना है। '**सतरंगिनी**' के गीतों का यही उत्स है।

20. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय का जन्म 7 मार्च, 1911 ई० (फागुन शुक्ल सप्तमी, संवत् 1967) को कसया (जिला देवरिया) में पुरातत्व खुदाई-शिविर में हुआ। बचपन अपने विद्वान् पिता डॉ० हीरानन्द शास्त्री के साथ कश्मीर, बिहार और मद्रास में व्यतीत हुआ। श्रीनगर एवं जम्मू में संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की।

1919 से 1925 ई० के काल में नालन्दा एवं पटना में स्व० काशी प्रसाद जायसवाल, रायबहादुर हीरालाल और राखालदास वन्द्योपाध्याय से स्नेह-सम्पर्क हुआ। स्व० राखालदास वन्द्योपाध्याय से बंगला सीखी। 1921 ई० में उटकमंड (नीलगिरि) में मध्वाचार्य ने यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कराया। 1925 में पंजाब से प्राइवेट मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। इण्टर साइंस (1927) क्रिश्चियन कॉलेज, मद्रास एवं बी० एस० सी० (1929) फारमन कॉलेज, लाहौर से उत्तीर्ण की। मद्रास में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैण्डरसन के साथ टैगोर-मण्डल की स्थापना की। एम० ए० (अंग्रेजी) की पढ़ाई के समय क्रांतिकारी आन्दोलन में फरार हुए और 1930 में गिरफ्तार हुए। चार वर्ष जेल में और दो वर्ष नजरबन्द रहना पड़ा। किसान आन्दोलन में भाग लिया। 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'प्रतीक' और अंग्रेजी त्रैमासिक 'वाक्' का सम्पादन किया। कुछ वर्ष आकाशवाणी में रहे और सन् 1943 से 45 तक सेना में रहे। घुमक्कड़ प्रकृति के वशीभूत होकर अनेक बार अनेक देशों की यात्राएँ की। समाचार साप्ताहिक दिनमान, नया प्रतीक तथा दैनिक नवभारत टाइम्स का सम्पादन किया।

1971-72 में जोधपुर विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य तथा भाषा अनुशीलन विभाग के निदेशक पद पर कार्य किया। 1968 में प्रेस-कमीशन के सदस्य

मनोनीत किये गये। 1962-71 की सर्वश्रेष्ठ कृति **कितनी नावों में कितनी बार** के लिए 1978 का ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया।

अज्ञेय जी की रचनाएँ

(क) कविता—भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, पूर्वा, सुनहले शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ सागरमुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, नदी की बांक पर छाया।

(ख) नाटक—उत्तरप्रियदर्शी।

(ग) कहानियाँ—विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल, ये तेरे प्रतिरूप, अमर वल्लरी और अन्य कहानियाँ, अछूते फूल और अन्य कहानियाँ, कड़ियाँ और अन्य कहानियाँ, जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ।

छोड़ा हुआ रास्ता (सम्पूर्ण कहानियाँ) और लौटती पगडंडियाँ (सम्पूर्ण कहानियाँ)।

(घ) उपन्यास—1. शेखर एक जीवनी, प्रथम और द्वितीय भाग,

2. नदी के द्वीप, और (3) अपने-अपने अजनबी।

(ङ) भ्रमण-वृतान्त—अरे यायावर रहेगा याद, एक बूंद सहसा उछली।

(च) निबन्ध-संग्रह—त्रिशंकु, सबरंग, आत्मनेपद, हिंदी साहित्य, आलबाल, लिखि कागद कोरे, भवन्ती, अन्तरा, अद्यतन, जोग लिखि, संवत्सर, शाश्वती, कहाँ है द्वारिका।

(छ) संपादित ग्रंथ—आधुनिक हिंदी साहित्य, तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक, चौथा सप्तक, पुष्करिणी, नये एकांकी, रूपाम्बरा।

आज की हिन्दी कविता पर अज्ञेय की अद्वितीय काव्य-प्रतिभा की गहरी छाप है। प्रयोगवाद तथा नई कविता को साहित्य-जगत् में प्रतिष्ठित करने का श्रेय अज्ञेय जी को ही है। प्रतिभा सम्पन्न कवि, शैलीकार, कथा-साहित्य को एक महत्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित निबन्धकार, सम्पादक और सफल अध्यापक अज्ञेयजी ने जो भी कुछ लिखा है वह अपने ढंग का अनूठा है। अज्ञेय की रचनाएँ समकालीन साहित्य को तुरन्त प्रभावित करती हैं। एक महत्वपूर्ण साहित्यकार के साथ ही अज्ञेय जी एक अच्छे चित्रकार और सत्यान्वेशी पर्यटक भी हैं।

मानवीय व्यक्तित्व की समस्या अज्ञेय की कविताओं के केन्द्र में रही है। उसे ही अधिक सम्पृक्त एवं सर्जनात्मक रूप में अभिव्यक्त करने की चेष्टा अज्ञेय जी ने सबसे अधिक की है।

"अज्ञेय की कविता उन्हीं की तरह बोलती कम और सोचती ज्यादा है। सूत्र-शैली के खतरे उठाते हुए भी संयत अनुभूति को संयत भाषा में व्यक्त करके अज्ञेय ने हिन्दी की वाग्मी वृत्ति को आपे में रहने की राह सुझाई। मर्यादा और गहराई की सम्भव सीमाओं को टटोलने का भरसक प्रयास उनके यहाँ है।........ अज्ञेय के अन्तर्विधान की अनुरूपता के कारण उनकी छोटी कविताएँ अधिक मार्मिक हैं।........अज्ञेय एक ओर भारत के सांस्कृतिक चैतन्य के आधुनिक प्रतिनिधि रचनाकारों में हैं, दूसरी ओर उन्होंने वैश्विक चेतना के समावेश से हिन्दी को विश्व स्तर पर उठाने की कोशिशों को बल पहुँचाया है। "(संवाद—डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय)"

1. हिरोशिमा

द्वितीय विश्व-युद्ध के अन्त में अमरीका ने जापान के नागासाकी और हिरोशिमा नगरों पर अणुबम गिराकर जो भीषण नर-संहार किया था, उसका वर्णन प्रस्तुत रचना में किया गया है।

यह कविता सुनहले शैवाल (1965 ई०) से संकलित की गई है।

शब्दार्थ—**क्षितिज**=पृथ्वी और आकाश का सम्मिलित स्थल। **काल**=मृत्यु। **प्रज्वलित**=जलते हुए, तप्त।

2. कलगी बाजरे की

प्रस्तुत कविता स्वयं अज्ञेय द्वारा चयन किये गये काव्य-संकलन **'सर्जना के क्षण'** से ली गई है।

"पुराने उपमानों के स्थान पर नये उपमानों का आग्रह कवि को सौन्दर्य के प्रति एक नयी संवेदना की व्यंजना के लिए है। साँझ के नभ की अकेली तारिका के सौन्दर्य के प्रति रहस्यवादी और वायवी दृष्टि की परिचायक है। शरद के भोर की कुइं (कमलिनी) सौन्दर्य की निर्मलता और पवित्रता को व्यंजित करती है। चम्पे की कली सौन्दर्य की मादक उद्दाम गंध की वाहिका है। किन्तु बिछली घास तथा

बाजरे की कलगी (शरद के सूने गगन की पीठिका पर दोलती हुई) एकाग्र शान्ति को ध्वनित करती है। दिन भर की भाग दौड़ में थके शहरातियों को सौन्दर्य का यही शान्ति-विश्रांतिदायक स्वरूप ईप्सित है और उसी के प्रति उसका निश्छल समर्पण है।"

—(नया सप्त : डॉ० राकेश गुप्त)

शब्दार्थ—शरद=वर्षा ऋतु के उपरान्त आने वाली ऋतु का नाम। **भोर**=सुबह। **नीहार**=ओस। **उपमान**=जिस वस्तु से समता की जाय वह वस्तु। **प्रतीक**=संकेत चिह्न। **मुलम्मा**=ऊपर की चमक। **शहराती**=शहर में रहने वाले लोग। **औदार्य**=उदारता। **पीठिका**=आधार, पृष्ठ भूमि। **दोलती**=हिलती-डुलती। **संसृति**=सृष्टि। **समर्पण**=अर्पण करना।

3. यह दीप अकेला

अज्ञेय के लिए संगठित मानव व्यक्तित्व आस्था और सर्जनात्मकता का महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। इस कविता में कवि का व्यक्तित्व पंक्ति के प्रति स्वतः अर्पित है। यह अद्वितीय 'यह मेरा' यह मैं स्वयं विसर्जित,—यह निष्ठा सर्जक और आस्तिक स्वभाव में ही पनप सकती है। यह प्रकृत, स्वयम्भू, ब्रह्म, अयुत, इसको भी शक्ति को दे दो—आत्मदान, अद्वितीय के विसर्जन की यह चेतना कवि की आस्तिकता—जिसमें जीवन के प्रति आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि भी विद्यमान है—से ही उत्पन्न हुई है। यह कविता कवि की लोक-सम्पृक्ति का ही उदाहरण है।

यह कविता अज्ञेय के काव्य-संकलन **'बावरा अहेरी'** (1954) से ली गई है।

शब्दार्थ—मदमाता=मस्त। **कृति**=निर्मित वस्तु। **बिरला**=विशिष्ट। **कामधेनु**=इच्छा की पूर्ति करने वाली गाय। **पय**=दूध। **अयुत**=सीमा रहित। **अवज्ञा**=अनादर। **तम**=अन्धकार। **अनुरक्त**=लीन होना। **अपनापा**=अपनत्व। **जिज्ञासु**=जानने की इच्छा करने वाला। **प्रबुद्ध**=ज्ञानयुक्त। **श्रद्धामय**=श्रद्धा से युक्त।

4. नन्दा देवी

इस रचना में रचनाकार ने आज के सत्य को उद्घाटित किया है। कवि बड़े ही आत्मविश्वास के साथ सरकार, योजना, भूख, बेबसी, ठेकेदार से जुड़े जीवन के नंगेपन को व्यंग्य भरी दृष्टि से देखता है। विकास की योजनाएँ बड़े-बड़े महानगरों तक ही सीमित है गाँव ही उपेक्षित है।

साथ ही लोक संस्कृति से हमारी विमुखता की ओर भी संकेत है।

शब्दार्थ—दरकार=आवश्यकता। बेबसी=लाचारी। बेमुरव्वत=बिना प्रेम या लगाव के। दीठ=दृष्टि। नौले=बावड़ी।

21. भवानी प्रसाद मिश्र

नर्मदा तट के गाँव टिघरिया (मध्य प्रदेश) में 29 मार्च, 1913 को जन्मे मिश्र जी जन्मना समाजसेवी हैं। मिश्रजी बचपन से ही कविता और शायरी में रुचि लेने लगे थे। मध्य प्रदेश के नरसिंहपुर में अपने पिता के पास रहकर उन्होंने आरम्भिक शिक्षा ग्रहण की और छात्रावस्था से ही राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते रहे। जबलपुर के राबर्टसन कॉलेज से बी० ए० करते हुए ढेर सारी कविताएँ लिखीं। यहीं आपका संपर्क साहित्य के महारथियों से हुआ। भारत छोड़ो आन्दोलन (1942) में बन्दी होकर आचार्य विनोबा भावे, दादा धर्माधिकारी, काका कालेलकर आदि महापुरुषों से घनिष्ठ संपर्क और प्रेरणा पाकर वर्धा के महिलाश्रम में शिक्षक और राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के प्रकाशनाधिकारी रहे। साहित्यिक-पत्रिका **कल्पना** और संपूर्ण गांधी वाङ्मय का सम्पादन किया। आकाशवाणी और दूरदर्शन से सम्बद्ध रहे। विदेश मंत्रालय के त्रैमासिक '**गगनांचल**' तथा गांधी शांति प्रतिष्ठान के मासिक **गांधी मार्ग** का सम्पादन किया एवं गांधी शांति प्रतिष्ठान के प्रकाशनाधिकारी रहे।

लोकप्रिय कवि मिश्रजी के अठारह काव्य संग्रह, एवं खंड-काव्य, एक संस्मरण-संग्रह और बच्चों तथा प्रौढ़ों के लिए अनेक रचनाएँ प्रकाशित हैं। 1972 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार '**बुनी हुई रस्सी**' नामक कविता-संग्रह पर मिला। इसके अलावा मिश्रजी तुलसी पुरस्कार, गालिब पुरस्कार, साहित्य-कला परिषद् दिल्ली प्रशासन के विशिष्ट पुरस्कार तथा मध्यप्रदेश के शिखर सम्मान से अलंकृत हो चुके हैं।

प्रखर राजनैतिक चिंतक मिश्रजी दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन, विश्व समन्वय संघ, अ० भा० गोसेवा संघ, स्वराज्य संगम तथा पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज आदि अनेक साहित्यिक-सांस्कृतिक संगठनों के सक्रिय सहयोगी एवं राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख संवाहकों में रहे हैं।

अपने जीवन के संदर्भ में मिश्रजी का कहना है कि "छोटी-सी जगह में रहता था, छोटी-सी नदी नर्मदा के किनारे, छोटे से पहाड़ विन्ध्याचल के आँचलों में छोटे-छोटे साधारण लोगों के बीच।"

एकदम घटना विहीन, अविच्छिन्न मेरे जीवन की कथा है। साधारण मध्य-वित्त परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा-लिखा और काम जो किए वे भी असाधारण और अछूते। मेरे आस-पास के तमाम लोगों की सी सुविधाएँ-असुविधाएँ मेरी थीं। मैं नहीं जानता कि किसी बात को सुनाने लायक मान कर सुनाने लगूँ—खासकर जब उस सुनाने का मतलब यह माना जाएगा कि सबका मेरी कविता से गहरा सम्बन्ध है।"

कृतियाँ—(1) दूसरा सप्तक सं० अज्ञेय (1951), (2) गीत फरोश (1954), (3) चकित है दुःख (1968), (4) अंधेरी कविताएँ (1968), (5) बुनी हुई रस्सी (1973), (6) खुशबू के शिलालेख (1973), (7) परिवर्तन जिए, (8) इदं न मम, (9) त्रिकाल सन्ध्या (1978), (10) कालजयी (खण्डकाव्य), (11) शरीर, कविता, फसलें और फूल, (12) गांधी पंचशती, (13) अनाम तुम आते हो, (14) कुछ नीति कुछ राजनीति (निबंध) 1983)।

भवानीप्रसाद मिश्र प्रयोगशील एवं नयी कविता के बड़े सशक्त कवि हैं। वैयक्तिकता के आधार पर मिश्रजी ने अपने आस-पास की हलचलों को सामाजिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से बड़े प्रभावपूर्ण रूप में तथा नितान्त सहज और बोलचाल की भाषा-शैली में व्यक्त कर कविता को आत्मीय वार्तालाप एवं आत्मानुभव कथन के रूप में प्रतिष्ठित किया है। जीवन में........जो कुछ स्वस्थ है; मंगलदायक है, आह्लादकारी है उसे उभारने एवं प्रचारित-प्रसारित करने के लिए ही इन्होंने काव्य को साधन बनाया है। मिश्रजी के भाषा और काव्य पर लोक-जीवन का गहरा प्रभाव है। काव्य की भाषा के विषय में आपकी स्पष्ट मान्यता रही है कि वह कृत्रिमता से मुक्त होनी चाहिए।

"भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य में जो सहज खुलापन, संवेदना और पाखण्डहीन सृजनात्मकता है, उसका नतीजा उनके काव्य की व्यापक अपील में देखा जा सकता है। वे आधुनिक और नव्यतर चेतना के अकेले कवि हैं, जिन्होंने सही किस्म की कविता का जनता से सीधा साक्षात्कार कराया है। मंच पर कविता पढ़ते हुए उन्हें हर एक श्रोता के बिल्कुल करीब पीठ थपथपाते, उकसाते या धीरज बँधाते हुए पकड़ा जा सकता है। मनुष्य के सुख-दुःख, आस्था और संघर्ष के लिए उन्होंने जैसा उसे तैयार किया है, वह पिछली अद्यतन पीढ़ी में विरल है।"

—(संवाद : डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय)

1. होना तो उनका है

यह रचना 'अक्षरा' अंक 2 (दिसम्बर, 1982) से संकलित है। इस कविता में कवि 'बीज' के माध्यम से मानव जीवन की महत्ता की ओर संकेत करता है।

मानवता के लिए अपने को समर्पित करने में ही जीवन की सार्थकता है। बीज के पास शब्द नहीं हैं, सेवा है, जनकल्याण है।

अपने आप को इतना अधिक महत्व भी नहीं देना चाहिए कि घमण्ड से हम चूर हो जाएँ। 'और मुखर हैं, अपने ही बारे में ऐसे / जैसे सब कुछ जानते हों /' में गहरा व्यंग्य है, उन लोगों के प्रति जो ज्ञानाभिमान में डूबे हुए हैं।

2. गीत फरोश

यह रचना पं० भवानी प्रसाद मिश्र के पहले कविता संग्रह 'गीत फ़रोश' से संकलित है। 'गीत फ़रोश' कविता में माँग के अनुसार हर तरह के गीत लिखकर देने वाले आज के कुछ पेशेवर कवियों पर काटता हुआ व्यंग्य है।

शब्दार्थ—गीत फरोश=गीत बेचने वाला। **किसिम-किसिम**=नाना प्रकार की। **पस्ती**=निराशा, उदासी। **तपेदिक**=क्षय; इस रोग में व्यक्ति निरन्तर दुर्बल होता जाता है। **रेशमी**=कोमल। **खादी**=खुरदरा। **इल्मी**=इल्म यानी ज्ञान से सम्बन्धित।

3. अज्ञात पंछी

यह रचना 'गीत फ़रोश' से संकलित है। इसमें कवि प्रारम्भ में प्राकृतिक वर्णन करने के पश्चात् 'अज्ञात पंछी' का करुणामयी चित्र खींचता है। यह कविता बाल्मीकि के क्रोञ्च पक्षी के रोने की याद भी दिलाती है। अंत में कविता आत्म-कथात्मक शैली में बदल जाती है और कवि अपने माध्यम से दुःख से अपने संघर्ष की बात कहता है। दुःख न तो संसार को पहचानकर बतलाया जा सकता है और न दर्द को बोलकर बतलाया जा सकता है।

शब्दार्थ—सुरभि=अच्छी गन्ध। **व्योम**=आकाश। **प्राणदा**=जीवन देने वाला। **टिटहरी**=पक्षी विशेष। **शोकातुर**=शोक में व्याकुल। **रमणी**=स्त्री। **पीर**=पीड़ा। **सान्त्वना**=शांति प्रदान करना। **सकल**=सम्पूर्ण।

4. अभिव्यक्ति

इस कविता में कवि ने अभिव्यक्ति को नयी अर्थवत्ता देने के साथ-साथ उसके नये-नये रूपों की ओर ध्यान खींचा है।

22. नागार्जुन

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नागार्जुन को प्रमुख प्रगतिशील रचनाकार के नाम से जाना जाता है। उन्होंने हिन्दी में प्रगतिवादी साहित्य की श्रीवृद्धि में विशिष्ट भूमिका ही नहीं निभाई; बल्कि नयी दिशा दी है। डॉ० प्रकाशचन्द्र भट्ट के शब्दों में नागार्जुन आधुनिक हिंदी कविता के बेजोड़ व्यंग्यकार हैं, उनके काव्य में समाविष्ट विचारों की प्रगतिशीलता एवं दलित वर्गों के प्रति व्यक्त आत्मीय संवेदना प्रगतिवादी कवियों में उनका महत्वपूर्ण स्थान नियत कर रही है, क्योंकि स्वयं अभावों का आसव पान कर नागार्जुन ने शोषित समाज की पीड़ाओं का गान किया है। ....नागार्जुन का खरापन और अकृत्रिम स्वभाव उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। कवि ने राजनीति पर भी सतर्क दृष्टि रखी है और निर्भीक हो उस पर लेखनी चलाई है।

नागार्जुन का जन्म जून 1911 ई० (ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा) को सतलरवा (ननिहाल) पोस्ट मधुबनी, जिला-दरभंगा (बिहार) में हुआ। उनका जन्म का नाम वैद्यनाथ मिश्र था। इनके पिता श्री गोकुल मिश्र तरौनी गाँव में रहते थे। नागार्जुन की प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय संस्कृत पाठशाला में हुई। नागार्जुन सन् 1936 में श्रीलंका गए और उन्होंने वहाँ पर बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली। वहाँ से 1938 में वापस स्वदेश लौट आए। 1936 ई० में सिंहल में विद्यालंकर परिवेण में नागार्जुन नाम ग्रहण किया। 1938 ई० में बिहार सरकार की ओर से तिब्बत जाने वाले अनुसन्धान कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधि मंडल के साथ ल्हासा गये। इसी वर्ष महापंडित राहुल सांकृत्यायन के सम्पर्क में आए। 1938 ई० के अन्त में स्वामी सहजानन्द और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस से सम्पर्क हुआ। 1939 ई० में अमबारी (जिला-छपरा) में किसानों के संघर्ष का नेतृत्व किया, जिसकी बजह से छपरा और हजारीबाग सेन्ट्रल जेल में दस महीने की सजा काटी। जेल से छूटने पर पंजाब सीमा प्रान्त—हिमाचल और पश्चिम तिब्बत की गुप्त यात्राएँ कीं। 1941 ई० में दूसरी बार जेल गये और आठ महीने तक भागलपुर की सेन्ट्रल जेल में रहना पड़ा। 1948 ई० में गांधी-वध पर लिखी गई कविता जब्त करली और जेल यात्रा भी करनी पड़ी। 1951 ई० में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा में कार्य करने के बाद 1952-53 ई० में इलाहाबाद प्रवास। 1974 ई० में बिहार में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। इस आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल जाना पड़ा। 1975 ई० में रिहा किए गए। सम्प्रति—भ्रमण और स्वतन्त्र अध्ययन-लेखन का कार्य।

साहित्य—युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथराई आँखें, तालाब की मछलियाँ, तुमने कहा था, वन्दना, हजार-हजार बाँहों वाली, खिचड़ी, विप्लव देखा

हमने (काव्य संकलन), भस्मांकुर (खण्डकाव्य)। नवतुरिया, बलचनमा (मैथिली उपन्यास), रतिनाथ की चाची, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, वरुण के बेटे, दुख मोचन, उग्रतारा, इमरतिया, जमनिया का बाबा, हीरक जयन्ती (अब "अभिनन्दन" नाम से उपलब्ध), पारो (हिन्दी उपन्यास), धर्मलोक शतकम (सिंहली लिपि में प्रकाशित संस्कृत लघुकाव्य)।

एक व्यक्ति : एक युग (निराला पर लघुप्रबन्ध), मेघदूत (मुक्त छन्द में), गीत गोविन्द, विद्यापति के गीत (अनुवाद)।

सयानी कोयल, तीन अहदी, प्रेमचन्द, अयोध्या का राजा व वीर विक्रम (बाल साहित्य)।

इसके अतिरिक्त बंगला, गुजराती, संस्कृत आदि भाषाओं की दर्जनों कृतियों का हिन्दी रूपान्तर।

नागार्जुन के दर्जनों ग्रन्थ प्रकाशन की मुद्रा के क्रम में हैं।

इधर पिछले वर्षों से मूल बंगला में भी कविताएँ प्रकाशित-प्रशंसित।

पत्रहीन नग्न गाछ (मैथिलीकाव्य संकलन) के लिए 1969 ई० में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। मैथिली साहित्यकार के रूप में 1971 ई० में रूस-भ्रमण।

हंस, सरस्वती, ज्ञानोदय, अवंतिका, नई धारा, जनशक्ति, जनयुग, धर्मयुग, कल्पना, कौमी बोली, बालक, आजकल, मुक्तधारा, नया संसार, नवभारत, नई दुनिया, नया जीवन, पहल, विश्वबंधु, प्रतीक आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी हुई रचनाएँ।

सहजता नागार्जुन के काव्य की विशेषता है। जटिल से जटिल भाव भी नागार्जुन की लेखनी से निकलकर सहज प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं। स्वाधीन भारत में कसमसाती भारतीय जनता-विशेषतः किसान जीवन की पीड़ाओं को नागार्जुन ने अपनी कविता की विषय-वस्तु बनाया है। उनकी काव्य भाषा में भी एक किसान की-सी साफगोई और निर्मम खरापन है। यह साफगोई जब व्यंग्य के साथ आती है तब अपूर्व काव्य की सृष्टि होती है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में, "भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त ने हमारे साहित्य में जो व्यंग्य और जिंदादिली पैदा की, नागार्जुन उसका समर्थ प्रतिनिधि है।" इसका एक कारण उनका जनता से जीवंत संपर्क है। उन्होंने कई आन्दोलन धर्मी कविताएँ भी लिखी हैं। ठीक अर्थ में

'पोस्टर कविता'। अब तक हिन्दी में सफल पोस्टर कविताएँ नागार्जुन ने ही लिखी हैं।"[1]

श्रीकृष्ण बिहारी मिश्र लिखते हैं--"नागार्जुन की कविता की लोकप्रियता का रहस्य उनका समसामयिकता-बोध है। **'आयाम'** में विश्वनाथ गौड़ लिखते हैं—"सक्रियता की जिस भूमि पर नागार्जुन का व्यक्ति और कवि खड़ा है वह उन्हें और उनके कवि को एक व्यापक प्रचार देती है। वह केवल कविता ही नहीं करते, आवश्यकता पड़ने पर सत्याग्रह भी करते हैं।....व्यंग्य के तीखेपन को नागार्जुन बहुत मुखर और आक्रामक बनाते हैं।"

नागार्जुन की भाषा के संदर्भ में डॉ० शिवकुमार मिश्र, **नया हिन्दी काव्य** में लिखते हैं—"कवि की भाषा भावों के अनुरूप कहीं सरल, साधारण बोलचाल के तथा जनपदीय शब्दों से युक्त है, तो कहीं संस्कृत की समास शैली में ढली तत्सम शब्दों से पूर्ण अलंकृत तथा उदात्त है।

1. प्रेत का बयान

यह रचना **प्रेत का बयान कविता संग्रह** से संकलित है। प्रेत का बयान—स्वाधीन भारत की जनता की विपन्नता, अभावग्रस्तता का व्यंग्य चित्र उपस्थित करने वाली कविता है जिसके साथ कवि की करुणा भी जुड़ी हुई है। करुणाश्रित व्यंग्य-कथा के केन्द्र में प्राइमरी स्तर का शिक्षक है—जिसकी 'तनखा थी तीन रुपैया/सो भी नहीं मिली।' व्यंग्य यहाँ अत्यन्त निर्मम हो उठता है, भारत की सत्ता को अपना लक्ष्य बनाता है—

साक्षी है धरती/साक्षी है आकाश/और और और और और भले/नाना प्रकार की व्याधियाँ हों भारत में/किन्तु........, उठाकर दोनों बाँह, किट किट करने लगा प्रेत किन्तु/भूख या क्षुधा नाम हो जिसका/ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको/........, ।

नागार्जुन की व्यंग्य-क्षमता उनके समकालीन कवियों में सबसे अलग पहचानी जा सकती है।

शब्दार्थ—कालाजार=एक प्रकार का तेज बुखार। यह विशेषरूप से पूर्वी भारत में पाया जाता है। **पंचअँगरा**=पाँच अँगुलियों वाला। **सिवान**=सीमा,

---

1. डॉ० नामवर सिंह

पुस्तैनी=पुराना, कई पीढ़ियों से चला आने वाला। **दण्डपाणि**=हाथ में दण्ड धारण करने वाला, यमराज। **तदनन्तर**=उसके बाद नरकेश्वर, नरक का स्वामी, यमराज।

2. बहुत दिनों के बाद

यह कविता युगधारा नामक कविता-संग्रह से ली गई है। कवि एक लम्बे अर्से के बाद अपने चिर-परिचित ग्राम्य अंचल में आता है और अपूर्व आनन्द तथा परितोष का अनुभव करता है। इस उल्लास को कवि ने शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के पाँच बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया है। पूरी कविता जीवन-जगत् के सौन्दर्य में कवि की गहरी दिलचस्पी को व्यक्त करती है।

ताजा टटके—एकदम ताजा। **कोकिल कंठी तान**=कोयल के समान सुर। **चन्दनवर्णी**=चन्दन के से रंग वाली।

3. गीत

यह रचना सिद्ध करती है कि नागार्जुन जैसा प्रगतिशील रचनाकार केवल क्रांति के गीत नहीं गाता बल्कि शिशु घन-कुरंग, पर सहज, सरल और सुबोध कविता (गीत) जो मन को अन्दर तक प्रभावित करती है, लिख सकता है।

इस कविता में शिशु घन-कुरंग की अठखेलियों का रोचक वर्णन है।

23. शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह का जन्म 3 जनवरी, 1911 ई० को मध्य वर्ग के जाट परिवार में देहरादून में हुआ। उनके पिता स्व० चौधरी तारीफ़सिह, जिला मुज़फ्फरनगर, गाँव एलम के निवासी थे। वे कलक्टरी में चीफ़ रीडर होकर अपनी सरकारी सेवा के दौरान गोंडा, देहरादून और बुलन्दशहर में रहे। शमशेर का बचपन भी पिता के साथ इन्हीं स्थानों में बीता। उनकी माँ श्रीमती प्रभुदेई उन्हें केवल नौ वर्ष की अवस्था में अपनी बरद छाया से वंचित कर दिवंगत हो गईं। संभवतः मातृहीनता का यह आघात उनकी अन्तर्मुखता में वृद्धि करने वाला पहला महत्वपूर्ण कारण था।

1930 ई० में धर्मवती के साथ विवाह हुआ। विवाह के समय शमशेर की उम्र 20 वर्ष थी। 1931 ई० में शमशेर इलाहाबाद आ गये और विश्वविद्यालय

में प्रवेश लिया। 1933 ई० में बी० ए० पास किया। 1935 ई० में पत्नी का देहान्त हो गया। 19 वर्ष की आयु में ही पत्नी के निस्संतान चले जाने का गहरा आघात शमशेर के युवा मन को पहुँचा। फलतः उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया।

1939 ई० में सुमित्रानन्दन पंत के 'रूपाभ' में कार्यालय-सहायक का कार्य किया।

1942 ई० में वाराणसी में मुक्तिबोध से पहला परिचय हुआ। बाद में मुक्तिबोध से गहरी मित्रता हो गई। 1965 ई० से 1977 ई० तक दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में हिन्दी-उर्दू कोश सम्बन्धी प्रोजेक्ट में हिन्दी कम्पाइलर के रूप में कार्य किया। बाद में इसी प्रोजेक्ट में त्रिलोचन शास्त्री ने भी 1983 ई० तक कार्य किया। 1971 ई० में शमशेर की षष्ठि-पूर्ति का समारोह दिल्ली में मनाया गया। इस अवसर पर सर्वेश्वर तथा मलयज के संपादकत्व में तैयार हुआ 'शमशेर' नामक ग्रन्थ भेंट किया गया।

1976 ई० में 'चुका भी नहीं हूँ मैं' कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसके लिए मध्य प्रदेश साहित्य परिषद ने तुलसी पुरस्कार और साहित्य अकादमी ने 1977 ई० का अकादमी पुरस्कार प्रदान किया।

सम्प्रति दो वर्ष से उज्जैन में विक्रम विश्वविद्यालय में प्रेमचन्द चेयर के आचार्य पद पर कार्य कर रहे हैं।

कृतित्व—

(क) **कविता**—(1) दूसरा सप्तक (1952), (2) कुछ कविताएँ (1959), (3) कुछ और कविताएँ (1961), (4) चुका भी हूँ नहीं मैं (1975), (5) उदिता (1980), (6) इतने पास अपने (1980), (7) बात बोलेगी (1981)।

(ख) **गद्य**—(1) दो आब (1984), **निबंध**, (2) प्लाट का मोर्चा (कहानियाँ और स्केच) (1952-53)।

व्यक्तित्व—

"शमशेर अन्तर्मुखी संवेदनशील व्यक्तित्व के कवि हैं।[1] उनके व्यक्तित्व के संदर्भ में विचार करते हुए मुक्तिबोध भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे **'आत्मपरक'** हैं। उनकी आत्मपरकता उन्हें भावप्रसंग के भीतर उपस्थित अपनी

---

1 शमशेर का काव्य—हेमराज मीणा।

संवेदनाओं के चित्रण के लिए बाध्य करती है। इस आत्मपरक और संवेदनशील के कारण 'शमशेर' की मूल मनोवृत्ति एक इम्प्रेशनिस्टिक चित्रकार की है।''[1]

डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार—शमशेर के कवि-व्यक्तित्व में रोमांटिक तथा रूपवादी रुझानों के साथ-साथ विवेकपूर्ण सामाजिक चेतना का विस्तार उपलब्ध होता है।[2]

शमशेर का जीवन संघर्षपूर्ण रहा है। परिस्थितियों के दबाव से उनकी अन्तर्मुख संवेदनशीलता उत्तरोत्तर बढ़ती चली गयी है। उनकी कविता और गद्य-रचनाओं में आन्तरिक संवेदनों का वैभव पा सकने की संभावना ही अधिक है।

शमशेर की कविता के अन्दर हम जो बिम्ब देखते हैं, वे बुद्धि ग्राह्य नहीं होते। क्योंकि वे प्राय: मुक्तासंग पद्धति को अपनाते हैं।

शमशेर की रचना-प्रक्रिया जटिलताओं के बीच से अपना रास्ता खोजती हुई आगे बढ़ती है। शमशेर का रचना-संसार निजी अनुभवों तक सीमित पर उनके वैविध्य से समृद्ध है। वे अपने युग और उसकी पूर्व-परम्परा के साथ जुड़कर कविता की सृजन-प्रक्रिया में नयी सम्भावनाओं की खोज के लिए प्रयत्नशील रहे हैं।

अंत में डॉ० जगदीशकुमार के शब्दों में "शमशेर भाव-योगी हैं"।

1. अम्न का राग

यह कविता 'कुछ और कविताएँ' कविता-संग्रह से संकलित है।

'अम्न का राग' कविता में प्रगतिवादी कवि शमशेर मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाता है जिसके परिणामस्वरूप शेक्सपियर को उज्जैन की घाटियों में तथा कालिदास को वैमर के कुंजों में देखा जा सकता है।

डॉ० जगदीशकुमार '**शमशेर : कवितालोक**' में 'अम्न का राग' के संदर्भ में लिखते हैं—

"'अम्न का राग' में समय के उस विशिष्ट राग को पहचाना गया है। स्वतन्त्र भारत विश्वशांति का समर्थक है। तटस्थता की विदेश-नीति तैयार हो रही है। शांति के कपोत उड़ने लगे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की साख जम गयी है।

---

1 नयी कविता का आत्मसंघर्ष—मुक्तिबोध।
2 कवितान्तर—डॉ० जगदीश गुप्त।

भारत अपने सीमा-विवाद उसी के माध्यम से निपटने का संकल्प कर चुका है। शांति का यह परिवेश अखिल लोक उत्थान की अनिवार्य शर्त है। इसीलिए दुनिया-भर में एक सरकार बनाने की चर्चाएँ हो रही हैं। इसी परिवेश से अभिभूत होकर कवि विश्व में व्याप्त शांति का स्वर सुनता रहा है।............यह नया राग नये युग की सच्चाइयों में से फूटकर अनहद नाद की तरह विश्व में व्याप्त हो गया है। उसमें तन्मय कवि शिवता को प्राप्त कर लेता है। लोक-मानस में वही राग बजता है। इस राग को सुनते ही विश्व की महान् प्रतिभाएँ हमारी प्रेरक हो जाती हैं। अन्ततः यही राग शक्तिमयी आँखों में परिणित हो जाता है।

शब्दार्थ—गोमुख=जहाँ से गंगा नदी निकलती है वह स्थान। **कश्तियाँ**= नावें। **विभोर**=प्रसन्न। **अभिनव**=अति नवीन। **अखिल**=सम्पूर्ण। **हकीकत**= वास्तविकता। **शंखनाद**=शंख की आवाज। **रौशन**=प्रकाश।

2. एक पीली शाम

"शमशेर की यह कविता छिपते सूरज के चित्र से आरम्भ होती है। संभवतः उन्होंने विरह के दबाव में यह दृश्य देखा होगा। इसलिए प्रकृति के व्यापार निरानन्द हैं।............कविता में अस्तमान रवि का प्राकृतिक बिम्ब अंकित है। पत्ता, मुख-कमल, आँसू और तारक की उपमाएँ सूर्य के लिए आयी हैं।............प्रतीकात्मक स्तर पर पूरी कविता जीवनोत्सर्ग की कामना से प्रेरित लगती है, क्योंकि उसमें मृत्यु बिम्बों की प्रधानता है।

—डॉ० जगदीशकुमार

शब्दार्थ—कृश=क्षीण। **म्लान**=मुरझाया हुआ। **शिथिल**=कमजोर। **सान्ध्य तारक सा**=सन्ध्या के तारे के समान। **अतल**=अत्यधिक गहराई में।

3. धूप कोठरी के आइने में खड़ी

इस रचना में शमशेर के मातृस्नेही व्यक्तित्व की झलक है।

यहाँ 'मधुमक्खी' शमशेर की दिवंगत माँ है और 'बहुत नन्हा फूल' बालक शमशेर है।

24. गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर, 1917 ई० को श्योपुर (ग्वालियर) में हुआ। आरम्भिक शिक्षा उज्जैन में हुई। 1939 ई० में, इन्दौर के होलकर कॉलेज से बी० ए० कर के मुक्तिबोध उज्जैन के मॉडर्न स्कूल में अध्यापक हो गये।

सन् 1940 ई० में मुक्तिबोध शुजालपुर के शारदा शिक्षा सदन में अध्यापक हो गये। उज्जैन से सन् 1945 ई० के लगभग मुक्तिबोध बनारस गये और त्रिलोचन शास्त्री के साथ 'हंस' के सम्पादन में शामिल हुए। मुक्तिबोध का काशी-प्रवास सुखद नहीं रहा। 1946-47 ई० में मुक्तिबोध जबलपुर चले गये। वहाँ हितकारिणी हाईस्कूल में अध्यापक हो गये। 1954 ई० में एम० ए० किया जिसकी वजह से राजनांदगाँव के दिग्विजय कॉलेज में उन्हें नौकरी मिल गयी। 1964 ई० में पक्षाघात के कारण मृत्यु।

कृतित्व—

(1) तार सप्तक सं० अज्ञेय (कविता) (2) चाँद का मुँह टेढ़ा है (कविता), (3) भूरी-भूरी खाक धूल (कविता), (4) एक साहित्यिक की डायरी (डायरी), (5) विपात्र (उपन्यास), (6) काठ का सपना (कहानी), (7) भारत : इतिहास और संस्कृति (इतिहास), (8) कामायनी : एक पुनर्विचार (समीक्षा), (9) नयी कविता का आत्म-संघर्ष (आलोचना), (10) समीक्षा की समस्याएँ (आलोचना), (11) आख़िर रचना क्यों (आलोचना), (12) नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र (आलोचना)।

'भारत : इतिहास और संस्कृति' पुस्तक का प्रकाशन मुक्तिबोध के जीवन की स्मरणीय घटना बनी। यह पुस्तक मध्य प्रदेश सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत हुई और फिर उसी सरकार द्वारा अवैध घोषित हुई। इस पुस्तक की गणना हिन्दी की विवादास्पद और विचारोत्तेजक कृतियों में हुई।

डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव और डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 'दिशान्तर' में लिखते हैं—कवि के रूप में मुक्तिबोध का झुकाव '**नवक्लासिवाद**' की ओर रहा है। अर्थात् ऐसी काव्य-रचना की ओर जिसका कथ्य व्यापक हो, जिसमें जीवन के विश्लेषित तथ्यों और उनके संश्लिष्ट निष्कर्षों का चित्रण हो। जिज्ञासा के विस्तार के साथ कथा की ओर प्रवृत्ति-दार्शनिक प्रवृत्ति : 'जीवन और जगत् के द्वन्द्व-जीवन के आंतरिक द्वन्द्व'—इन सबको सुलझाने की ओर एक अनुभव-सिद्ध व्यवस्थित तत्व-प्रणाली अथवा जीवन-दर्शन आत्मसात् कर लेने की दुर्दम प्यास मन में हमेशा बनी रही।

मार्क्सवाद की ओर झुकाव जो अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण जान पड़ा। कविता में फ़ैन्टेसी, नाट्यतत्व और औपन्यासिक शिल्प का उपयोग।

'चाँद का मुंह टेढ़ा है' कविता-संग्रह में 'एक विलक्षण प्रतिभा' शीर्षक से लिखी गई भूमिका में शमशेर लिखते हैं—

(क) 'उनका शिल्प एक ऊँची इमारत उठाने वाले मेसार का शिल्प था।'

(ख) 'मुक्तिबोध की कविताओं में सदैव एक साथीपन का भाव है। सबसे बड़ी बात उनमें यह है कि उनके अन्दर 'मस्तिष्कहीन कोरी भावुकता' (माइण्डलेस फ़ीलिंग) नहीं है। उनके भावों के ज्वार के पीछे विचारों का दीर्घ दोहन है।

(ग) मुक्तिबोध का कवि व्यक्तित्व वॉल्ट व्हिट्मैन और मायकॉवस्की के शिल्प और शक्ति से टक्कर लेता है, और अपनी जमीन पर अप्रतिहत और अद्वितीय रहता है।

(घ) "हिन्दी की नयी पीढ़ी का बिलकुल अपना कवि, सबसे प्रिय कवि, और विचारक डॉ० मुक्तिबोध ही है; यह निर्विवाद है। उसकी तुलना में किसी भी प्रकार और कोई नहीं ठहरता।"

डॉ० नामवरसिंह लिखते हैं—"नयी कविता में मुक्तिबोध की स्थिति वही है, जो छायावाद में निराला की थी। निराला के समान मुक्तिबोध ने भी अपने युग के सामान्य काव्य-मूल्यों का प्रतिफलित करने के साथ ही उनकी सीमा को चुनौती देकर उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया, जिससे समकालीन काव्य का सही मूल्यांकन संभव हो सका।"

1. ब्रह्मराक्षस

यह रचना 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता-संग्रह से संकलित है। 'अँधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' कविताएँ इस संग्रह की प्रसिद्धतम रचनाएँ हैं।

'याज्ञवल्क्य स्मृति' के अनुसार जो व्यक्ति दूसरे की पत्नी का हरण करता है या ब्राह्मण का धन हरता है, वह (मृत्यु के बाद) जंगल के किसी निर्जन प्रदेश में जाकर ब्रह्मराक्षस हो जाता है। मुक्तिबोध की कल्पना इस विचार से अलग है। मुक्तिबोध का ब्रह्मराक्षस एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है (या व्यक्ति के भीतर की उस चेतना का प्रतीक है) जो जीवन-भर कुछ अधिक उत्तम या उत्कृष्ट पाने के लिए संघर्षरत रहते हुए अपने आप में ही निर्वासन भोगता है। वह अपने मन की ही अतल गहराइयों में पड़ा हुआ जीवन के विविध पक्षों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए गणित करता रहता है और एक दिन अनचीन्हा ही मर जाता है।

शब्दार्थ—**परित्यक्त**=त्यागी हुई। **औदुम्बर**=गूलर का पेड़। **मलिनता**=गन्दगी। **स्तोत्र**=प्रार्थना, स्तुति। **स्याह**=कलुषित। **तल**=आधार। **प्रफुल्लित**=प्रसन्न। **ओज**=ओजस्विता, तेजस्विता, उत्साह। **ऋचा**=वैदिक मंत्र। **छन्दस्**=छन्द। **थियोरेम**=उत्पत्ति। **प्रमेय**=रचना। **प्राक्तन**=प्राचीन। **आवर्त**=भँवर। **कृति**=रचना। **विकृताकार**=बिगड़े आकार वाली। **उद्भ्रान्त**=भ्रममय, संदेहशील।

ट्रैजिडी=दुखान्त। आभ्यन्तर=आन्तरिक। उग्रतर=अधिक तेज। मान=मानदण्ड। रुधिरसरिता=रक्त की नदी। व्रण=घाव। स्फटिक=पत्थर। अभिभूत=प्रभावित। सजल-उर=सहानुभूतिपूर्ण हृदय वाला। स्रोत=उद्गम स्थल। संगत=उचित।

2. पूँजीवादी समाज के प्रति

यह कविता 'तार सप्तक' से ली गई है। पूंजीवादी समाज (शोषक वर्ग) के प्रति मुक्तिबोध की यह गहरी और मार्मिक रचना है।

इस रचना में कवि पूंजीवादी समाज पर तीव्र प्रहार करता है।

शब्दार्थ—अन्तःशुद्धि=आन्तरिक पवित्रता। वैचित्र्य=विचित्रता। निर्बंध=बिना बन्धन के। व्यग्र=व्याकुल। उष्णता=गर्मी। अविवेक=बुद्धि रहित। रिक्त=खाली। ध्वंस=विनाश।

25. केदारनाथ अग्रवाल

(जन्म : 1912 ई०)

केदारनाथ अग्रवाल की गणना हिन्दी के प्रमुखतम प्रगतिवादी रचनाकारों में की जाती है। इस धारा के अन्य कवि हैं—मुक्तिबोध, नागार्जुन, शमशेर, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, रांगेयराघव और शील। ये सभी कवि लगभग एक ही दशक में जन्मे हैं। केदार जी 1930 ई० से पहले ही रचनारत हो गये थे। पेशे से बांदा में वकालत करते रहे हैं।

शमशेर के अनुसार, "आज के साहित्य की नकारात्मक नैराश्यपूर्ण फ़िज़ा में केदार का स्वर एक ऐसे सजग मध्यवर्गी बुद्धिजीवी का है जो श्रम से कर्मठता से, किसान और श्रमिक की अन्ततोगत्वा एकजुट जीवंतता से जो प्रकृत्या कभी हार मानना नहीं जानती और साथ ही शक्तिगर्भा प्रकृति के सौन्दर्य, नैकट्य और बन्धुत्व से—और इन सबसे उपलब्ध अपने दुर्दमनीय आशावाद से जीने की प्रेरणा ले रहा है और दूसरों को दे रहा है।"

केदारजी के चित्रों की मूर्ति प्रखरता उनकी काव्यानुभूति को विशिष्ट आभा प्रदान करने में सक्षम है। केदार के शब्दों में एक ऐसा 'ठेठपन' है जो ठोस अनुभवों का 'लेयर' लिए हुए है।

आप एक ऐसे प्रगतिशील कवि हैं, जिन्होंने जीवन और ग्राम्य प्रकृति के अत्यधिक मनोहारी चित्र अपनी कविताओं में उकेरे हैं। सीधी बात सरल भाषा में कहना इन्हें रुचता है।

आधुनिक कवि भाग-16 में अपनी रचना-प्रक्रिया और जीवन के संदर्भ में केदार जी ने लिखा है—"कविता से मुझे लड़कपन से लगाव रहा है। मेरे पिताजी प्राचीन काव्य के प्रेमी और सहृदय पाठक रहे हैं और स्वयं भी ब्रजभाषा की कविताएँ लिखते रहे हैं। वे अब भी काव्य में रुचि रखते हैं। मुझे उनके मुख से और उनके समसामयिकों के पुराने कवियों की कविताएँ सुनने का गौरव प्राप्त होता रहा है। तभी से मैं कविता की ओर आकृष्ट हो चला था और जब कुछ लिखने लायक हुआ था तो लिखने भी लगा। मुझे गाँव में रहकर अपने देश की ऋतुओं का पूरा परिचय मिल चुका था। मैं धूप में नंगे पाँव दौड़कर धूप को पी लेता था। बरसात में बरसते पानी में भीगकर मैं भीतर तक बादल-बिजली की क्रीड़ाएँ भर लेता था। जाड़े की रातों के अँधेरे में रजाई ओढ़े धड़कते दिल से ठंड को भेदता रहता था। बसन्त के आने पर टेसू के फूलों की आग को आँखों-आँखों से पीकर अपनी आग बना लेता था।...... बी० ए० में मैंने दर्शनशास्त्र पढ़ा था। मुझे पं० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' ने हिन्दी पढ़ाई थी।.........बी० ए० में मेरे सहपाठी थे—सर्वश्री शमशेर बहादुर सिंह और नरेन्द्र शर्मा। दोनों ही कवि थे। उनके साथ-साथ उस समय अंग्रेजी-हिन्दी और उर्दू की कविताएँ पढ़ने और सुनने का सुअवसर मिला करता था। वह दोनों भी कविता को श्रेष्ठ कला मानते थे। वकील होकर मैं यथार्थपरक हुआ और कवियों की कविताओं के सम्पर्क में आकर कला के संस्कारों से कलाभिमुखी हुआ।"

कृतित्व—

(क) (1) नींद के बादल, (2) युग की गंगा, (3) लोक और आलोक, (4) गुलमेंहदी, (5) पंख और पतवार, (6) देश-देश की कविताएँ, (7) आग का आइना, (8) फूल नहीं रंग बोलते हैं, (9) कहे केदार खरी-खरी, (10) मार प्यार की थापें, (11) हे मेरी तुम, (12) अपूर्वा, (13) जमुन जल तुम, (14) बोले बोल अबोल, (15) जो शिलाएँ तोड़ते हैं, (16) बम्बई का रक्त स्नान।

(ख) **गद्य**—समय-समय पर (लेख), विचार बोध (निबंध), बस्ती खिले गुलाब की (यात्रा), विवेक विवेचन, पतिया (उपन्यास)।

1. बसन्ती हवा

प्रस्तुत कविता केदारनाथ अग्रवाल के कविता संग्रह **'युग की गंगा'** से संकलित है। इस रचना में **'बसन्ती हवा'** प्रकृति की उन्मुक्त, स्वच्छतावादी अभिव्यक्ति है।

सहायक : केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व सं० श्रीप्रकाश, प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल डॉ० रामविलास शर्मा (परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद)।

2. जीवन से

विवाकर=सूर्य ।

इस रचना में कवि चाहता है कि प्रेमी को मेरे जीवन में प्रकृति की सहजता और सरलता की तरह आना चाहिए ।

26. गिरिजाकुमार माथुर

गिरिजाकुमार माथुर की कविता किसी विशेष धारा या वाद से बंधी हुई नहीं है । वे पिछली समस्त मान्यताओं को अस्वीकार करके आगे बढ़े हैं और अपनी हर रचना के साथ एक नये मोड़ पर दिखाई देते हैं, पर ठहरते नहीं, आगे बढ़ जाते हैं ।

उन्होंने गीतों के अतिरिक्त अनेक रसवन्ती शृंगार-कविताएँ लिखी हैं । उनकी अनुभूतियाँ सूक्ष्म और परिष्कृत होते हुए भी मूर्त और मांसल हैं । छायावाद की इन्द्रियातीत शृंगार भावना और प्रगतिवाद की स्थूल अनगढ़ता—उनकी कविता इन दोनों से अछूती है । रूप और रस के मांसल स्पर्श उनकी परिष्कृत कल्पना के संसर्ग से अत्यन्त रमणीय बन गए हैं ।

कवि ने जीवन की मधुर भावना को बड़े ही हल्के से, किन्तु पूरी गहराई के साथ बिम्बित करने का सफल प्रयत्न किया है । अर्थ-सौन्दर्य और ध्वनि-सौन्दर्य में गिरिजाकुमार माथुर की क्षमता असाधारण है ।"

—(गिरिजाकुमार माथुर, सं०—डॉ० नगेन्द्र)

"रोमांटिक अनुभूति, सम्पन्न प्रणय और सौन्दर्य के प्रति नवीन दृष्टि से युक्त और व्यक्ति मन तथा सामूहिक मन की अनेक अपूर्व अनुभूतियों को वाणी देने वाले गिरिजाकुमार माथुर का प्रगतिशील कवियों में विशिष्ट स्थान है । छायावादी अलौकिकता एवं प्रगतिवादी सांसारिकता की अति से ऊबकर इन्होंने अनेक वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक अनुभूतियों को अत्यन्त सहज एवं बोलचाल की भाषा में व्यक्त कर नवीनता और ताजगी का वातावरण बनाया है । आधुनिक जीवन की जटिलताओं एवं कुण्ठाओं को व्यक्त करते हुए कवि ने सामाजिक उत्तरदायित्व से भी अपने को जोड़ा है । बदलती हुई परिस्थितियों में परिवर्तित मानस के भावों एवं विचारों की कहीं-कहीं बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति इनमें मिलती है । —(काव्यांजलि)

जीवन और साहित्य—गिरिजाकुमार माथुर का जन्म 22 अगस्त, 1919 ई० को अशोक नगर (मध्य प्रदेश) में हुआ। डॉ० गोपालदत्त सारस्वत के शब्दों में, "मालवा, बुन्देलखण्ड, ग्वालियर में रहकर वहाँ के क्षेत्रीय जीवन, ऐतिहासिकता एवं भौगोलिक वातावरण का अनुभव प्राप्त किया। लखनऊ में रहकर वैभव, विलास एवं आभिजात्य संस्कार ग्रहण किए। दिल्ली के निवास से नगरीय संस्कृति का बोध प्राप्त किया। इसके पश्चात् रूस अमेरिका और यूरोप के विभिन्न देशों के भ्रमण से आप के हृदय पर आधुनिक बोध तथा वैज्ञानिक चेतना का गहरा प्रभाव पड़ा।"

सन् 1943 में गिरिजाकुमार जी की ऑल इंडिया रेडियो में नियुक्ति हुई। इसे छोड़कर सूचना अधिकारी होकर न्यूयार्क चले गए, कुछ समय इंग्लेंड तथा यूरोप में भी रहे। फिर आकाशवाणी लखनऊ में उपनिदेशक हो गए। सन् 1956 में आप सांस्कृतिक शिष्ट मंडल में नेपाल गए। इसके बाद आप आकाशवाणी प्रतिनिधि मंडल में रूस तथा चैकोस्लोवाकिया की यात्रा पर गए, स्विट्जरलैण्ड का भी भ्रमण किया। तदनंतर आप स्वदेश लौट आए। तब से आप भारतवर्ष के विभिन्न नगरों में रेडियो स्टेशनों पर कार्य करते रहे। 1967 ई० में दिल्ली आकाशवाणी पर विविध भारती के निदेशक और 1972 ई० में विदेश प्रसारण विभाग, आकशवाणी नयी दिल्ली के निदेशक के रूप में कार्य किया। 1975 ई० में दिल्ली प्रशासन द्वारा विशेष साहित्यिक सम्मान द्वारा सम्मानित किया गया। सम्प्रति जनकपुरी (नयी दिल्ली) में रहकर स्वतन्त्र अध्ययन और लेखन का कार्य कर रहे हैं।

रचनाएं—(1) मंजीर (काव्य), (2) तार सप्तक सं० अज्ञेय, (3) नाश और निर्माण (काव्य), (4) धूप के धान (काव्य), (5) जनमकैद (नाटक), (6) शिलापंख चमकीले (काव्य), (7) नई कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ (आलोचना), (8) जो बँध नहीं सका (काव्य), (9) भीतरी नदी की यात्रा (काव्य) 1975, (10) साक्षी रहे वर्तमान (काव्य) 1979, (11) पृथ्वीकल्प (खण्डकाव्य), (12) छाया मत छूना मन (काव्य)।

शिल्प—माथुर की काव्य-सर्जना में कथ्य का वैविध्य तो है ही, शिल्प के प्रयोग भी महत्वपूर्ण हैं। आपने अधिकतर मुक्त छन्द का व्यवहार किया है।

बालकृष्ण राव ने 'धूप के धान' की समीक्षा करते हुए गिरिजाकुमार माथुर 'टेकनीक' की ओर संकेत किया है—"माथुर प्रयोग के प्रति आस्था और गंभीरता से अग्रसर होने वाले कवि हैं। विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान देने वाले कवि के रूप में माथुर ने भाषा और व्यंजना को विशेष महत्व देने की चेष्टा की है। उनकी रोमानी कविताओं में छोटी-मोटी ध्वनि वाले बोलचाल के शब्दों का व्यवहार मिलता है जबकि क्लासिकल कविताओं में बड़ी लम्बी और गंभीर ध्वनि

वाले शब्द रखे गए हैं। अभिव्यंजनात्मक शब्द-विन्यास नये वातारण के रूप-भाव की उद्भावना में कितना सहायक हो सकता है यह उनके 'पतला नभ', 'सिमटी किरन', 'आदिम छाँहें' आदि प्रयोगों से प्रत्यक्ष है।"

1. बसंत की रात

यह कविता 'नाश और निर्माण' कविता-संग्रह से ली गई है। बसन्त ने वन को केसरिया रंग में रंग दिया है। फागुन की सन्ध्या भी खिली हुई कली के सदृश पीताभ वर्ण की हो रही है। गृह, द्वार, नगर, वन—सबके ऊपर बसंत की पूर्णिमा की चाँदनी ने अनुपम आभा छिटका दी है।

बसंत का माधुर्य जीवन में भी लौट आया है, जिससे हर एक प्राणी का हृदय प्यार थिरकने लगा है। हर एक व्यक्ति के ओठों में, आँखों में प्यार की झलक विद्यमान है। प्रस्तुत कविता में रूप, रंग और माधुर्यजन्य प्रेम के वातावरण का चित्रण कवि ने किया है।

शब्दार्थ—**बोलती आँखों में**=(विशेषण विपर्यय) आँखें निमन्त्रण दे रही हैं। **जीवन में…….मिठास है**=जीवन में माधुर्य का; आनन्द का संचार हो गया है।

2. कौन थकान हरे जीवन की

प्रस्तुत कविता भी 'नाश और निर्माण' से संकलित है। संध्या के सम्पूर्ण वातावरण को उभारते हुए एकाकीपन के अवसाद का एक भाव-चित्र इस रचना में है।

इस कविता में अतृप्त प्रेम, खिन्नमन एवं आँसुओं से भीगे हुए नेत्रों वाले परदेशी की वेदना का चित्र अंकित है। प्रेम के बिना जीवन की यात्रा थकान पैदा करने वाली हो जाती है। प्रेमी का प्यार ही सर्वस्व है; उसके बिना जीवन उसे निस्सार-सा प्रतीत होता है।

शब्दार्थ—**वंशी**=आनन्द का प्रतीक। **वन-पथ**=जीवन का मार्ग। **पतझर**=वेदना, दुःख का प्रतीक। **चन्दन का वन**=सुख या मिलन के क्षणों से सुगन्धित जीवन। **थके……कुम्हलाए**=विरही की आँखें वेदना के आँसुओं से आकुल हैं। **कहीं उनींदी……पूजन की**=किसी दूसरे स्थान पर पूजन (मिलन) के समय शहनाइयाँ बज रही हैं; जो नींद को भंग कर रही हैं।

3. बुद्ध

'नाश और निर्माण' से संकलित इस 'बुद्ध' शीर्षक कविता में अतीत काल के ऐतिहासिक युगबोध के आधार पर गौतम बुद्ध के जीवन के महान् आदर्शों का चित्र अंकित है। वे आदर्श जिनमें त्याग, तप, अहिंसा और शांति का महान् सन्देश निहित है—जिनमें देश और काल की सीमाओं को लाँघकर सम्पूर्ण मानवता को एकसूत्रता में आबद्ध करने की शक्ति है। जो आज भी ऐतिहासिक परम्पराओं एवं धार्मिक ग्रंथों में सुरक्षित हैं। जब तक मानव में अहिंसा और शांति के प्रति आदर है, तब तक महात्मा बुद्ध की वाणी मानव-जाति का मार्ग प्रशस्त करती रहेगी।

शब्दार्थ—पद-चाप युगों की=अतीतकालीन स्मृतियाँ। **बोझीले इतिहास**= विशेषण विपर्यय। कठिनाइयों से भरा हुआ विस्तृत इतिहास। **बोधि तरु**=बोधि-वृक्ष, जिसके नीचे बैठकर महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। **शीतल मिट्टी के स्तूप**=वे मिट्टी के स्तूप जिनकी छाया में बैठकर शांतिपूर्ण धार्मिक प्रवचन हुआ करते थे। **रेशमी मिठास**=कोमल, मधुरिमा युक्त। **सिन्धु और आकाश**=क्रमशः गहराई और व्यापकता के प्रतीक हैं। **संपाति नयन**=गिद्ध के से नेत्र। **शिव की सीमा**=कैलाश के शिखर। **वल्मीकि**=कच्ची मिट्टी का ढेर। 'दीम' या 'दीमक' लगने पर एक छोटा-सा जीव मिट्टी के इस ढेर को चुनता है। **चैत्य**=बौद्ध-मंदिर। **पैगोड़ा**=पवित्र मंदिर जो वर्मा और चीन में अधिकता से पाये जाते हैं। **कुफ**=अधर्म, अकृतज्ञता। **क्रूसेड**=साहसपूर्ण कार्य करने वाले।

4. छाया मत छूना (गीत)

प्रस्तुत गीत गिरिजाकुमार माथुर के प्रसिद्ध कविता-संग्रह 'धूप के धान' से लिया गया है।

इसमें अतीत की सुधियों को भूलकर वर्तमान का पूजन करते हुए आशापूर्ण भविष्य को वरण करने का सन्देश है। बीते हुए समय की रंगीन सुधियाँ, मन-भावनी छवियों एवं सुहावनी कल्पनाओं की स्मृतियाँ केवल दुःख ही देती हैं। जीवन का सत्य कठिनाइयों और विपत्तियों से पूर्ण है। यहाँ यश, वैभव, मान और द्रव्य के पीछे दौड़ना भ्रम है, अतः इनकी छाया को छूने के लिए उद्बोधन है। युवावस्था में सुख का दर्शन नहीं हुआ और आयु बीत जाने पर सुख मिला तो क्या हुआ ? अतः इस जीवन में यश-वैभव की कल्पना करना ही निरर्थक है। जो नहीं मिला, उसे भूल जाना ही अच्छा है।

शब्दार्थ—**छाया मत छूना**=यश, वैभव की चाह न करना । **सरमाया**=धन दौलत । **हर चन्द्रिका····कृष्णा है**=हर सुख में दुःख की छाया पड़ी है । **जो है········पूजन**=जो वर्तमान है, वही यथार्थ है और वह कठिनाइयों से भरा हुआ है । **द्विविधा-हत**=संशय-पूर्ण । **दुःख है····आने पर**=दुःख है कि युवावस्था में सुख नहीं मिला । **क्या हुआ····जाने पर**=आयु चूक जाने पर सुख का मिलना न मिलना बराबर है । **जो न मिला····वरण**=बीते हुए को भूलना और भविष्य की ओर आशा रखना ही अच्छा है ।

27. डॉ० धर्मवीर भारती

(जन्म : सन् 1926, इलाहाबाद)

कृतियां—

कविता संग्रह—(1) कनुप्रिया (1959), (2) सात गीत वर्ष (1959), (3) ठंडा लोहा (1969), (4) देशान्तर ।

काव्य-नाटक—अंधा युग ।

उपन्यास—(1) गुनाहों का देवता, (2) सूरज का सातवां घोड़ा ।

कहानी-संग्रह—(1) बन्द गली का आखिरी मकान, (2) चांद और टूटे लोग ।

शोध और आलोचना—(1) मानव मूल्य और साहित्य, (2) सिद्ध साहित्य ।

निबन्ध—(1) कहनी-अनकहनी (2) ठेले पर हिमालय, (3) पश्यन्ती ।

सम्प्रति—'धर्मयुग' साप्ताहिक का संपादन ।

धर्मवीर भारती प्रयोगवादी मनोवृत्ति के कारण आधुनिक हिन्दी कविता में अपनी आधुनिक दृष्टि, रोमांटिक प्रवृत्ति, व्यक्तिवादी चेतना तथा सहज जीवन एवं बोलचाल की भाषा के लिए प्रख्यात हैं। भारती जी की रचनाओं में प्रणय की व्यंजना प्रायः पायी जाती है । रूपासक्ति, वासना और लालसा की प्रखर अभिव्यक्ति इनके प्रणय-चित्रण की विशेषता है । 'शंका : जिज्ञासा' और 'पराजित पीढ़ी का गीत' जैसी रचनाएं व्यक्तिवादी विचार का बोध कराती हैं ।

'आयाम' में विश्वनाथ गौड़ लिखते हैं—"भारती के लिए कविता शांति की छाया और विश्वास की आवाज रही है ।" उनका कवि 'आज की बेहद पिसती

हुई संघर्षपूर्ण, कटु और कीचड़ में बिलबिलाती हुई जिन्दगी के ही सुन्दरतम अर्थ खोज पाने में समर्थ रहा है। कविता ने उसे अत्यधिक पीड़ा के क्षणों में विश्वास और दृढ़ता दी है।' इन आत्मकथ्यों की सचाई का पक्का पता भारती की कविताओं से लगता है। वस्तुतः भारती प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। 'मानवता की मुक्ति' के लिए चाहे गये आलोक कणों की खोज में जब हम उनकी कविताओं को पढ़ते हैं तब टुकड़ों में ही उनकी व्याप्ति मिलती है।"

"भारती को सबसे प्रिय कविताएँ वे हैं जो गटर में पड़े शराबियों, हथौड़ा चलाते लोहारों और धूल में खेलते हुए बच्चों की भोली आँखों में झलकती हैं; लेकिन जिन्हें न अभी तक किसी ने लिखा, न किसी ने छापा।" —(संवाद से)

1. टूटा पहिया

यह रचना भारती के कविता-संग्रह 'सात गीत-वर्ष' से चुनी गई है।

टूटा पहिया लघु और उपेक्षित मानव का प्रतीक है, जिसे बेकार समझकर फेंक दिया गया है। नया कवि उसकी संभावनाओं को पहचानता है और उसकी क्षमताओं का मूल्यांकन करता है।

यह एक प्रतीकात्मक रचना है। इस प्रतीक को कवि ने महाभारत के कथानक से लिया है। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में अकेले ही प्रवेश किया। कौरवसेना के महारथियों ने उसे घेर कर उसके सब शस्त्रास्त्र नष्ट कर डाले। उसने रथ के टूटे पहिये को अस्त्र बनाकर शत्रुओं का सामना किया। कवि ने इसी घटना के आधार पर यह प्रतीक ग्रहण किया है।

2. कस्बे की शाम

इस रचना में लोक शब्दावली प्रयोग करते हुए कवि ने गाँव की सन्ध्या का चित्र खींचा है। निराला की सन्ध्या सुन्दरी कविता की स्मृति को यह रचना ताजा बनाती है। छायावादी दृष्टि और नयी कविता के कवि की दृष्टि के अन्तर को इन दो रचनाओं के माध्यम से पहचाना जा सकता है।

इस कविता में दुपहरिया, अन्हियारी, सुनहरिया, ढिबरी, आदि शब्दों का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है।

3. पराजित पीढ़ी का गीत

यह कविता भी 'सात गीत वर्ष' की रचना है। इसमें कवि ने दिग्भ्रमित, हारे हुए समाज की शक्तिहीनता का वर्णन किया है। तरुणाई में ही घुट कर विश्वास मर गया है। दिशाहीन, परास्त यह नयी पीढ़ी झूठे युद्ध और झूठे ध्येय के चंगुल में अपने को फांस चुकी है।

4. बोआई का गीत

धर्मवीर भारती की गणना प्रमुख गीतकारों में की जाती है। लोक शैली और लोक धुन पर आधारित यह गीत इसका प्रमाण है। वर्षा का आगमन किसान के मन में आनन्द का संदेश लाता है।

28. रघुवीर सहाय

श्री रघुवीर सहाय का जन्म 9 दिसम्बर, 1929 ई० को लखनऊ में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर एम० ए० (अँग्रेजी साहित्य) तक की शिक्षा लखनऊ में ही प्राप्त की। पिता श्री हरदेव सहाय (स्वर्गीय) साहित्य के अध्यापक थे। आरंभ में रघुवीर सहाय ने कुछ दिनों तक 'प्रतीक' (मासिक, नई दिल्ली) में सहायक संपादक का काम किया। फिर वे ऑल इंडिया रेडियो के हिन्दी समाचार विभाग में सहायक संपादक रहे। इसके वाद वे लगभग एक वर्ष तक हैदराबाद से निकलने वाली पत्रिका 'कल्पना' के संपादक रहे और फिर कुछ दिनों तक दैनिक 'नव भारत टाइम्स' नई दिल्ली के संवाददाता के रूप में सम्बद्ध रहे। वर्षों तक 'दिनमान' साप्ताहिक का संपादन करने के पश्चात् सम्प्रति नयी दिल्ली में रहकर स्वतंत्र लेखन का कार्य किया। इसके अलावा आप 'नवजीवन' (लखनऊ) एशियाई थियेटर संस्थान (नयी दिल्ली), वाक् (नयी दिल्ली), और दूरदर्शन (नयी दिल्ली) से भी जुड़े रहे।

प्रकाशित कृतियाँ—

(क) काव्य—(1) **दूसरा सप्तक** (1952) सं० अज्ञेय, (2) सीढ़ियों पर धूप में (कविता-कहानी-निबंध) (1960) सं० अज्ञेय, (3) आत्महत्या के विरुद्ध (1967), (4) हंसो, हँसो, जल्दी हँसो (1975), (5) लोग भूल गये हैं। (1982)।

(ख) कहानियाँ—(1) सीढ़ियों पर धूप में, (2) रास्ता इधर से है (1972), (3) जो आदमी हम बना रहे हैं (1982)।

(ग) निबंध—सीढ़ियों पर धूप में, (2) लिखने का कारण (1978), (3) भँवर, लहरें और तरंग (1983), (4) ऊबे हुए सुखी (1983)।

(घ) अनुवाद—पद्य में **'बरनम वन'** के नाम से **शेक्सपियर** का **मैकबेथ** और गद्य में **'राख और हीरे'** के नाम से **पोलस्की** उपन्यासकार **'येर्ज़ी आन्दजेयेव्यस्की** का **पोपियोल इ दियामेन्त,** युगोस्लाव उपन्यासकार **आइवो आन्द्रिच** का **ज़ेको, हंगारी कहानियाँ** (साहित्य अकादेमी) **रोम्याँ रोलाँ** का विवेकानंद (साहित्य अकादेमी)। अंतिम दोनों पुस्तकों के कुछ अंश क्रमशः भारत भूषण अग्रवाल (स्वर्गीय) और स० ही० वात्स्यायन ने अनुवाद किये हैं।

रघुवीर सहाय की कविता—रघुवीर सहाय की कविताओं में हम ऐसे एक आधुनिक मानस को देख पाते हैं जो बौद्धिक और रागात्मक अनुभूतियों से सन्तुष्ट होकर अपने लिए एक सुरक्षित संसार की सृष्टि नहीं कर लेता : उसमें रहना कवि के लिए भयावह कल्पना है। आज के पतनशील समाज में ऐसे अनेक सुरक्षित संसार विविध कार्यक्षेत्रों में बन गये हैं—साहित्य में भी—और इनमें बूड़ जाने का खतरा पिछले वर्षों में बढ़ता-बढ़ता तीव्रतम हो गया है। परन्तु (बातचीत में रघुवीर सहाय कहते हैं कि) समाज कविताओं से भरा पड़ा है। सड़क पर चलते ही हम उनसे टकरायेंगे और कविता एक नया परिचय करायेगी।

अपनी काव्य-यात्रा के संदर्भ में स्वयं रघुवीर सहाय 'लोग भूल गये हैं' की भूमिका में लिखते हैं—"इस संग्रह (लोग भूल गये हैं) की रचनाएँ मेरे काव्य-जीवन के जिस दौर में लिखी गई हैं वह अभी हाल में शुरू हुआ और अभी निबटा नहीं है, दिखता है कि वह अभी चलेगा। मँझधार से या कहें कि बीच भँवर से लिखी हुई कविता प्रकाशित कर देने का यह मेरा पहला अवसर है। इसके पूर्व 'आत्महत्या के विरुद्ध' और 'हँसो-हँसो, जल्दी हँसो', दोनों एक-एक निष्कृति के सूचक थे। उसके पहले 'सीढ़यों पर धूप में' कविता के एक से अधिक पड़ावों तक सहेजकर ले जायी गयी उपलब्धियों का संचय था। उसके पहले भी 'दूसरा सप्तक' में आकलित रचनाएँ अत्यन्त प्राथमिक कविताओं के अभ्यासमूलक दौर से निकलते ही अपनी दुनियाँ में पैर रखने के समय की कविताएँ थीं।.........अपनी कविता के वर्तमान दौर में से एक बार बाहर आकर अपना अधूरापन पाठकों को दिखाने के पीछे समाज के वर्तमान दौर का एक दबाव है जो कवि पर पड़ रहा है।"

'आयाम' के सम्पादक विश्वनाथ गौड़ और ललित शुक्ल के अनुसार, "वस्तु और शिल्पी की स्वाभाविकता की दृष्टि से रघुवीर सहाय की कविता का व्यक्तित्व

हृदय को सीधे प्रभावित करता है। मस्तिष्क को कुरेदता है और कुछ रुककर सोचने एवं करने की प्रेरणा देता है।………फैशन और बनावट से असम्पृक्त रघुवीर सहाय की रचनाशीलता में कवि के मर्म-बोध की अनेक छवियाँ अनुस्यूत हैं जिनमें नयेपन के साथ-साथ यथार्थ-चित्रण की संकल्पनात्मकता है।

जीवन की उन्मुक्तता और मानवीय संवेदना के साथ-साथ जीने की ललक एवं पारस्परिकता के जो अनेक दृश्य-चित्र रघुवीर सहाय की कविता में मिलते हैं वे एक जानी-पहचानी भाषा में मुखर हुए हैं।

डॉ० नामवरसिंह के मतनुसार—अनेक समकालीन कवियों की तरह रघुवीर सहाय भी केवल 'कवि' नहीं हैं, अच्छे गद्य-लेखक भी हैं। रघुवीर सहाय की कविताओं पर उनके पत्रकार जीवन का गहरा असर है, जो उनकी कविता को जानदार और प्रासंगिक बनाता है। पत्रकारिता से उनकी कविताओं में एक खास प्रकार की तथ्यात्मकता आयी है। सक्षिप्त-सी सूचना, समाचार की कतरन, रोजमर्रा की बातचीत का अनचीन्हा लटका रघुवीर सहाय की कविता में आकर एक नवीन अर्थ धारण कर लेता है।"

अंत में उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि रघुवीर सहाय नयी कविता के समर्थ कवि हैं।

1. धूप

यह कविता रघुवीर सहाय के प्रसिद्ध कविता संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप' से ली गई है। कवि ने बसंत ऋतु की धूप के कुछ ऐसे चित्र खींचे हैं जिनकी ओर सहसा हमारा ध्यान नहीं जाता। कवि धूप के उस सौंदर्य का अनुभव तो करता है; किन्तु उसे व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है। फलतः वह हरे-हरे पौधे, गुलाब, गौरैया के बिम्बों द्वारा हल्की-हल्की धूप के इस प्रभाव को संवेदना के स्तर पर व्यंजित करता है।

2. रामदास

यह कविता रघुवीर सहाय के प्रसिद्ध कविता संग्रह 'हँसो, हँसो, जल्दी हँसो' से संकलित है। इसमें कवि रामदास के माध्यम से (आम आदमी का सामान्य-जन)

की बात करने के साथ-साथ वर्तमान जीवन की विवशता और विसंगति की ओर संकेत करता है।

29. धूमिल

धूमिल का पूरा नाम सुदामा पांडेय था। पिता का नाम शिवनायक पांडेय और माता का नाम रजवंती देवी। 9 नवम्बर, 1936 ई० को वाराणसी से बारह किलोमीटर दूर खेवली गाँव के एक संयुक्त परिवार में सुदामा पांडेय का जन्म हुआ था। उनके पिता दुर्वासा के अवतार थे—हरदम अभिशाप देने के लिए तत्पर। अपने पिता की ही तरह धूमिल भी बचपन से ही विद्रोही थे—जिद्दी, अंधविश्वासों के प्रति अनास्थावान और शारीरिक शक्ति-प्रदर्शन के आग्रही। ग्यारह वर्ष की आयु में ही सुदामा पांडेय ने वरुण की कछार पर बैठकर दोस्तों को तुकबन्दियाँ सुनाने का कार्यक्रम शुरू किया और यह कार्यक्रम शीघ्र ही स्थान और काल की सीमा को लाँघने लगा। ग्यारह वर्ष की आयु में ही सुदामा पांडेय का विवाह श्रीमती मूरतदेवी से हो गया। इस समय तक उनके पिता का देहावसान हो गया था और समूचे घर की जिम्मेदारी इस किशोर पर आ गई। 1953 ई० में पन्द्रह वर्ष के सुदामा पांडेय ने हरहुआ के इण्टर कालेज से हाईस्कूल की परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की। लेकिन बहुत चाह कर भी वे अपनी पढ़ाई आर्थिक दबावों के कारण आगे नहीं बढ़ा सके। परिवार के भरण-पोषण की समस्या ने रोजी-रोटी की तलाश में कलकत्ता जाने के लिए विवश कर दिया। बहुत भटकने पर भी जब कोई नौकरी न मिली तो हिंदी के इस युवा कवि ने लोहा ढोने की मजदूरी शुरू कर दी। इसके बाद कलकत्ते की ही एक कम्पनी मैसर्स तलवार ब्रदर्स प्राइवेट लिमिटेड में धूमिल ने काम किया। यह नौकरी भी अधिक दिनों तक नही चली और धूमिल वापस अपने गाँव खेवली चले गये। लेकिन आजीविका की तलाश अभी पूरी कहाँ हुई थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र से सुदामा पांडेय ने विद्युत तकनीक का डिप्लोमा पाठ्यक्रम पूरा किया और 1958 ई० में जब परीक्षा में उन्हें प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान मिला, तब उत्तर प्रदेश सरकार के विद्युत बोर्ड में विद्युत अनुदेशक की नौकरी भी तत्काल मिल गई। 1958 ई० से 1963 ई० तक धूमिल इसी पद पर वाराणसी में रहे। 1963 ई० में उनकी प्रोन्नति पर्यवेक्षक के पद पर हुई और वे स्थानान्तरित होकर बलिया चले गये। जल्दी ही 1968 ई० तक वे पुनः वाराणसी आ गए। इस बार सुदामा पांडेय ने विद्युत विभाग के कामगरों का समर्थ संगठन बनाया और अपने विभाग की विसंगतियों का पर्दाफाश किया। जल्दी ही अपने विभाग के लोगों के बीच धूमिल का नाम ईर्ष्या और क्षोभ का कारण बन गया। इन्हें सहारनपुर

भेज दिया गया। बहुत संघर्ष करके ये वाराणसी लौटे तो पुनः उनकी बदली सीतापुर कर दी गई। यह 1974 ई० का सितम्बर महीना था। इसी समय अरसे से चला आ रहा सिरदर्द उनको असह्य वेदना बन गया। वे नौकरी पर सीतापुर नहीं गए, लम्बी छुट्टी ले ली। 18 अक्टूबर, 1974 ई० को धूमिल काशी हिंदू विश्व-विद्यालय के मेडिकल कॉलेज में दाखिल हो गये। डॉक्टरों ने एक स्वर से घोषणा कर दी कि धूमिल को ब्रेन ट्यूमर है। 1 नवम्बर को असाध्य ब्रेन ट्यूमर का यह मरीज लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में भेजा गया और वहीं लम्बी यातनाओं के बाद 10 फरवरी 1975 की रात में हिन्दी का यह युगान्तरकारी कवि अपनी लोकांतर यात्रा पर निकल गया। उनके जीवन काल में उनका एकमात्र काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' सामने आया था, जिसे राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ने 1973 में प्रकाशित किया था। इसी संकलन को 1977 ई० में मध्य प्रदेश सरकार ने अखिल भारतीय मुक्तिबोध पुरस्कार से सम्मानित किया था। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय ने युगबोध प्रकाशन, वाराणसी की ओर से 1977 ई० में उनके दूसरे काव्य संकलन 'कल सुनना मुझे' की प्रस्तुति की। इसी संग्रह को 1979 ई० में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। मरणोत्तर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त करने वाले हिन्दी के रचनाकर्मियों में धूमिल दूसरे थे इसके पहले स्व० भारत भूषण अग्रवाल को 1977 ई० में यह पुरस्कार निधन के बाद मिला था। यद्यपि पुरस्कृत होने से 'कल सुनना मुझे' के रचयिता को विपुल ख्याति एवं व्यापक पाठक परिसर मिला, लेकिन समकालीन हिंदी कविता में धूमिल की पहचान साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलने के बहुत पहले सुस्थिर हो गयी थी। यह और बात है कि जिन्हें अभिजात कविता की तलाश है तथा जिन्हें पहाड़ी झरनों की बेपरवाह दौड़ के समानान्तर रोमानीपन को कविता में देखने की आदत है, उन्हें सुदामा पांडेय धूमिल की कविताओं में लगातार निराश होना पड़ा है। ये कविताएँ किसी काल्पनिक उदास संसार की सर्जना नहीं करतीं अपितु तमाम रोमांटिक लफ्फाजियों का सघन निषेध करती हैं। इसी कारण, धूमिल का रचना-संसार कविता को एक नई समाज चेतन जमीन देता हुआ प्रतीत होता है।

धूमिल की कविता सिर्फ शब्दों की बिसात ही नहीं वाणी की आँख भी है। यह कवि एक खौलता हुआ आँसू है, थकान में गिरी हुई एक लय है, एक कुनबे का अगुआ है। धूमिल की चिंता यह है कि इसे देश का सबसे अच्छा स्वास्थ्य विद्यालयों में संक्रामक रोगों से ग्रस्त है, सबसे अच्छे मस्तिष्क आराम कुर्सी पर चित्त पड़े हैं, सबसे अच्छी नस्ल युद्धों में नष्ट हो गई, गाँव के गंदे पनालों से लेकर शहर के शिवालों तक एक ही अमूर्त कुंठा पसरी हुई है। अपने आसपास की तमाम विद्रूपताओं और स्खलनों पर धूमिल की पैनी निगाह गई है। इसलिए धूमिल की हर कविता एक सार्थक वक्तव्य बन गई है, हर पंक्ति एक हथियार बन कर सामने आई है।

कविता के हथियारपन से वाकिफ कवि ने शब्द और शस्त्र के व्यवहार के व्याकरणों का पार्थक्य लक्षित किया है कि शब्द अपने वर्गमित्रों में कारगर होते हैं और शस्त्र अपने वर्गशत्रु पर । फिर भी धूमिल ने शब्दों का इस्तेमाल हथियारों की जगह किया है ।

मोचीराम

यह कविता धूमिल के कविता-संग्रह **'संसद से सड़क तक'** से संकलित है । मोचीराम आम आदमी का प्रतीक है जो आधुनिक जीवन के व्यवसायीकरण का शिकार है । इस व्यावसायिक वृत्ति ने मनुष्य को मात्र खरीद-फरोख्त की वस्तु बना दिया है । कवि को ऐसे आम आदमी की तलाश है जो रंग-जाति-भाषा आदि के उभरे भेद से परे है । मोचीराम के माध्यम से कवि ने — ठोस मानव स्थिति को कविता का विषय बनाया है ।

शब्दार्थ—रांपी=चमड़ा काटने-छीलने में काम आने वाला मोची का औजार । **पतियाए हुए**=विश्वास से परिपूर्ण ।

हर आदमी.......**खड़ा है**=हर आदमी को मैं व्यावसायिक दृष्टि से देखता हूँ ।

कोई आदमी ...टांके पड़ते हैं=मैं यह जानता हूँ कि इस व्यावसायिकता से कोई मुक्त नहीं है, फिर भी इस व्यावसायिकता से मुक्त मानवता कहीं-न-कहीं दिख ही जाती है, जिस पर रोज आघात पहुँचता है ।

उम्मीद की तरह देती हुई हँसी=निराशापूर्ण हँसी ।

बिसूरता है=कातर दृष्टि से देखता है ।

———